

आचार्य जे.से.नट

‘प्रोचित्य विचारचर्चा,’ ‘कवि-कठामरण’ और ‘सुवृत्त
तिसक’ कृतियों का समीक्षासहित प्रनुवाद)

लेखक
मनोहरलाल गौड़

एम ए., पी-एच डी
(अभ्युक्त, हिन्दी-संस्कृत विभाग,
वर्तमान प्रमुख, प्रसंगिक)

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर,
प्रसंगिक

५० श्रीप्रसाद शर्मा के प्रबन्ध से
आदर्श प्रेस अलीगढ़ में मुद्रित ।

विषय सूची

१-प्राक्कथन अ-६

२-भूमिका १-७५

जीवन वृत्त १-३ । रचनायें ३-१० । व्यष्टित्व १०-१२
 सिद्धांत विचार—(अ) औचित्य १३-३१ । (आ)
 पाश्चात्य आलोचना में औचित्य विचार ३२-३६ ।
 कवि शिक्षा इतिहास ४०-४५ । सेमेन्ट की कवि शिक्षा
 ४५-५१ । सेमेन्ट के बाद कवि शिक्षा ५१-५४ ।
 देन ५५-६६ । जन्म विचार—इतिहास ६६-६७ ।
 सेमेन्ट का जन्म विचार ६७-७५ । मृत्योक्त ७५ ।

मूलानुवाद १ ११२

१—औचित्य विचार खर्चा	३-३१
२—कवि कंठामरण	५५-७६
३—मुद्रित विक्रय	७७-११२

प्रावकथन

आचार्य चेमेन्द्र का संस्कृत साहित्य में अपना एक पूरक ही मार्ग है और पूरक ही स्थान। साहित्य की जिस विशा में वे चले हैं उसमें दूसरा कोई नहीं गया। उनसे आगे बढ़ जाने का ता फिर प्रश्न ही क्यों उठता है? उनके दो रूप हैं—आचार्य और कवि। दोनों एक दूसरे से अनुप्राणित हैं, एक दूसरे से सह-सम्बद्ध हैं। चेमेन्द्र ने आचार्य रूप में काव्य के जो आधार, जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उन्हीं के अनुसार काव्य रचना की है और वैसा काव्य प्रशोधित किया है जैसे ही काव्यादर्श तथा काव्यसिद्धान्त स्थिर किये हैं। वे व्यावहारिक समीक्षक हैं और सिद्धान्ती कवि।

उनकी अपनी विशा है, लोक जीवन की विशा। जनसाधारण के दैनिक जीवन का चित्रण उसके गुणों की प्रशंसा तथा दोषों पर व्यंग्य करना, उसके परिष्कार से व्यावहारिक उपायों का सुझाव, जीवन के पक्षपाद विविध रूपों को व्यापक तथा विशाल पद्धति से चित्रित करने वाले रामायण महाभारत एवं बृहत्का का सूक्ष्म रूपांतर रूप स्थित करना और जीवन को ही आधार बना कर काव्य के समाधि-सिद्धान्त की स्थापना करना आदि कार्य उन्हें साधारण लोकजीवन का कवि सिद्ध करते हैं। उनकी यह विशेषता संस्कृत साहित्य में इसलिये और अधिक महत्त्व पूर्ण बन गई है कि उसमें आदर्श-वादिता, असाधारण के प्रति उत्सुकता, आमुष्मिकता, कलात्मकता आदि तब बड़ी प्रधुरता से संनिविष्ट हैं। संस्कृत के अर्वाचीन भाग में ऐसा कवि हूँ देने पर भी संभवतः नहीं मिले जिनकी रचनाओं से उनके समय के समाज का पूरा परिचय प्राप्त हो सके। चेमेन्द्र काव्य की दृष्टि से अर्वाचीन होकर भी काव्य की दृष्टि से प्राचीन तथा सहज हैं। उनके काव्य अपने समय के सामाजिक जीवन के सच्चा इतिहास हैं।

यह तो इनके कवि का स्वरूप है। इसी जैसा असाधारण उनका आचार्यरूप है। आचार्य रूप में उन्होंने तीन पुराण लिखा है—‘घोषत्य विचार चर्चा’ काव्य कठामरण’ और ‘सुवृत्त विमल’। पहला पुस्तक में संवत् जीवन के मानदण्ड

से काव्य समीक्षा का मार्ग स्थापित किया है। यह है औचित्य मार्ग। आचार्य ने पाण्डे के उन सभी रूपों में जिन्हें काव्य समझा जाता है, औचित्य के दर्शन किये हैं। औचित्य के अन्तर्गत अलंकार, रस, गुण, दोष, भाव रीति आदि सब तत्वों को समेट लिया गया है। प्राचीन आचार्यों की स्थापनाओं का संकलन नहीं किया उनका समन्वय कर उन सबसे अधिक व्यापक तत्त्व औचित्य की स्थापना की है। यह तत्त्व जीवनगत है। जो यन्त्र जिसके अनुरूप है, सदृश है वह उसके वंचित है। इसी का धर्म औचित्य है। इसका परीक्षण प्रत्यक्ष जीवन में करना चाहिये। इस प्रकार आचार्य सेमैन्स ने काव्य की समीक्षा में काव्य को जीवन के प्रकार में, उसकी सापेक्षता में देखने का मार्ग खोला है। हमारे प्राचीन आदर्शवादी समीक्षा मार्गों के क्षेत्र में यह व्यावहारिक समीक्षा दृष्टि कम महत्व की नहीं है।

दूसरी पुस्तक कवि शिक्षा पर लिखी गई है। इसमें सेमैन्स एक मध्ये हुये अभ्यास के रूप में विद्यमान हैं। काव्य कला का अभ्यास करने वालों के लिये सरल उपयोगी उपाय इसमें बताये गये हैं। ये सी उपाय आसम्भ उपयोगी हैं और इनमें भवत जीवन की अपनी प्राचीन संकृति की, समाजिक माध्यमों और आदर्शों की स्पष्ट झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त काव्य के स्वरूप आवश्यक तत्त्व, उसकी रचना के सरल व्यावहारिक उपाय भी बड़े अनुभव के आधार पर बताये हैं। इनकी उपयोगिता शारद्व है।

तीसरी पुस्तक 'सुसूच-विचार' में तन्त्र विचार है जो अनेक दृष्टियों से मनीन प्रयास है। एक तो इसमें हमें हमारी छत्रों पर विचार किया है जो साहित्य में व्यपहत है। केराव कवि की यांति का छत्रों की प्रदर्शनी लगाना चाहें उसकी बात और है नहीं तो काव्य में कुछ ही छत्रों का प्रयोग हुआ करता है। अतः सब छत्रों के अनापरक सक्षम उदाहरणों की सूची देना सेमैन्स की व्यावहारिक व्यक्ति से उदागी नहीं समझा। हमारे छत्रों का माय, सापेक्ष गुण दोष, इनके लिये सम्बन्धन तथा इनकी प्रयोग विधि पर मौलिक विचार किया है। यह तन्त्र विचार का मया मार्ग है। संस्कृत के सभी छत्र मन्त्रों में इस पुस्तक का अदना विशिष्ट स्थान है। आ इसने है पर

इस प्रकार समीक्षा-सिद्धान्त, कवि शिक्षा और अन्य विचार इन तीन प्रधानों पर मौलिक अनुभावनायें देकर 'जेमेन्स' ने अपने व्याचार्य स्वरूप की स्थापना की है। वही प्रस्तुत पुस्तक 'व्याचार्य जेमेन्स' में दिया गया है। इसमें उक्त तीनों पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद है और तीनों प्रधानों के विकास तथा समीक्षा पर विस्तृत भूमिका दी है। हिन्दी जगत के लिये इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। भाषा सरल, सुपठ, ब्रह्म के सारंग प्रकाश किया गया है। आशा है इससे साहित्य के प्रेमियों को लाभ होगा।

लेखक उन सब विद्वानों का कृतज्ञ है जिनके परामर्श, सहायता आदि से इस पुस्तक के प्रकाशन में काम चढ़ाया गया है। पूज्य डा० सूर्यकान्त जी, अमृत संस्कृत विभाग हिन्दू विश्व विद्यालय का विशेष रूप से आभार भवत है जिसकी जेमेन्स विषयक रचना से प्रेरणा और सहायता दोनों मिली है। वर्षसमान काठिन्य अक्षीमाद के प्रबन्धनाचार्य आदरणीय वंशगोपाळ जी किशोर ने 'आय भारती' के संस्करण के नाते इस कार्य में जो सघरणा दी है उसके लिये लेखक जनकृतज्ञ है। पुस्तक के प्रकाशक पद्मी साह जी भी पम्पवाह के पात्र हैं जिनके प्रयत्न से पुस्तक प्रकाश में आ सकी है।

—लेखक

सूमिका

१-जीवनवृत्त

ऐमेन्ट्र लोकिक प्रवृत्ति के कवि हैं। फलतः इनके काव्यों में अनेकत्र ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे इनके जीवनवृत्त पर प्रकाश पड़ता है। यद्यपि वे इतने पर्याप्त नहीं हैं कि इस विषय में इष्टमित्यम् कहकर कुछ निर्णय किया जा सके।

‘कवि कवठाभरण’ तथा ‘श्रीचित्त विचार चर्चा’ के अन्त में कवि ने प्रथम समाप्ति का समय श्रीमदनन्तराज नृपति का राज्यकाल बताया है। कल्याण की ‘राजतरंगिणी’ के अनुसार यह ईसवी सन् १०३८ से १०६३ तक है। ‘बृहत्कथा मंजरी’ में कवि ने अभिनव गुप्त को अपना साहित्य गुरु बताया है। उनकी कविता है कि ‘ज्ञान के समुद्र विद्या विभूति के जेष्ठक आचार्यप्रवर अभिनव गुप्त से उन्होंने साहित्य सुना था।’

‘मृत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्य बोधवारिधे’।

आचार्यशेखरमणोर्यिद्या विभूति अपरिण ॥’

इस श्लोक में उल्लिखित ‘विद्या विभूति’ प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर लिखी गई टीका है जो सन् १०१२ में पूर्ण हुई थी। कविकवठाभरण के प्रारम्भ में मंत्र साधना की सार्वभौमता बताते हुए श्लेष द्वारा ऐमेन्ट्र ने संकेत किया है कि उन्हें कवित्व का लाभ अभिनव गुप्त से हुआ था।

पता मम सरस्वत्यै य क्रियामातृकांजपेत्

ऐमेन्ट्र स जमते मन्मथोमिनयनामयम्।

अभिनव गुप्त का समय निश्चित रूप से ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ है।

ऐमेन्ट्र के पुत्र सोमदेव ने इनके मन्त्र ‘अवदान कल्पवृत्ता’ का प्रणयन सन् १०५२ में बताया है। इन सब के प्रामाण्य से वे ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाळ के ठहरते हैं। गणना से इस तथ्य का भी अनुमान किया जाता है कि उन्होंने ‘बृहत्कथा मंजरी’ सन् १०६० में ‘समय मातृका’ १०५० में तथा ‘दशवतार चरित’ १०६६ में लिखे थे।

'दशायतार चरित' इनकी अन्तिम रचना है। अतः १०७० के लगभग इनका मृत्युकाल अनुमित होता है। इसी प्रकार सन् १०१४ में अमिनब गुप्त से साहित्य शिक्षा लेने वाले कवि की आयु यदि २५ वर्ष की भी मान ली जाय तो वे इसकी शताब्दी के अन्तिम दशक में सन् ६६० के लगभग उत्पन्न हुए थे। इन सब प्रमाणों से इनका जीवनकाल सन् ६६० से १०६० तक तथा काव्य काल १०१२ से १०६६ तक स्थिर होता है।

अपने परिवार का परिचय इन्होंने स्वयं दिया है। इनके पिता प्रकाशेन्द्र थे। वे काश्मीर में इतने प्रसिद्ध थे कि उस भूभाग का प्रकारा उन्हें कहा जाता था। इनका पद्यानुष्ठान निरंतर चबटा रहता था। उन्होंने ब्रह्माली का एक मन्दिर बनवाकर उसमें पांडुरामावुकाओं की प्रतिष्ठा की थी और उसी मन्दिर में गौ, भूमि तथा भृगुवर्म का ब्राह्मणों का दान देते देते वे पंचत्व को प्राप्त हो गए थे। सेमेन्द्र के पितामह सिन्धु तथा प्रमितामह भोगेन्द्र थे। पुत्र प्रमितामह मरेन्द्र थे जो जयापीठ का कर्मचारी थे। भाई का नाम चक्रपाल था।

वैसे तो सेमेन्द्र ने अपने का 'सर्व मनीषी शिष्य' कहा है जिससे प्रतीत होता है कि वे गुणमण्डल के लिए दूसरों के शिष्य बनने में अपनी देही नहीं ममकाते थे। अतः सम्भव है कि अनेक विशेषज्ञों को इन्होंने गुरु माना हो। पर मुख्य रूप से तीन का इन्होंने गुरु कहा है—अमिनब गुप्त, गंगक और सोमपाद।

इनके पिता द्वारा तथा यमी थे। इनके वास्तव्य की छाया में सेमेन्द्र ने सुल-सौम्य का जीवन बिताया था। अनेक प्रकार के लोगों से संपर्क प्राप्त किया था। बैरवा, लुहार, चमार महाजन, शैव, वैष्णव, काश्मीरी, ब्रह्माली आदि की बड़े निष्ठा में इन्होंने देखा था। इसलिये जीवन के विषय में उन्हें बड़ा व्यापक, बहुमुखी अनुभव मिला। इनके समय में काश्मीर की सामाजिक दशा यतनीन्मुख थी। यह कवि की प्रतिभा पर इतना शुभ प्रभाव में डाल सकी कि यह प्रशंसक बन जाता। उस तो समाज में स्थान स्थान पर चित्र दिखाई दिये। इसलिये वह व्यंग्यों किया यथार्थ के वर्णन और नीति के उपदेशों द्वारा उनका ज्ञान का लक्ष्य बनाकर काव्य रचना करने लगा। बीछ पर्य में सामाजिक आदर्श जलम थे। इसलिये स्यारहवीं शताब्दी में भी सेमेन्द्र ने शीघ्र ही 'बीछावदान कल्पतरु' में भग

मान् युद्ध की प्रशंसा की और 'दशावतार चरित' में सबसे पहले उन्हें भगवान् मानकर दश अवतारों में स्थान दिया। यह इनकी धार्मिक चरित्रा और सामाजिकता का साक्ष्य है।

जीवन का यथार्थ बहुमुखी अर्थ व्यपक रूप इनके ज्ञानगोचर हुआ था। इसी को इन्होंने अपनी रचना का विषय बनाया व्यास, पाश्चात्तिक, गुणादय के से बड़े प्रशंसक थे। व्यास को तो अपना गुरु मानकर स्वयं को 'व्यासदास' कहा करते थे। इस भद्रा का कारण भी यही है कि ये सभी जीवन के यथार्थ उद्गातक हैं।

२-रचनाएँ

वैष्णव की छोटी बड़ी १३ रचनाओं का पता लग चुका है। इनमें १० प्रकाशित हैं और १५ उनके प्रकाशित प्रयोगों में निर्दिष्ट हुई हैं। इन सब को चार भागों में बाँटा जा सकता है—

१—पद्यात्मक सूक्ष्म रूपान्तर।

२—उपदेशात्मक।

३—रीति संबन्धी।

४—पुष्टक।

इनमें से एक एक भाग की प्रत्येक रचना का सूक्ष्म परिचय यह है।

१—पद्यात्मक सूक्ष्म रूपान्तर

इस भाग में २ रचनाएँ आती हैं। 'रामायण मंजरी', 'भारत मंजरी', 'बृहत्कथा मंजरी', 'दशावतार चरित' तथा 'बौद्धावदान कल्पतरुिका'। इनका परिचय निम्न प्रकार से है—

(अ) रामायण मंजरी—यह वास्मीकिकृत रामायण का पद्यों में किया सूक्ष्म रूप है। काव्य कला की दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक नहीं है। पर व्याख्यायिता राधाकृष्ण में रामायण का पाठ कितना और कैसा था—इसका परिचय इस ग्रंथ से भली भाँति मिल जाता है।

(आ) भारत मंजरी—यह महाभारत का सूक्ष्म रूपान्तर है। इसमें भी काव्यस्थ कवचन अधिक नहीं होते। पर मूल ग्रन्थ के तत्कालीन पाठ का आशय 'रामायण मंजरी' से भी अधिक स्पष्ट

का भी वस्त्रोत्तर किया है। अतः रचना मूलप्रश्न का सत्य प्रतिनिधि है। इसमें शांतिपर्व के ३४२ ३४३ सर्गों के प्रतिपाद्य का किसी रूप में भी वस्त्रोत्तर नहीं हुआ है। फलतः अनुमान होता है कि यह अंश बाद में परिष्कृत हुआ है।

(६) बृहत्कथा संवरी—यह गुणाद्य को प्रसिद्ध बृहत्कथा का सूक्ष्म रूपान्तर है। यह १६ सर्गों में विभक्त है। रचना करते समय मूलप्रश्न कवि के पास था—यह अनुमित होता है। पर पौर्वर्त्ति संवरी के बाद उसने प्रश्न का अनुसरण छोड़ दिया है। यह स्पष्टता से विस्तार या संकुचन करता गया है। प्रश्न में रोचकता का अभाव है। ग्यान-स्वान पर कवि ने सारसंख्य शैली का आग्रहण किया है पर नमसे प्रश्न का सौम्य अर्थ अधिक नहीं बढ़ सका।

(७) दशावतार वर्णित—यहाँ विष्णु के दश अवतारों का वर्णन है। पुराण इसके उपजीव्य हैं। नयीमता इस बात में है कि राम और बुद्ध विष्णु के अवतार रूप में सूर्य प्रथम वर्णित हुए हैं। इसमें सेनेम् के वैष्णव होने का पता चलता है।

(८) बौद्धावदान कल्पसूता—यहाँ आठव कथाओं का संग्रह है। कवि को इसकी रचना की प्रेरणा सम्भवतः तबक तथा पीरमत्र से प्राप्त हुई थी। इसमें कुल १०८ पदसङ्ख्य है। कवि ने कृति का अधूरा ही छोड़ दिया था। बाद में उनके पुत्र मोमदेव ने एक पदसङ्ख्य और लिखकर इसे पूरा किया। प्रश्न का रचना काल सन् १०१९ है। बौद्ध धर्म के प्रति कवि की उदार मर्दा का प्रश्न साक्षी है।

२—उपदेशात्मक रचनायें

इस भाग में इनकी सात रचनायें आती हैं जिसमें से चार में साक्षात् दाम वदेश प्रदान किया गया है। तीन में दासों पर व्यवह है जिसका तात्पर्य उन्हें त्यागकर पवित्र जीवन को आरम्भ करना है। इनका परिचय निम्न प्रकार से है—

(क) चारुचर्या शतक—यह भी अनुष्टुप छन्दों में त्रिपदी जोड़ी रचना है। इसमें नीति और विनय की शिक्षा दी गई है।

(ग) सुष्यसंकापदश—जीना कि शीर्षक से प्रतीत होता है रचना

म संयक तथा स्वामी के सम्बन्धों को स्थायी एवं मजबूत बनाने के लिए व्यवहारनीति को शिक्षा दी गई है। इसमें ६१ पद्य हैं।

(ग) दर्पदलन—यह अपेक्षाकृत बड़ी रचना है। इसका विषय है आयिमान की निम्नता। इसमें सात विचारक अध्याय हैं। अभिमान के सात कारणों की कल्पना कर प्रत्येक पर एक-एक (अध्याय) लिखा है। ये कारण हैं—आमिजात्य धन विद्या, सौन्दर्य वीरता दान तथा तप।

(घ) चतुर्वर्ग संग्रह—इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का संतुलित वर्णन किया गया है। काम का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ है।

(ङ) कलाविलास—हेमचन्द्र की यह सर्वश्रेष्ठ रचना समझी जाती है। कथा नायक मूखरेव है जो अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को विविध कलाओं का रहस्य समझाता है। यही मग्न का डोंबा है। दम तीन प्रकार के है। बक-दम, कुर्मण दम तथा मार्जार दम इनके वड़े रोचक वर्णन हुए हैं। दम के अनेक रूप हैं—शुचिदम, शम्भुदम, स्नातकदम, समाधिदम आदि। पर ये सब निस्पृहदम की तुलना नहीं कर सकते। मुबली, जटिली भग्न, खत्री, दण्डी कपायबारी, मत्सरमाय जोगी ये सब दम के रूप हैं। इसके पिता लोम, माता माया, बूट मडाहर, गृहिणी कुटिलता और पुत्र हुंकार हैं। पिपाठा ने सृष्टि की रचनाकर जब प्राणियों को निरालम्ब एवं घनादि के संभोग से रंजित देखा तो वस्तु के लिए दम की सृष्टि की। उसने लड़े-लड़े ही ऐसा तप किया कि ब्रह्मा जी आश्चर्य में पड़ गये वशिष्ठ सवित्रत हुए, कुत्स कुत्सित नारद निराश्रित, जमदग्नि भग्नवदन, विश्वामित्र त्रस्त आदि। मोक्ष विचार कर ब्रह्मा जी ने उस अपनी गोद में ही स्थान दिया। यह लड़े संकोच के साथ हाथ से पानी छिड़क कर यहाँ बैठा और ब्रह्मा जी से बोला कि आप जोर से न धोखमा, यदि धोखना ही हो तो मुँह के आगे हाथ लगाकर बोलिए जिससे आपके मुँह की सास का स्पर्श मुझे न हो। इस पर ब्रह्मा जी हँस और उसे संसार का प्रत्येक स्थल निवासार्थ दे दिया। यह धँवकों का कल्पवृक्ष है। पिप्पलु ने यामन के दम में ही तीनों लोकों का आक्रमण किया था।

शोभन पर व्ययसाध है। इसके प्रभाव में शुक्राचार्य जैसे ज्ञानी भी आ जाते हैं। कपटाचरण शोभन के कारण होता है। निर्दोष व्यक्ति कभी बचन नहीं करता। कवि ने काम के वर्णन प्रसंग में इन्द्रियासक्त कामुको, चरित्रहीन स्त्रियों, बेरयाओं आदि के बीच चरित्र पर धके लीखे व्यंग्य कसे हैं। राजदरबारी कायर भी व्यंग्य प्रक्षेप के शक्य बने हैं। वे विष्णु के अवतार हैं क्योंकि १६ कक्षापूर्ण हैं। मद के प्रसंग में शराबियों के लाके भी खूब लिखे हैं। वे मद में अपना मूत्र तक पी जाते हैं, अपनी पत्नी के सतोख का भंग आँखों से देखकर भी नहीं क्षमिजत होते। अरिबनीकुमारों की कृपा से युवा बने व्यवन अपि ने उन्हें जब यज्ञमागी बनाया बाह्य और इन्द्र ने इसका निषेध किया तो अपि ने क्रूरारूप मद राक्षस की सृष्टि की। पही फिर स्त्री, दूध, पान और मृगया में प्रविष्ट हो गया।

इम की उत्पत्ति और उसके निवास स्थानों का सूची यही रोचक है। गमैये तथा कवि भी भी सुबह के कमाये को शाम तक सूर्य कर लाली हाथ सोने वाले जीव हैं, जिनका कमी पेट भरता ही नहीं। 'हा-हा' करने से रात का चोर तो भाग जाता है पर य दिन के चोर गमैये 'हा हा' करके ही चुरा लेजाते हैं। मन्, नर्तक, कुशलिय, चारख और घिट ये चेरपर्य की कोठी के लिए ठिठ्ठी हैं। इनसे संपत्ति की रक्षा करनी चाहिये। गमैयों की जो संमिश्रित ज्वनि बढती है वह मानों अस्यान दत्त जपमो का बीत्कार है। सुनार बीसठ कत्ता पूरे होते हैं। ये मेठ पर्यंत के बूदे हैं जो धृष्णी पर अवतरित हुए हैं। अन्त में कवि ने इन साधनों की शिक्षा दी है जिनसे वे बिना पापाचरण के आजीविका कमा सकते हैं। खेमेन्द्र का अन्त में उपदेश है कि संवत्समाया जाननी तो चाहिये पर उसका आचरण नहीं करना चाहिये।

(घ) देशापदेश—यह आठ उपदेशों में विभक्त वर्णनात्मक रहता है। इसमें कारमीर देश की दुर्बलताओं का चित्रण है। उन पर व्यंग्य कसना अपि का शक्य है। वर कृति अधिक सफल नहीं कही जा सकती। व्यंग्य की मर्द हो गये हैं। तीव्रता भी उनमें नहीं है। विषय हैं—कजूम बेरया, कुट्टिमियाँ, घिट, कारमीर में पड़ने के लिए आया दुष्मा वंगाली विद्यार्थी, वृद्धा वर, कवि, रोलीखोर, पैपाकरण आदि आदि। कत्ता यित्ताम इस विरात का सफल प्रयास है।

(ख) नर्मभाषा—देशोपदेश की भाँति यह भी व्यंग्यात्मक रचना है। इसका प्रधान विषय है पूर्ण कायरता। उसके ईश, शिवतत्त्वोत्तरी, भासाकी आदि का साक्षेप वर्णन है। उसके व्यक्तित्वगत जीवनके कुत्सित रूप का भी विस्तार से चित्रण हुआ है। इस विषय में कवि पक्षपाती सा प्रतीत होता है। बाद में मौसिलिया वैद्य, म्योतिषी गुरु आदि के भी साक्षेप वर्णन हैं।

३—रीति ग्रंथ—

रीति ग्रन्थ सेमेन्द्र के तीन प्राप्त हैं—‘कवि कण्ठाभरण’, ‘श्रीचित्त विचार चर्चा’ और ‘सुवृत्तचक्र’। इनमें से पहला कवि शिक्षा पर, दूसरा काव्यालोचन के श्रीचित्त मार्ग की स्थापना पर तथा तीसरा ज्ञानों पर लिखा गया ग्रन्थ है। इनमें सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण है श्रीचित्त विचार चर्चा। प्रत्येक का सूक्ष्म परिचय दिया जाता है।

(क) कवि कण्ठाभरण—यह ३५ श्लोककारिकाओं में लिखा पौष्प सन्धियों का छोटा ग्रन्थ है। अकवि को कवि बनाने की शिक्षा इसमें दी गई है। पहली सन्धि में तीन प्रकार के शिक्षार्थी—अल्प प्रयत्न साध्य कष्ट साध्य तथा असाम्य बताये गए हैं। इनमें पहले दो को ‘कवि कवि प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए’ यह बताकर असाम्य को अनुपदेश दिया है। दूसरी सन्धि में काव्य रचना के कुछ व्यावहारिक अभ्यास बताकर सी उपार्यों का निर्देश किया है जो कवि को कवि बनने के लिए करने चाहिए। तीसरी सन्धि में कविता में चमत्कार ज्ञाने का उपदेश है। चमत्कार को काव्य का आवश्यक तत्व बता कर उसके भेदों का सोदाहरण परिणाम किया गया है। चौथी सन्धि गुण-दोष विभाग पर लिखी गई है। काव्य के इस अधिकरण को सरल तथा सूक्ष्म बनाने की सेमेन्द्र की पद्धति उत्कृष्ट प्रशंसनीय है। पौष्प की सन्धि में कवि के लिए श्लोक शास्त्र को विविध बन्तुओं का परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता बताकर ग्रन्थ समाप्त कर दिया है। कवि शिक्षा जैसे व्यापक विषय पर इस प्रकार का सरल सुपटित व्यावहारिक ग्रन्थ लिखना आचार्य की परिष्कृत दृष्टि निर्भर युक्ति का परिचायक है।

(ख) श्रीचित्त विचार चर्चा—श्रीचित्त का काव्य का आत्म

वस्त्र मानकर लिखा गया यह समीक्षा प्रत्यक्ष है। इसके अनुसार औचित्य रस, अलंकार आदि सभी के मूल में अन्तर्भूत है ऐसे २० काव्यस्थान गिनाये हैं जिनमें औचित्य अनौचित्य की परीक्षा की गई है। कुछ और भी काव्यांश रोप रख जाते हैं जिनमें औचित्य की परीक्षा होनी चाहिए पर उन्हें अपरिमेय समझकर इत्यादि में छोड़ दिया है। एक-एक स्थान का एक-एक कारिका से उल्लेख हुआ है। खेचत्र औचित्य तथा इसके अभाव के दो-दो उदाहरण दिये गए हैं। उदाहरण देने में 'सेमेन्द्र' इतने निर्भीक तथा साहसी हैं कि कालिदास जैसे महाकवियों के पक्ष में अनौचित्य के उदाहरण बनाये हैं, पर उद्धार इतने हैं कि अपने रोप बरसाने में भी नहीं बूझते।

(ग) सुवृत्तिलक यह छन्द शास्त्र पर लिखा गया मूल्यवान् ग्रन्थ है। तीन विन्यासों में यह विभक्त है। पहले में पृष्ठापचय अर्थात् छन्दों का संग्रह है। दूसरे में गुणवृत्तों का यखन तथा तीसरे में छन्द प्रयोग वा विवेचन है। अन्त के दोनों अध्यायों में छन्दों के सफल प्रयोक्तृ कवियों के नामोल्लेख और रस अयत्ना तथा पातु के अनुसार छन्द के चुनाव का बड़ा मार्मिक विचार किया गया है। छन्दोविज्ञान पर इस प्रकार का वैज्ञानिक विचार-प्रपास अन्यत्र नहीं मिलता।

४ —कुम्भकल रचनायें—

तीन छोटी रचनायें इस विभाग में आती हैं। इनमें स एक का कर्तृत्व संदिग्ध है। शेष दो अत्यंत लघु काम हैं। विवरण इस प्रकार है।

(क) लोक प्रकाश कोप—यह सेमेन्द्र की संदिग्ध रचना है। वैदर ने इसे सेमेन्द्र की कृति नहीं माना। दूसरी ओर दूसरे ने सब भाषा में इसे कभी की रचना मिला दिया है। प्रथम में व्यापारियों दुष्टों परकों का परिचय, काश्मीरी अधिकारियों की उपाधियाँ तथा यहाँ के परगने आदि के नाम दिये हैं। काश्मीर देश के भूगोल शासन तथा व्यापार सम्बन्धी विवरण बड़े शानदार हैं।

(ख) नीति कल्पतरु—यह व्यास के नीतिपत्रों पर लिखी

(ग) व्यासाष्टक—यह व्यास की स्तुति में लिखे गये आठ रसोक्तों का संग्रह है। रचना 'भारत-मंजरी' का ही अङ्ग प्रतीत होती है।

ऊपर बताये गये ग्रंथों के अतिरिक्त १४ रचनायें ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख चेमेन्द्र ने स्वयं अपने ग्रंथों में किया है। एक का उल्लेख राजतरंगिणी में हुआ है। इस प्रकार १५ रचनायें निश्चित रूप से चेमेन्द्र की अनुमित होती हैं जो अब तक प्रकाश में नहीं आईं। ५० शिवदत्त जी ने 'हस्तिप्रकाश' ग्रंथ को भी चेमेन्द्र कृत माना है। इसी प्रकार छुलार ने 'पदनिर्णय' एवं 'पदसंदोह' को इनका कहा है। इन तीनों के विषय में कोई निर्णय-जनक तर्क नहीं मिलता। अप्रकाशित रचनाओं के संकेत निम्न प्रकार से हैं —

क—कवि कथंतामरस्य में उल्लिखित कृतियाँ—

(१) शशिर्वश महाकाव्य, (२) पद्म कादम्बरी, (३) चित्र भारत नाटक, (४) कावयय मंजरी (५) कनक चानकी, (६) मुखावली तथा (७) असूत तरंग महाकाव्य।

ख—भौषित्य विचार चर्चा में उल्लिखित कृतियाँ—

(८) विनयवल्ली, (९) मुनिमत मीमांसा, (१०) मौक्तिका, (११) अक्षर सार, (१२) ललितरत्नमाज्ञा, (१३) और कवि करिणिका।

ग—सुदृष्ट विश्व की उल्लिखित रचना—

(१४) पद्म पंचाशिका,

घ—राजतरंगिणी की उल्लिखित रचना—

(१५) नृपावली या राजावली।

इस प्रकार १६ ग्रंथ प्रकाशित तथा १५ अप्रकाशित सब मिलकर ३१ रचनायें चेमेन्द्र कृत सिद्ध होती हैं। रचनाओं की संख्या तो उन्हें महान् कवी सिद्ध करती ही है। रचनाओं के वर्ण्य विषय इतने विविध तथा व्यापक हैं कि कवि की बहुधास्य प्रतिभा पर पाठक की आश्चर्य होता है। चेमेन्द्र यथार्थ जीवन के कवि हैं। जिस प्रकार जीवन विविध है उसी प्रकार कवि के वर्ण्य विविध हैं। इन सब के मूल में यहिक जीवन का परिष्कार कवि का अभिप्रेत भाव है जो उनकी सहायता को प्रमाणित करता है। शोक जीवन के दुर्मुख रूप का वर्णन के वर्णन के क्षिप्त नहीं करते, परिष्कार की भावना से करते हैं। इसीलिए जीवन की दुर्भेद्यताओं पर व्यंग्य कसकर स्वच्छता की ओर संकेत करते हुए वे सर्वत्र प्रतीत होते हैं। इन्होंने काव्य

रचना के लिए जिस क्षेत्र को अपनाया है वह आधुनिकताप्रधान संस्कृत वाङ्मय के लिये महीन है। इसीलिये कौय जैसे विद्वान् इनकी काव्य प्रतिभा में बीसवीं शताब्दी की सी आधुनिकता के दर्शन करते हैं।

३-व्यक्तित्व

आचार्य चेमेन्ट्र जैसे उष्णकोटि के कवि हैं जैसे ही वे भेष्ठ आचार्य हैं। प्रायः ऐसा जाता है कि व्यक्तित्व के ये दो पक्ष साथ साथ मिलकर नहीं चल पाते। कवित्व के उत्कर्ष से आचार्यता शिथिल हो जाती है। कवि निरंकुश होने लगता है। इसी प्रकार आचार्यपन आधुनिकता को झुलाकर नीरस विवेक की वृद्धि करता है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण अनेकों हैं। मतिराम जितने सहज सरस कवि हैं उतने प्रौढ़ आचार्य नहीं। केराय का आचार्यत्व उत्कृष्ट है कवित्व मिश्रित। पर चेमेन्ट्र में ये दोनों गुण मूर्ख प्रौढ़ हैं। संस्कृत साहित्य में इसी प्रकार के दूसरे कवि पंडितराज जगन्नाथ हैं।

चेमेन्ट्र का कवित्व अधिक सरस एवं शक्तिशाली तो नहीं कहा जा सकता, पर व्यापक है। अनेक विषयों पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है और सफलता प्राप्त की है। संस्कृत-साहित्य में इतना विविध लेखी वृत्त कवि नहीं मिलता। काव्य की रौली पुराणों की सी इति वृत्तात्मक है। यत्रतत्र अलंकारों के सफल प्रयोग मिलते हैं।

इनका आचार्यत्व और कवित्व परस्पर सम्बद्ध भी है। कवि के लिए भिन्न भिन्न आदर्शों, विषयों आदि का संकेत इन्होंने किया है प्रायः वही के अनुसार रचनाओं की हैं। रीति सम्बन्धी इनकी दो पुस्तकें प्राप्त हैं—कविकण्ठाभरण और ओषिण्य विचार चर्चा। पहली में कवि शिक्षा के दूसरे में एक मार्ग की स्थापना का प्रयत्न है। कवि शिक्षा के अन्तर्गत जिन आदर्शों का इन्होंने संकेत किया है, उन सभी का पालन प्रायः अपनी रचनाओं में इन्होंने किया है।

कवि के लिए इन्होंने (१) लोकआचारपरिधान—लोक जीवन का परिचय, (२) उपदेश विरोधोक्ति—स्थान-स्थान पर उपदेश प्रद वक्तियों कहना, (३) इतिहासानुसरण—इतिहास को मानना (४) सत्यसुरभ्युक्ति में साध्यभाव—सब देवताओं की समानभाव से स्तुति करना, (५) विविध श्रद्धापायिका रस—उत्कृष्ट काव्य साहित्य में रसि रसना, (६) नाटक-मित्रप्रेक्षा—नाटकों के अभिनेय देखने की रुचि, (७) काव्यांगविद्या

अधिगम—रीतिशास्त्र का ज्ञान। (८) आरम्भ कव्य निर्वाह—काव्य का आरम्भ कर समाप्त कर लेने का स्वभाव आदि गुण बताये हैं। एक एक गुण के अनुसार कवि की रचनाएँ प्राप्य होती हैं। इसका विवरण निम्न प्रकार से है —

- १-श्लोकचारपरिज्ञान १-समय भावना
(वेदियों के व्यवहार का वर्णन)
- २-कला विसास २-कला विसास
(विविध व्यवसायों का वर्णन)
- ३-उपदेशविरोपोक्ति १-वर्षदखन
(मिथ्यामिमान की निन्दा)
२-सेवसेवकोपदेश
(स्वामी सेवक के साथ संबंधों का निर्देश)
३-चारुचर्याशतक
(भेद दिनचर्या का वर्णन)
- ४-इतिहासानुसरण १-भारत मंजरी
(महा भारत का सूक्ष्म रूपान्तर)
२-रामायण मंजरी
(रामायण का सूक्ष्म रूपान्तर)
- ५-सर्पसुरस्तुति में साम्य- १-वशावतार चरित
भाव (वरा अवतारों का वर्णन)
- ६-विविधकथायुक्त रस १-पद्य कवचवरी
(वाणकृत कावचवरी का पद्यमय अनुवाद)
- ७-अभिनय प्रियता १-चित्र भारत नाटक
(महाभारत की कथा का नाटक रूप)
- ८-काव्यांग विद्या का १-कविकण्ठाभरण
अधिगम (कवि शिक्षा का सुदृष्टमय)
२-श्रीचित्तविचार चर्चा
(श्रीचित्त मार्ग की स्थापना)
- ९-आरम्भ कव्य निर्वाह १-किसी भी रचना को कवि ने अपूर्ण नहीं छोड़ा है। सभी पूर्ण हैं।

श्रीचित्त विचार चर्चा के अनुसार काव्य का आत्मतत्त्व श्रीचित्त है। इसके बिना अलंकार, रस, गुण आदि अकिञ्चित्कर है। ये सभी काव्य के विधायकतत्त्व हो सकते हैं जब कि उनके मूल

में औचित्य वर्तमान हो। इस ग्रन्थमें चेमेन्ट्र का समीक्षक रूप भी वर्य गंभीर प्रतीत होता है। यह स्वनि रस, अलंकार आदि अन्य काव्य मार्गों के प्रवर्तक आनन्दपर्यम, अमिनयगुण तथा दृढी आदि के समकण ठहरते हैं। यद्यपि वे सर्वथा मौखिक नहीं हैं। इस ओर भी दृढी आनन्दपर्यम आदि ने स्पष्ट संकेत किये हैं। पर उसे इतना सार्थ मौम महसूस किसी ने प्रदान नहीं किया कि यह काव्य कला के समस्त तत्वों में व्यापक अथ भूलागुणियुक्त प्रतीत हो। यह आचार्य चेमेन्ट्र की देन है। दूसरे कवियों की रचनाओं का समाग्र, समीक्षण तथा विवेचन, भीर आचार्यों के मनों को स्वीकार करते हुये अपने मत का अतिशय प्रकट करना आदि गुणों की चेमेन्ट्र ने प्रशंसा की है। इन सभी के द्वारा उनके निम्न्यों में होते हैं। कवि ने अपने समकालीन तथा पूर्ववर्ती कवियों के सदाहरण निष्पन्न होकर दिये हैं। सभी में यथा समय गुण अवया दोषों का संकेत किया है। यहाँ तक है कि अपनी स्वयं की कविताओं में भी दोष दिखाने में भी इन्हें संकोच नहीं हुआ। इससे चेमेन्ट्र की विशाल क्षमता, महाराज्यता और कला प्रियता का पता चलता है।

चेमेन्ट्र व्यास जी के परम भक्त हैं। इतने कि अपना उपनाम 'व्यासदास' रखते हैं। उन्होंने व्यास को 'मुष्मनोपजीव्य' (कवि मात्र की प्रेरणा का स्रोत) कहा है। इसी मन्त्रासे प्रेरित होकर 'भारत मंजरी' का प्रथम भाग हुआ था। व्यास के अस्तित्व में जीवन का जैसा बहु सुखी व्यापक रूप व्यक्त हुआ है वैसे ही कुछ कुछ इनकी रचनाओं में मिलता है। बुद्धिमान और रामायण के सूक्ष्म रूपान्तर उपस्थित करने में भी यही प्रेरणा काम करती दीरघी है। इससे चेमेन्ट्र का व्यापहारिक विवेकी व्यक्तित्व अनुमित हो जाता है।

छन्दों विषय पर इनका सुष्ठु शिक्षक है जो अपने क्षेत्र में अद्वितीय कृति है। अभिव्यंग्य भाषों के संघर्ष में छन्दों का विचार, उनके गुण दोषों का विवेचन, विशिष्ट कवियों के मिय छंद आदि का इसमें उल्लेख है। छन्दों का इतनी व्यापकता से विचार अन्यत्र नहीं मिलता। औचित्य विचार चर्चा में जो सत्तात्मक प्रकार के औचित्य-न्यास दिखाकर मंजूर किया गया है कि इस प्रकार के अनेक स्थान और भी हो सकते हैं—उसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'मुष्मनोपजीव्य' है जिसे यह नाम से 'पृथोपित्य' कहा जा सकता है।

४—सिद्धान्त विचार

(अ) औचित्य

संस्कृत साहित्य के समीक्षा शास्त्र की बड़ी ज्ञानी परम्परा है। उसका इतिहास भी लम्बा है। यहाँ आचार्यों की दृष्टि काव्य के स्वरूप को पहचानने तथा उसका यथामति विरलेपण करने पर रही है। इसलिये प्रायः सभी आचार्यों ने समीक्षा का प्रारम्भ काव्य के स्वरूप तथा उसके आत्मतत्त्व के निर्णय से किया है। इनमें सबसे पूर्व अलङ्कारवादी आते हैं जो यह अनुमय करते थे कि काव्य की आत्मा अलङ्कार तत्त्व है और उसका काव्य में स्वरूप अलङ्कार है। इसलिये उनके मत से काव्य के सभी गुण अलङ्कार के अन्तर्गत थे। इस संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य हैं दण्डी, मामह और बप्पक। बामन का मत रीति अर्थात् रीढ़ी को काव्य का सर्वस्य मानकर प्रचलित हुआ। इसके अनन्तर रस सिद्धान्त, जो बहुत पहले भरत मुनि द्वारा नाटक के प्रसंग में स्थापित हो चुका था, पुनः दण्ण एवं बप्पक दोनों काव्यों की आत्मा माना जाने लगा। इस सिद्धान्त को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले आचार्य साहित्यिक होने के अतिरिक्त ग्रीष्म दार्शनिक थे। हमके द्वारा विषय का प्रतिपादन ऐसा सांगोपांग एवं गम्भीर पद्धति से किया गया कि इसके अनन्तर दूसरा कोई भाग कम न सका। अभिनवगुप्त वर्तन के महापरिष्ठित थे। मम्मट महावैयाकरण थे। विश्वनाथ भी न्याय के तत्त्वज्ञ थे। अतः उन्होंने रसमार्ग को बड़ी दृढ़ता प्रदान की। आनन्द बर्धन ने ध्वनि को काव्य का जीयम तत्त्व मानकर ध्वन्यालोक ग्रन्थ रचा था पर उन्होंने भी ध्वन्य पदार्थों में भेष्ट रस को ही माना। अतः वे रसमार्ग के अनुयायी ही समझे जाने चाहिये। अभिनव गुप्त ने इसीलिये ध्वन्यालोक पर टीका लिखी थी।

आचार्य कुतूहल ने कवि पद्धता को काव्य का मूल तत्त्व मानकर ब्रह्मोक्ति मार्ग की स्थापना की। ये भी आलङ्कारिक अलङ्कार के पक्षपाती थे। इसी पर उनकी विशेष दृष्टि रही है। अतः वे अलङ्कार मार्ग को सर्वथा स्थाग कर काव्य की समीक्षा करने वाले आचार्य नहीं बने जा सकते। फलतः भारतीय समीक्षा के ऐतन्त्र पर्यं परि निष्ठित मार्ग जिम्हें कहा जा सकता है वे केवल तीन हैं—अलङ्कार

मार्ग, रीति मार्ग और रसमार्ग। इनमें भी अनुवर्तन केवल पहले और तीसरे दो मार्गों का ही विशेष रहा। रीति के अनुवर्तक सबसे प्रवर्तक ही रहे।

—उपर जिनका निर्देश हुआ है वे पाँचों मार्ग ईसा की १० वीं शताब्दी तक प्रतिष्ठापित हो चुके थे। उनका अनुवर्तन आचार्य तथा कवि करने लगे थे। आचार्य चेमेन्ट का वर्णकाल इसी समय आया। उन्होंने अपने काव्यों में जीवन के वयार्थ रूप की व्याख्या की है। अतः वह स्वामायिक था कि उनकी अभिरुचि पहले के आचार्यों की समीक्षा मार्गों से तृप्त न रही। उन्होंने काव्य का 'मूल्यांकन भी वयार्थ दृष्टि से करने का प्रयास किया। काव्यों में उन्होंने समाज की दुर्वृत्तताओं, अनौचित्यों पर व्यंग्य करते हैं और पवित्र औचित्यपूर्ण जीवन की ओर निश्चित संकेत किये हैं। इसलिए उनकी विवेकशील समीक्षा ने यह मानकर कि आध्यात्मिक जीवन का ही अतिरह्य है और जिस प्रकार औचित्यपूर्ण जीवन लेख है उसी प्रकार काव्य भी औचित्यपूर्ण ही लेख है—यह निश्चित किया कि औचित्य-काव्य का स्थिर जीवित है भले ही काव्य रससिद्ध हो। औचित्य रस सिद्धत्व स्थिर काव्यत्व जीवितम् स्पष्ट है कि उन्होंने पुष्पती परम्पराओं को बुरा रक्खर नय सिरे से काव्य का विचार किया था। 'औचित्य तत्त्व की काव्य में मान्यता तो पहले आचार्यों ने भी की थी। पर इस वे काव्य का एक साधारण सांयोगिक तत्त्व मानते थे, प्रमुख नहीं। चेमेन्ट ने इन काव्य के क्षेत्र में आत्म पदवी ग्रहण की है। इस लिए इसे मागता ग्रहण करने तथा काव्य का वयार्थ दृष्टि से आलोचना करने का जेव हमी को है। अब हम पुराने आचार्यों के प्रश्नों में औचित्यतत्त्व का पता लगाते हुये हम सिद्धान्त को स्पष्ट रूप रखा व्यक्त करने का प्रयत्न करेंगे।

भारत - आचार्य भारत ने माटक साहित्य का विचार किया है। इनके लोक पृथ का अनुकरण बताते हुए लोक को ही अभिप्राय के लिए सर्व प्रमुख प्रमाण बताया है। लोक के रूप—रूप, वेप, व्यवस्था, क्रिया आदि का प्रकरण तथा अपरिपक्वी नहीं कह सकते। इसलिये जो जिसके सहज है। जब पीमा होता है, वैसा ही अनुकरण करना चाहिये, यह साधन भारत के नियम का निश्चय है। इतना तो स्पष्ट है कि उन्होंने माटक का निश्चिततम साधक लोक से किया है। इसे

परस्पर के लिए तथा उसके आधारों के रूप में लोक को ही एक मात्र प्रमाण समझा है। 'जो लोक सिद्ध है वह सब अर्थों में सिद्ध है और नाट्य का अन्त लोक के स्वभाव से हुआ है अतः नाट्य प्रयोग में लोक ही प्रमाण है, प्रजा का शक्ति एक-सा नहीं होता। नाट्य की प्रविष्टा शक्ति में ही है। इसलिये नाट्य का प्रयोग करने वालों को लोक का ही प्रमाण मानना चाहिए।' इसीलिये पात्रों के अनुसार भाषा, वेप आदि का उन्होंने निश्चय किया है। जो जैसा पात्र हो उसी के उचित उसकी भाषा, वेप, चरित्र आदि होने चाहिए। उनकी स्पष्ट उक्ति है कि 'यय के अनुरूप वेप होना चाहिये वेप के अनुरूप चलना-फिरना, चलने-फिरने के अनुरूप पाठ्य हो तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय हो।'

ययोऽनुसृतं प्रथमस्तु वेप
वेपानुसृतं गति प्रचारः ।
गति प्रचारानुगतं च पाठ्यम्
पाठ्यानुसृतोऽभिनयश्च यः ।^१

वेप के विषय में और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'देश के अनुसार यदि वेप न हो तो वह शोभाजनक नहीं होगा। यदि मेलका गळे में पहनी जाय-तो उससे हँसी हो होगी।'

अदेरानोहि वेपस्तु न शोभा जनयिष्यति ।
मेलकागळे बंधे च हास्यायेवोपजायते ।

इसी विचार को चेमेन्द्र ने और अधिक बढ़ाकर कहा है कि—
'कंठ में मेलका, निचबों पर बंधनहार, हाथों में नूपुर तथा चरणों में केयूर पहनने से, इसी प्रकार प्रयत्न पर शौर्य तथा शत्रु पर करुणा दिखाने से किसकी हँसी न होगी। अलंकार और शुण बिना औचित्य के रुचिकर नहीं बनते।'

कथंते मेलकाया निरंज फलके चारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुर बंधनेन चरणे केयूरपाशेन वा ।
शौर्येण प्रयत्ने रिपी करुणया नायान्ति के हास्यताम्
औचित्येन विना रुचि न तनुते नात्तं रुचिर्नो गुणा ।

इससे स्पष्ट है कि भरत ने नाट्य के प्रसंग में औचित्य का पर्याप्त आदर किया है। माण्यशास्त्र सबसे पहला समीक्षा प्रम्य है।

१—नाट्य शास्त्र प्रख्यात २६ श्लोक ११३, ११६ ।

२—वही १४ । १५

यही पर औचित्य का इस रूप में समादर सिद्ध करता है कि यह वस्तु यहाँ के काव्यालोचकों की दृष्टि में पहले से ही रहा है।

दण्डी—आचार्य दण्डी ने अमिता से जो मही पर व्यंग्यना से यह व्यक्त किया है कि काव्य में औचित्य का स्थान है। उपमा के दोषों के प्रसंग में उन्होंने बताया है कि यदि भीमान अर्थात् सहृदयों का उद्देश न हो तो उपमान उपमेय के लिंग और वचनों का मिल रूप होना अथवा उनका एक की अपेक्षा दूसरे का होना किंवा अधिक होना कोई दोष नहीं।

नलिंग वचने भिन्ने न हीनाधिकत्वापि वा।

उपमावूपणायात्मम् यत्रोद्देशो न भीमताम्॥

इससे यही व्यक्त होता है कि दोष के होने न होने का विनि गमक सहृदयों का उद्देश है। स्पष्ट है कि यह अमीचित्य से ही होता है। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने गुण शब्द का अर्थ औचित्य किया है। 'अत्रत्यं गुणपदम् औचित्यं परम्।' इसके आधार पर पहली कारिका में भी आचार्य का संकेत औचित्य की ओर है—यह कहा जा सकता है। इस प्रकार असाक्षात् पद्धति से दण्डी ने काव्य में औचित्य को स्वीकार है।

आनन्द वर्धन—आनन्द वर्धन ने अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता एवं विस्तार के साथ इसका प्रतिपादन किया है। कविता के उन्होंने दो प्रकार के दोष बताये हैं—व्युत्पत्ति (ज्ञान) के न होने से तथा प्रतिमा के न होने से। इनमें पहला साधारण और आहार्य है। यह प्रतिमा के मत पर विरम भी सकता है। इसका उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया है कि काबिदास ने शिष्य पार्यट्टी का जो शृङ्गार वर्णन मानवीय भूमि पर किया है यह परम्परा की अवहेलना करने से अत्युत्पत्ति कृत दोष है। पर उनके वर्णन में इतनी चारुता तथा स्वाभाविकता है कि यह दोष नहीं प्रतीत होता। प्रतिमा के अमरकार में दोष को क्षिप्त दिया। फिर प्रश्न उठता है कि किसी शैली के गुणयुक्त या दोषयुक्त होने का निर्णय किस आधार पर किया जाय? इसका विनिगमक क्या है? इसके उत्तर में आचार्य ने बताया है कि वक्ष्य और बोद्धव्य का औचित्य इसका नियामक है।

इसके अतिरिक्त विषय के अनुसार रौन्नी का नियमन करते हुए एक दूसरे स्थल पर आनन्दवर्धन ने स्पष्ट रूप से रसगत औचित्य का प्रतिपादन किया है। हमका कहना है कि विषय सम्बन्धी औचित्य भी रौन्नी का नियंत्रण करना है। भिन्न भिन्न प्रकार के काव्यों में वह भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। जिस गद्य में छम्पादि का कोई नियम नहीं होता वहाँ भी वह औचित्य रौन्नी का नियामक बनता है अथवा पों कहना चाहिये कि श्रेष्ठ रचना में सर्वत्र रसगत औचित्य का समावयव होता है। विषय के कारण औचित्य में कभी कुछ भेद आ जाता है। अन्त में इस प्रसंग का साधरा देते हुए आचार्य ने फिर कहा है कि 'अनौचित्य के अतिरिक्त रसमग होने का और कोई कारण नहीं है। औचित्य का अनुसरण करना ही रस योजना का परम रहस्य है।'^१

इन्होंने छः प्रकार के औचित्यों का वर्णन किया है —रसौचित्य, अर्थअपौचित्य, गुणौचित्य, संपदौचित्य, प्रवर्गौचित्य एवं रीत्यौचित्य। इनमें से एक-एक का परिचय इस प्रकार है —

रसौचित्य—इसके नियामक सिद्धान्त १० हैं, रस को मुख्य प्रतिपाद्य बनाने के लिए—

(१) शब्द और उसके अर्थ का नियोजन औचित्य पूर्ण हो।

(२) सुप्, विभ्, प्रत्यय, वचन, कारक, काष्ठ, शिग, समास, आदि का प्रयोग उचित हो।

(३) प्रवर्ग काव्य में संधि, संप्यस, घटमा आदि का प्रयोग रसानुसृत हो।

(४) विरोधी रस के अंग विमार्पादि का वर्णन नहीं करना चाहिये।

(५) विरोधी वा वा अनेक रसों का एक स्वस में प्रवेश नहीं करना चाहिये।

(६) गीष् वस्तु, घटमा, पात्र तथा वातावरण का इतना विस्तृत वर्णन नहीं करना चाहिये जिससे सुत्तरस ब्रज जाय।

(७) अंगरस और अंगीरस का आपस में सम्बन्ध समान अनुपात से हो। अङ्ग कम तथा अंगी अधिक।

(६) काव्य रसों की नियोजना में पारस्परिक अनुप्रेक्षता होनी चाहिये ।

(६) प्रबन्ध काव्य या भाटक में रसका प्रयोग उचित अवसर पर होना चाहिये ।

(१०) विमाप्य अनुमाप्य, संचारी आदि के वर्णन में औचित्य की रक्षा होनी आवश्यक है ।

अलंकारौचित्य—इसके पाँच भेद हैं ।

(१) अलंकार का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हो तथा प्रतिभा का पुत्र यहाँ रहे ।

(२) अलंकार ज्ञाने के लिये जानकर प्रयत्न न करना चाहिए ।

(३) अलंकार भावों की पुष्टि में प्रयुक्त होने चाहिये ।

(४) वे काव्य में गौण रहें मुख्य नहीं । ऐसा न हो कि पाठक का ध्यान मुख्य विषय से हटकर अलंकार के समलकार पर ही बना रहे ।

(५) समक रसोप आदि शब्दालंकार कोरा समलकार दिखाने के लिये बाह्य एवं स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त न होने चाहिये । वे काव्य के वर्ण में संमिश्र और समन्वित हों ।

गुणौचित्य—गुणों का सम्बन्ध रसों से है, इनकी अभिव्यक्ति विशिष्ट प्रकार के वर्णों द्वारा होती है जैसे कोमल तथा मधुर वर्णों द्वारा माधुर्य की तथा कठोर वर्णों द्वारा ओग की । इसलिये गुणों को प्रकट करने के लिए ऐसे वर्णों का प्रयोग होना चाहिये जो स्वयं इनके और रस के अनुप्रेक्षक हों ।

संपटनौचित्य—संपन्नता का आधार गुण हैं और उपात्त रस, यह पक्षों की उचित रचना है । इसके औचित्य के चार भिन्नार्थ विवक्षित हैं —

(१) संपन्नता रसानुप्रेक्षक हो ।

(२) पात्र की प्रकृति, स्थिति तथा मानसिक दशा के अनुसार इसकी योजना हो ।

(३) इसके प्रयोग में प्रतिपाद्य विषय का ध्यान रखना चाहिये ।

(४) काव्य की प्रकृति का विचार कर संपन्नता का प्रयोग होना चाहिए । भाटक में लम्बे-लम्बे समासों का व्यवहार उचित नहीं ।

प्रबन्धौचित्य—आनन्दवर्धन का यह प्रसंग बड़ा मार्मिक है। इस औचित्य के मियामक तत्व इस प्रकार हैं।

(१) प्रसिद्ध तथा कल्पित वृत्तों में समानुपात रहना चाहिये।

(२) वर्ण्य वस्तु का प्रयोग प्रकृत रस के विपरीत नहीं होना चाहिये।

(३) जो घटनायें काव्य के मुख्य ध्येय में बाधक सिद्ध होती हों, उन्हें परिवर्तित कर देना चाहिये।

(४) प्रामाणिक घटनाओं का विस्तार अंगी रस की दृष्टि में रखकर करना चाहिये। ऐसा न हो कि उसके अतिविस्तार से प्रमुख भाव हल जाय।

(५) वर्ण्य विषय से दूर न हटने चाहिये।

(६) अंग घटना का इतना विस्तार न किया जाय कि वह अंगी बन जाय।

(७) प्रबन्ध काव्य की घटनाओं का निर्धारण होना चाहिये। प्रकृत रस के अनुकूल घटनाओं का ही यहाँ वर्णन न हो।

(८) पात्रों की प्रकृति परिवर्तित न करनी चाहिये।

रीत्यौचित्य—रीति का प्रयोग करते समय बच्चा, रस, अलंकार तथा काव्य के स्वरूप का ध्यान सदा रखना चाहिए। इसके अनुकूल बह हो प्रतिकूल।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि आनन्द वर्धन ने औचित्य का विस्तरेषण बड़ी मार्मिकता तथा विस्तार के साथ किया है। रोमेन्ट को इन्हीं से प्रेरणा मिली थी।

इसके अनन्तर पञ्चोक्ति मार्ग के प्रवर्तयिता कुतक ने भी इसका चक्रेल अपने ग्रंथ 'पञ्चोक्ति औचित्य' में किया है। उन्होंने औचित्य का अर्थ तथा महत्त्व दिखाते हुए कहा है कि—'जिसके द्वारा स्वभाव का महत्त्व पुष्ट होता हो अथवा जहाँ यद्यपि किंचित मोटा के रोमांचितकारी स्वभाव के कारण बाध्यवस्तु आच्छादित हो जाते हो वह औचित्य है।' यहाँ प्रत्यक्षर का यही आशय है यदि किसी वयस वस्तु का

स्वभाव वधार्य रूप में वर्णित किया गया है तो यह औचित्य है। इसके विपरीत नहीं यदि पत्थर या मोटा का स्वभाव अधिक महत्वपूर्ण होता है और उसकी अपेक्षा में वस्तु का स्वभाव हीन होता है तो वहाँ वस्तु का वर्णन मोटा या पत्थर के स्वभाव की जाया में करना ही उचित है। स्पष्ट रूप से वहाँ कुत्तक की दृष्टि वर्य, वर्णयिता और मोटा पर है। उनके वर्णन में परिस्थिति पर ध्यान देने का निर्देश आचार्य ने किया है। इसमें औचित्य की माय्यता स्पष्ट है।

यद्यपि कुत्तक आनन्दवर्धन से अर्वाचीन है और संभाषना होती है 'क इनके ग्रन्थ में औचित्य का विवेचन जयक विशद तथा पिच्छृत होगा पर ऐसा नहीं मिलता। कुत्तक के अनुसार वह रौली के अनेक गुणों में से एक है वह भी बहुत व्यापक नहीं है। इस विषय में वे आनन्दवर्धन से प्रभावित प्रतीत होते हैं। आनन्दवर्धन इस संपदना का नियामक हो मानते हैं। यह बताया जा चुका है। पर उन्होंने बड़े विस्तृत तथा गंभीर ढंग से इसकी व्याख्या की है। कुत्तक की दृष्टि यकृता पर इतनी केन्द्रित है कि वे काव्य के दूसरे तत्त्व का महत्त्व नहीं आंक सकते।

इनके अनन्तर महिम मट्ट आते हैं जिन्होंने अपने 'व्यष्टिविवेक' ग्रन्थ में ३३१ माग की रखरखात्मक आलोचना की है। उन्होंने औचित्य के शब्दोंचित्य एवं अर्वाचित्य दो भेद बताते हुए दूसरे को यह बख्तर छोड़ दिया है कि इसका वर्णन आनन्दवर्धन कर चुके हैं। शब्दोंचित्य को फिर उन्होंने पाँच भेदों में विभक्त किया है—विधेयाविमर्ग, प्रथमभेद, तमभेद, पुनरुक्ति और अधिक पदता। ये पाँचों दोष हैं। वास्तव में इन्हीं औचित्य का प्रसंग छोड़कर अर्वाचित्य का वर्णन किया है। विनायक प्रज्ज्याणो रचयामास पास्तम्। फिर भी प्रश्न में यह कहा जा सकता है कि महिममट्ट जैसे तार्किक भी औचित्य तत्त्व अपेक्षा नहीं कर सके। दोषों के द्वारा ही सही, हमका वर्णन उन्होंने किया है, यहाँ विशेष विचारणीय यह है कि महिममट्ट ने औचित्य को वाच्यमाय समझा है। गुणों का भी समीक्षा की परंपरा में कुछ ऐसा ही इतिहास रहा है। रीतिमार्गी लोगों ने इनका दृष्टिकोण महत्त्व समझा था पर आगे आनेवाले दूसरे लोगों ने उन्हें दोषमाय में अन्तर्भावित कर दिया। महिममट्ट ने केवल औचित्य का भी ऐसा ही भाव्य बन गया। यह वाच्यमाय बनने लगा है। सेमन्ट ने इसका स्पष्ट

संजन किया है, यह होयामात्र नहीं है। स्वतंत्र विध्यात्मक तत्त्व है। महिम मद्र का विचार विमर्श इस सम्बन्ध में अधिक गम्भीर नहीं है।

इसके अनन्तर औचित्य की विवेचना और मूर्त्त्यांकन हेमेत्र द्वारा ही हुआ है। उन्होंने इसे समस्त काव्य बात को परखने का आधार मानकर इसपर एक समीक्षा मार्ग की स्थापना की है। स्वतन्त्र पुस्तक इसपर लिखी है। पुस्तक में यद्यपि पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया गया है फिर भी ये इसे थोड़ा समझते थे। इसीलिये उन्होंने अपनी पुस्तक को 'चर्चा' कहा है।

यह पुस्तक उन्होंने सुमुख कवियों की शिक्षा के लिये लिखी है। इसमें विद्वानों का सा वाग्बिलास या पांडित्य प्रदर्शन की इच्छा जैसा कुछ नहीं है। पुस्तक का संगठन उपयोग को दृष्टि से हुआ है। 'फलत' इसका व्यावहारिक मूल्य बढ़ा है।

मुख्य विषय पर आने से पहले हेमेत्र ने लिखा है कि औचित्य रसका जीवित है। यदि वह काव्य में न हो तो वहाँ अलंकारों का प्रतिपादन करने तथा गुणादि की मिथ्या योजना करने से कोई काम नहीं होता। ऐसी रचना काव्य का पद नहीं ले सकती। अलंकार, अलंकार ही हैं। इसी प्रकार गुण भी गुण ही हैं। इनका महत्त्व इतना नहीं कि जिसके आधार पर रचना को काव्य कहा जा सके। काव्य का स्थिर जीवित तो औचित्य है।

इस प्रतिज्ञा से स्पष्ट हो जाता है कि हेमेत्र की दृष्टि में औचित्य गुण और अलंकारों से भिन्न तत्त्व है इसका काव्य में बही स्थान है जो शरीर में जीवित का। जिन छागी ने यह पदवी (आत्मा) रसको प्रदान की थी उन्हें भी हेमेत्र ने उत्तर दिया है कि काव्य का स्थिर जीवित तो औचित्य है। रस यदि काव्य में प्राक्पद पादगा भी तो अस्थिर रूप से। काव्य औचित्य रहित होकर यदि गुण या अलंकारों से युक्त होगा तो यह निर्जीव हो जाएगा।

अलंकार का कार्य है काव्य में रोमा बढ़ाना। यह तभी हो सकता है जब उसका विकास औचित्य पूर्ण हो। इसी प्रकार गुण भी औचित्य के साथ ही कृतकार्य हो सकते हैं। इसके बिना अलंकारों को अलंकार तथा गुणों को गुण नहीं कह सकते। औचित्य का काव्य में यह स्थान है। इसके मानने की उपर्युक्त आवश्यकता है।

संक्षेप—इसका लक्षण इस प्रकार किया गया है। 'कोई वस्तु यदि दूसरी वस्तु के अनुरूप सदा होती है तो आचार्य लोग उसे उचित कहते हैं। उचित के साथ तत्त्व को ही बोधित्व कहा जाता है।

'उचित' प्रादुराचार्य महश किममस्ययत्।
उचितत्यहि बोभायतबोधित्वं प्रचक्षते॥

इसमें आचार्य का तात्पर्य यह है कि काव्य का सर्वातिशायी गुण सौन्दर्य होता है। यह कोई अनपेक्ष्य अमंगल पूर्वक वस्तु नहीं है। किसी वस्तु को वही में मीमित रखकर सुन्दर या असुन्दर नहीं कहा जा सकता। कालिदास के अमिताभराजकुमरसम में दुष्यत से शकुन्तला का चित्र स्मृति के आधार पर बनाकर उसके आसपास का पातामर्य इमीजिये चित्रित करना आवश्यक समझा जा कि उसके बिना सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं हो सकती थी। इसलिये चित्र में शकुन्तला के अतिरिक्त मालिनी नहीं उसके सौन्दर्य में प्रेममग्न हों के जोड़े, हिमाद्रय की शालाओं पर बैठे मृग मृगिया वृक्ष की शाला में खरकत हुए घरकत घरकत तथा उनके नीचे कासे मृग के सींग में अपना बाँया नेत्र सुजात हुई मृगी को चित्रित किया। अपने पाता-परण के साथ अब सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई। उसके शिबत्वं अथवा अशिबत्वं की स्थापना भी दूसरी वस्तुओं के समन्वय से होती है। जो वस्तु दूसरी के लिये अथवा यह शिष्य है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि कोई अपने महयोगी पदार्थों में समन्वय से विन्यास दे तो वह सुन्दर है और आनन्दक भी है अन्यथा नहीं। सुषण्य के साथ कौंचका संयोग कितना सुन्दर होता है इतना चोरी का नहीं। रंगों के परस्पर संयोजन से यह बात और अधिक स्पष्टता से अनुभव का जाती है। काव्य में भी संयोजन बिगा की प्रसुता रहती है। करुणा का यदि कार्य होता है। जीवन में अनेक अनेकदा हर्ष एवं अनुभूत पदार्थों का किसी भाव या कथा के सहारे समन्वय संयोजन किया जाता है। हम सामान्य का माहुर्य अथवा अनुभव का ही बोधित्व पता जाता है। यह अपेक्ष्य वस्तु है। नीम का गारा गी के लिये नागरिक और ऊँच के लिये गारा है। अधिक भूतलों का उपयोग प्राणीग्यों के लिये अथवा नगरिकों के लिये अनुचित है। 'भय पावर ठाहुर पदन का अथ पदन का पनु दीगनु है।' इस प्रकार बोधित्व एक विन्यासक तत्त्व सिद्ध होता है। यही समन्वय

सौन्दर्य का मूल है। अतः यह मानना पड़ता है कि काव्य में प्रयुज्यमान पदार्थों का परस्पर में सादृश्य अनुरूपता हो यह अत्यन्त अपेक्षित है। खल्लव में हेमेन्ट्र ने 'आचार्य' शब्द से दूसरे लोगों का भी संक्षेप किया है। इससे अनुमित होता है कि इनसे पूर्ण तथा समकाष्ठ में समीक्षा की इस दृष्टि की पर्याप्त माम्यता थी। प्रतिपादन में हेमेन्ट्र को दृष्टि औचित्य तत्त्व की व्यापकता दिखाने पर विशेष रही है। प्रतिष्ठा में इसे मुख्य अलंकार एवं रस में विद्यमान यथाकर इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए काव्य के २८ अङ्ग गिनाकर उनमें प्रत्येक में औचित्य की सच्चा सिद्ध की है। अतः में काव्य के अन्य अंगों में निम्नका वे नाम निर्देश नहीं करते, इसे व्याप्त बताते हैं। परिगणित ८ स्थान ये हैं,—(१) पद, (२) वाक्य, (३) प्रसङ्गार्थ, (४) गुण (५) अलंकार, (६) रस, (७) क्रिया, (८) कारक, (९) लिंग, (१०) यजन, (११) विशेषण, (१२) उपसर्ग, (१३) निपात, (१४) काष्ठ (१५) देश, (१६) काल, (१७) व्रत, (१८) तत्त्व, (१९) संस्व (२०) अमिप्राय, (२१) स्वभाव, (२२) सारसम्य, (२३) प्रतिभा (२४) व्ययस्था, (२५) विचार, (२६) नाम, (२७) आशीर्वाद, तथा (२८) काव्य के अन्य अनेक अंग। इन सब में अम्यव्यतिरेक शैली से व्याहरण प्रत्युदाहरणों द्वारा प्रतिपाद्य विषय को सिद्ध किया है। अन्तिम १८वें तत्त्व काव्यांग का निर्देश मात्र करके छोड़ दिया, यह अतर्क है। किन्तों का विश्लेषण विस्तार करते ?

उपसुक्त २८ काव्य तत्त्वों का भेदी विभाजन कर यदि यह परीक्षा की जाय कि काव्यकला का किन्तना समाव इनके आमोह में होता है तो हम विवेचन को सर्वांगपूर्ण पाते हैं। आचार्य ने काव्य के प्रत्येक अङ्ग में औचित्य की व्यापकता वही वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध की है। वे चार विभागों में विभक्त है—शब्द काव्यशास्त्रीय तत्त्व, चरित्र तथा परिस्थिति प्रत्येक में इस प्रकार भेदी वर्णन है —

शब्द—पद, वाक्य, क्रिया, कारक, लिंग, यजन, विशेषण उपसर्ग, निपात।

काव्यशास्त्र के तत्त्व—प्रसङ्गार्थ, गुण, अलंकार, रस, सारसम्य, तत्त्व, आशीर्वाद तथा काव्य के अन्य अनेक अङ्ग।

चरित्र—व्रत, संस्व अमिप्राय, स्वभाव, प्रतिभा, विचार, नाम।

परिस्थिति—काल, देश, कुल, अवस्था ।

= ४

= २८

इन्हें इस प्रकार देखें, काव्य को सूक्ष्म रूप से अभिव्यक्ति और अभिव्यंग्य दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं। इनमें से अभिव्यक्ति के अन्तर्गत शब्द और अर्थ आते हैं। अर्थ को भी पुनः न मानें तो कोई हानि नहीं। उसका विवेचन शब्द के ही अन्तर्गत हो जाता है। समूची अभिव्यक्ति शब्द में समाती है। काव्य की अभिव्यक्ति को साधारण अभिव्यक्ति से विच्छेदण, चमत्कारक, रसयुक्ती बनाने के लिए काव्य मर्मज्ञों ने काव्य के कतिपय अंगों की कल्पना की है। काव्य शास्त्र जन्मी के सहारे काव्य की मीमांसा करता है। वह काव्यगत अभिव्यक्ति की साव्यसम्भा का, आयोजन नियोजन का साधन है। जेमेन्ड के पहले दो विभागों में अभिव्यक्ति पद का १७ भागों में विच्छेदण कर औचित्य को उनमें व्याप्ति परखने का प्रयास है। इनमें ध्यान करना चाहिये कि अनेक लक्ष्य प्रतिष्ठ काव्य मीमांसकों ने इनमें से एक-एक शब्द, अलंकार, रस आदि को लेकर ही काव्य की मीमांसा की है। उनकी तुलना में जेमेन्ड की विचार-पद्धति कितनी विस्तृत लगती है? अभिव्यंग्य में हम व्यक्ति और इसकी परिस्थिति को ले सकते हैं। जेमेन्ड ने अतिशय विभाग स व्यक्ति और परिस्थिति विभाग स उसके सांवागिक पाठापरण का ११ विभागों में विभाजन कर सर्वत्र औचित्य का दिखाया है। इसका अर्थ यही होता है कि आचार्य ने अपने प्रतिपादन में व्यापक तथा वैज्ञानिक शैली को अपनाया है।

रस तथा कारक का अपेक्षा कृत अधिक विस्तार से विचार किया गया है, इसमें भी रस का सबसे अधिक। इसका कारण आनन्द धर्पण तथा अभिनय गुण का प्रभाव प्रतीत होता है। कारक तो सात प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक पर विचार करने के विस्तार हो जाना स्वाभाविक है। रसगत औचित्य का लाभ विस्तार दृष्ट जेमेन्ड ने बताया है कि इससे रसकी कथिरेता एवं व्याप्ति बढ़ जाती है। औचित्य संकलित रस मायुक्त हृदय क समस्त देश में फैल जाता है। अथवा अनीदित्य अंतरता रहता है और ऐसा लगता है मानों हृदय का कुल भाग तत् और कुछ अनुभूत रह गया हो। रस गत आचार्य क रूप अनन्य है। योग्य विभाय अनुभाव की याचना, संयुक्तमान मानों का अति निर्वाचन, पात्र क अनुसार भाव की व्याख्या, आशय और आक्षेपन

विचार आदि। माय वर्णन में परिस्थिति का ध्यान मायों के परस्पर संमिश्रण में सादर्य का ध्यान विरोप रूप देवे। मायों के संमिश्रण में व्यास जैसे सहज कवि भी प के भागी बीज पड़ते हैं। जिस प्रकार भोजन रसों में संमिश्रण सब प्रकार से नहीं होता। उसमें कुशाग्रता से संरक्षण करना पड़ता है। इसी प्रकार काव्य रसों के में औचित्य की रक्षा करना चाहिये। अनौचित्य का बोझ भी बिरतुष्य उत्पन्न हो जाता है।

। उदाहरण देने की समता भी विरोप प्रशंसनीय है। वात के लिये वे उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण दोनों देते हैं की व्याख्या करते हैं। इस विषय में वे बड़े निःसंकोच प्रवीण होते हैं। जिनके पर उदाहरण हैं हमके नाम दिये हैं। प्रयोग का नाम उल्लिखित किया है। निःसंकोच प्रविदास, व्यास, राजरोसर जैसे व्यासनामा कवियों के लिये हैं। उदाहरण इतने हैं कि अपना दोष दिखाने में भी हैं।

अम्बु में दूसरी विरोपता इनके निर्वात निर्यायों की है। छाना चाहते हैं उसे जो टूट करते हैं। विचारणा व्यास-से की गई है। पाणिनीय का प्रदर्शन अथवा शास्त्रों का शब्द सिद्ध करने का प्रयास कभी नहीं किया गया। वे ही सत्यता में भावुकों के अनुभवों का ही साक्ष्य ठीक

। नों पर प्रभाव—चेमेन्द्र के अनन्तर आने वाले आचार्यों का प्रभाव बड़ा प्रबल था। इसलिये रस के अतिरिक्त काव्य रसत्व को उन्होंने आत्मस्थानीय महत्त्व नहीं दिया। रस मार्ग जो चेमेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित हुआ था, आने पड़ता गया। उसकी व्याप्ति गुण दोषों तक सीमित मत ने कहा है कि औचित्य के कारण गुण कभी दोष भी गुण बन जाते हैं। यह उसके गुण दोषों की परीक्षा का बनने का प्रमाण है। रसादि से जो उसका सम्बन्ध गया।

योग में अपने विस्तृत ग्रन्थ 'सरस्वती कण्ठामर' में इसका प्रासंगिक रूप से विवेचन किया है। अर्थ दोषों के अन्तर्गत औचित्य विरुद्ध नाम का एक पाप उन्होंने माना है। इसी का औचित्य के कारण गुण रूप भी उन्होंने दिखाया है। एक और स्थान पर अलंकार विवेचन के अन्तर्गत औचित्य को भाषा तथा शैली का गुण स्वीकार किया है। यहाँ इसके निम्न खिलित छ' मेरू दिखाये हैं।

१—विषयौचित्य—जिसके कारण अलंकार यथार्थ अलंकार बन सकता है।

२—माध्यौचित्य—अवसर के अनुकूल संज्ञा, प्राकृत आदि मापाध्यों का व्यवहार करना।

३—देशौचित्य—देशानुसार भाषा का व्यवहार।

४—समयौचित्य—समयानुसार भाषा का व्यवहार।

५—पक्षद्विषयौचित्य—पक्ष की वशा के अनुसार भाषा का प्रयोग।

६—धर्मौचित्य—विषय के अनुसार गद्य अवयव पद्य का प्रयोग।

विपरण से स्पष्ट है कि भोज औचित्य को काव्य के कतिपय स्थलों का गौण अङ्ग समझते हैं। इसका काव्यात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं।

हेमचन्द्र ने इसी प्रकार प्रसंगवश काव्यानुशासन में औचित्य का उल्लेख किया है। उन्होंने छायोपजीवन को अर्थात् दूसरे कविओं के पद, वाक्य, वाक्यांशों के अनुकरण को काव्यानुशासन का एक उपाय बताया है। इसमें औचित्य रक्षण पर ध्यान दिखाने हुए व्यक्त किया है कि प्रेक्षा न करने से कवि काव्यचौर्य का दोषी बन जाता है। दोषों के प्रकरण पितृभिः अर्थात् संपि न करने को औचित्य वश गुण या दोषाभाष माना है। गुणों के प्रसंग में भी उन्होंने प्रतिपादित किया है कि वरपि गुणों में भाषा भिन्न होती है फिर भी वृत्त, वाक्य या प्रबन्ध के औचित्य से इसमें परिवर्तन हो जाता है। अन्त में यह भी साधारणतया कहा है कि दूसरे स्थानों में भी औचित्य का अनुसरण करना चाहिये।

इस विपरण से प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र ने औचित्य का विमर्श तो पर्याप्त किया है पर दिया उसे गौणपद ही है। इसके अनुसार इसका सम्बन्ध पद्य, वाक्य तथा प्रबन्ध तीन तत्वों से है।

विश्वनाथ ने इसे गुण दोषों तक ही सीमित कर दिया है। गुण दोषों का निर्वण्य इसी के आधार पर होता है। सब के बाद अन्तिम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ आते हैं। उन्होंने शब्द सामर्थ्य के प्रसंग में औचित्य को काव्य का गुण माना है।

इस प्रकार संस्कृत के सभीका शास्त्र का इतिहास देखने से पता चलता है कि औचित्य का काव्य में बोझ बहुत भूषांकन सभी के द्वारा हुआ है। हयबी ने 'अप्रत्यक्षत' इसका निर्देश किया है। आनन्द वर्धन ने इसके व्यापक महत्त्व को ठीक समझकर उसे उचित विस्तार प्रदान किया। कुतक ने इसके महत्त्व को तो पहचाना पर काव्य में उसे गौणत्व ही माना। महिमभट्ट ने इससे भी कम महत्त्व दिया। सेमेन्द्र ने इस समस्त काव्य में व्याप्त समझकर उसके आधार पर एक स्वतंत्र मार्ग को स्थापना की। पर उनका कोई अनुयायी न हो सका। बाद में तो सभी विद्वान् रस सिद्धान्त के एक मात्र स्वीकर्ता बन गए। मम्मट, भोज, विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ सब इसी भेखी के आचार्य हैं। इन लोगों ने औचित्य की सीमा केवल गुण दोषों तक ही स्वीकार की।

ऊपर के इतिहास से पाठक के मन में फिर एक संदेह उत्पन्न होता है। वह यह कि औचित्य को काव्य के अन्य गुणों के समान एक गुण मात्र मानना ठीक है जैसा बहुत से आचार्यों ने किया है या फिर काव्यात्मा मानकर कविता में इसका अनिवार्य महत्त्व स्वीकार करना उचित है जैसा कि सेमेन्द्र और आनन्द वर्धन ने किया है। समस्या पर फिर से विचार करना चाहिये। सेमेन्द्र ने स्वयं इसका उत्तर दिया है। राजशेखर के काव्य पुरुष का रूपक लेकर वे कहते हैं कि कविता में माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुणों का वही स्थान है जो मानव शरीर में सत्वगुणित, चर्दरता आदि गुणों का है। वे शरीर के विषमक उत्पन्न नहीं हैं विशिष्टता उत्पन्न करने वाले समवेत गुण हैं। अतएव भी इसी प्रकार सायोगिक पदार्थ है। उसके न होने से शरीर का विद्यमान महत्त्व घट नहीं सकता। सूना शरीर शरीर ही कहलायेगा कुछ और नहीं। हाँ, बिना अलंकार के उसकी शोभा न बढ़ पायेगी। गुणों का अभाव काव्य में कुछ हेयता का होता है पर वह भी उसकी काव्य संज्ञा नहीं मिटा सकता। चर्दरता आदि के बिना भी पुरुष को पुरुष ही कहा जायगा।

इस शैली से रस का भी विचार करना चाहिये। रस काव्य की आत्मा माना गया है। पर स्वेमेन्द्र इस ग्रापना से सहमत नहीं। उनके अनुसार रसका कार्य में यही स्थान है जो अन्य रसों का मानव शरीर में है। यों कहना चाहिये कि जीवित रहने के लिये शरीर और आत्मा दोनों की आवश्यकता पड़ती है। शरीर की रचना पृथ्वी आदि पाँच तत्वों तथा सात रसों द्वारा होती है। ये शरीर के विधा एक तत्त्व हैं पर आत्मा इनसे भिन्न वस्तु है। यह भी शरीर धारण के लिये अनिवार्य है, रसों का सम्बन्ध शरीर से है। इसके लिये हम का महत्व सर्वोपरि है। पर आत्मा शरीर को जीवन प्रदान करता है। काव्य में रस रसावलीय है और जीवित आत्मस्थानीय। रसक रहते हुए भी यदि जीवित नहीं तो काव्य निर्भीय है। रसाभास, रस, शेष आदि की यही स्थिति होती है। वे रस गत जीवितमामय के नामान्तर हैं।

इसी प्रकार जीवित तथा शेषों का अन्तर समझ लेना चाहिये। यह काव्य के काव्यत्व का शेष कर देता है, उसके जीवन को हर लेता है। शेष केवल शीर्ष पर आघात करते हैं। कहीं उसे चर्पका लुप्त कर देते हैं तो कहीं घटा देते हैं। पर मनुष्य असुन्दर रह कर भी है तो जीवित ही।

जीवित के आधार पर काव्य मीमांसा का मार्ग दिखाकर स्वेमेन्द्र ने एक और बड़ी विशेषता की है। काव्य कला को जीवन के निकट ला दिया है। रस, अलंकार आदि के सिद्धांत आदर्शवाद के सिद्धांत हैं। साधारण जीवन के साथ उनका सम्बन्ध बहुत कम है। इसीलिये इन्हें माननेवाले कवियों की रचनाओं में अविषादिता दिखाई पड़ती है। जीवन का व्यवहार उनसे विस्तृत छुट गया है। माष, महु मारुष, भीष्म आदि इसके प्रमाण हैं। इनके काव्यों में जीवन बहुत कम है, कला का प्रदर्शन ही सर्वप्रमुख है।

जीवित जीवन प्रभूत गुण है। इसकी धारणा जीवन से प्राप्त होती है। यहाँ जीवित और अजीवित का सतत संघर्ष चलता है। जीवित ठहरना है और अजीवित तब तक सङ्करावला रहता है जब तक या तो यह जीवित नहीं बन जाता या फिर मर चुका हो जाता है। हम देवानुर संसार में अन्तिम विषय देखें की ही होती है। अन्तिम विषय शरीर में विद्यमान वस्तु के समान थाहा भी जीवन को विस्तृत-

लित, विचलित एवं अस्थिर बना देता है। इस के विपरीत जो उचित है वह सुन्दर मंगल और प्रिय लगता है। यह वह धुरी है जिस पर जीवन-चक्र घूमता है। नियम अपवाद, विधान, स्मृति सदाचार, धर्म, नीति अम्यात्मिकता, दर्शन आदि सब इसी के घटे बड़े उपनाम हैं। इसको काव्य का मूल तत्त्व मान लेने का अर्थ होता है काव्य और कला को जीवनमय बनाने का प्रयास। इसके सहारे कला आदर्शवाद तथा अन्ध प्रधानता (Subjectivity) के स्वर्ग से उतर कर यथार्थवाद तथा विषयप्रधानता (Objectivity) की भूमि पर विचरण करने लगती है। यह व्यावहारिक बन आती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हेमेल्ट के काव्य हैं जिनमें जीवन के यथार्थ रूप की विद्वत् व्याख्या है, जीवन को सुषुप्त बनाने का विध्यात्मक सुन्दर प्रयास है।

जीवित्यवादी के लिये समीक्षा के बहुत से मन्त्रों समाप्त हो जाते हैं। उसका मार्ग सीधा हो जाता है। जो उचित है वह काव्य है। जीवित्य की मात्रा पर ही काव्य का अध्ययन, मध्यम, भेद्य होना निर्भर रहता है। और जीवित्य का आधार ? इसका आधार जीवन है जो सबको अनुमूत और प्रत्यक्ष है। फिर गुण, दोषों के विभाग उप-विभाग कर कम्भी संख्या बमाने की आवश्यकता नहीं रहती। जीवित्य के श्रेष्ठ में ही वे सब समा जाते हैं। कविकण्ठाभरण में हेमेल्ट ने जो गुण दोषों के अधिक भेद नहीं दिखाये, इसका कारण यही है। एक और तरह से विचार कीजिये—

काव्य का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है—रूप की दृष्टि से और भाव की दृष्टि से। भारतीय साहित्य के आलोचकों ने यही किया है। रीति, गुण अलंकार आदि को महत्त्व प्रदान कर काव्य को आलोचना करनेवाले विद्वान् उसके रूप का विवेचन करते हैं। और बिन होगी भ रस ध्वनि आदि को प्रमुखता देकर कविता की परछ की है वे भाव पक्ष के दृष्टा हैं।

भाव और रूप या अर्थ और भाषा में कौनसा व्याप्य है और कौनसा व्यापक, इसका विचार किया जाय तो पता चलता है कि साधारण शोक व्यवहार और काव्य जगत् में इस दृष्टि से परस्पर विरोध रहता है। साधारण व्यवहार में रूप या भाषा व्यापक बनकर आती है। वह अपने में अर्थ को समाये रहती है। अर्थ की सीमा

भाषा की सीमा के अन्दर रहती है उससे परे नहीं। काव्य का क्षेत्र इसके विपरीत होता है। यहाँ भाषा जगत अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और व्यापक रहता है। रूप या भाषा उसको अपेक्षा में व्याप्य या समुत्तर होती है। इसीलिये यहाँ लक्षणा तथा व्यंगना का आश्रय लिया जाता है। इन वृत्तियों द्वारा भाषा अपना सीमा-विस्तार बढ़ाती है और भाषा सीमा को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। साधारण व्यवहार में इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यहाँ केवल अभिधा से ही कार्य चल जाता है। अस्तु कहने का सार यही है कि काव्य में रूप व्याप्य होकर तथा भाषा व्यापक होकर प्रयुक्त होता है। भावुक या विचारक जो यह अनुभव प्रायः किया करते हैं कि जितना उनके मन में है वह सब भाषा में नहीं आ पाया, इसका भी यही अर्थ है। इस प्रकार काव्य में दो परिधिर्षो बन जाती हैं—रूप-परिधि और भाषा-परिधि।

रूप का विवेचन हमारे यहाँ अलंकार गुण या रीति के द्वारा हुआ है। इनमें से कोई भी एक इतना पूर्ण नहीं कहा जा सकता कि वह समूचे रूप की व्याख्या करे। इसी प्रकार रस ध्वनि आदि भी समूचे भाषा की व्याख्या नहीं कर पाते। वह गुण तो किसी में भी नहीं है कि अपने क्षेत्र से बाहर की वस्तु को भी ग्रहण करे, अर्थात् रस आदि रूप की व्याख्या करे या अलंकार आदि भाषा का आच्छन्न करें। समीचीन ग्रन्थों में जो रसवाद के अन्तर्गत भाषा आदि का और अलंकार आदि के अंतर्गत भाषा आदि का विवेचन किया गया है वह अपने-अपने सम्प्रदाय को पूर्णता प्रदान करने के लिये सांयोगिक सम्पत्ति का किसी न किसी सम्बन्ध द्वारा समाहरण मात्र है।

किर प्रश्न उठता है कि कोई देसा भी तब आश्लेषकों की दृष्टि में आया है जो भाषा और भाषा रूप और रस दोनों पर समान प्रमाद रखता है। वह इतना व्यापक हो कि दोनों क्षेत्रों के गुण उसमें समा जायें। यह तथ्य अविश्व है। इसके द्वारा अलंकार, गुण, रीति की भौति रस ध्वनि आदि सब की व्याख्या हो जाती है, इसीलिये कहा गया है कि ध्वनि, रस और अनुमिति अविश्व का अनमरण करते हैं और गुण, अलंकार तथा रीति के मार्ग बन्धोत्थम होते हैं।

अविश्वीमनुष्यापत्ति सर्वे ध्वनिरगोप्यता।

गुणालंकाररीतिनां यथा रूपानुवादमप्य।

इशोक का तारतम्य यही है कि ध्वनि, रस और अनुमान इन तीनों की व्याख्या एक औचित्य से और गुण और अलंकार तथा रीति की व्याख्या एक वक्रोक्ति से हो जाती है। वक्रोक्ति रूप संपत्ति होने के कारण औचित्य में सम्मिलित होती है। इस प्रकार सब से अधिक व्यापक वक्त्र काव्य के क्षेत्र में यदि कोई कहा जा सकता है तो वह औचित्य ही है। डॉक्टर रामचन ने इसे निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा समझाया है। इससे औचित्य का काव्य में कितना महत्त्व है—यह स्पष्ट होता है।



भाषा की सीमा के अन्दर रहती है उससे परे नहीं। अल्प का क्षेत्र इसके विपरीत होता है। यहाँ भाषा जगत अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और व्यापक रहता है। रूप या भाषा समझी अपेक्षा में व्याप्य या लघुतर होती है। इसीलिये यहाँ लक्षणा तथा व्यंग्यमा का आश्रय लिया जाता है। इन युक्तियों द्वारा भाषा अपना सीमा-विस्तार बढ़ाती है और भाषा सीमा को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। साधारण व्यवहार में इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यहाँ केवल अभिधा से ही कार्य चल जाता है। अस्तु कहने का सार यही है कि काव्य में रूप व्याप्य होकर तथा भाषा व्यापक होकर प्रयुक्त होता है। भाषक या

श्लोक का तात्पर्य यही है कि ज्वनि, रस और अनुमान इन तीनों की व्याख्या एक औचित्य से और गुण और चालाकार तथा रीति की व्याख्या एक यमोक्ति से हो जाती है। यमोक्ति रूप संपत्ति होने के कारण औचित्य में अन्तर्मुक्त होती है। इस प्रकार सब से अधिक व्यापक तरह काव्य के क्षेत्र में यदि कोई कहा जा सकता है तो वह औचित्य ही है। डाक्टर रामवन ने इसे निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा समझाया है। इससे औचित्य का काव्य में कितना महत्त्व है—यह स्पष्ट होता है।

(भा)—साधारण आलोचना में औचित्य विचार

आजकल समीक्षा की शैली यूरोपीय ढंग की विशेष है। उसमें द्रष्टव्यता की एक कसौटी रख कर कवि या कलाकार की कृति के सवागीयरूपकी समीक्षा की जाती है। भारतवर्ष की समीक्षा शैली प्रायः लयबद्ध प्राद्विष्टी है। रीतिप्रथाओं ने छन्दोग्रन्थों में गुण, दाप, रीति, वृत्ति, अलंकार, ध्वनि, रस आदि के सङ्ग्रहों के साथ बड़ाहरस दे देकर छुटपुट ढंग से किसी कवि का किसी प्रासंगिक दृष्टव्यता या निकृष्टता का संकेत किया जाता है। उसमें कवि का समग्र रूप गृहीत नहीं होता। रस भीषासा अथवा ऐसी है जिसमें काव्य के वस्तु विन्यास, भावविन्यास, भावों की माप्रा भाषा आदि का सामूहिक रूप से समीक्षण करने का सिद्धान्त निहित है। पर उसमें भी चरित्र आदि का विचार करने का अवकाश नहीं रहता। अलंकार, ध्वनि, गुण, रीति आदि के सिद्धांत रचना के समस्त रूप का स्पर्श नहीं कर पाते। इस दृष्टि से औचित्य मार्ग सर्वमोष्ठ है, क्योंकि यह काव्य के सप अंगों का स्पर्श करता है। हेमचन्द्र के अनुसार द्रष्टव्यता की कसौटी है औचित्य। काव्य या साहित्य में औचित्य की परीक्षा ही वास्तविक काव्य समीक्षा है। 'यदि कोई महिला अपने गले में लगाड़ी, कमर पर हार, हाथ में नूपुर और पैरों में भुजबंद बांध ले, इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने मुक्त हुए व्यक्ति पर बड़ापुरो और शत्रु पर करुणा दिखाए वा सब बात उस पर ईसंगे ही। औचित्य के विना न तो कोई सभापट अथवा लगी है और न गुण।'।

कठे मेघजपा निर्विकलछटे तारेण हारेण वा,
पाणी नूपुरबंधनेन चरणे पद्मपाशेन वा,
शौर्येण प्रणयेरित्री करुणया नापाशित के हारस्वाम्,
औचित्येन विना रुचि न वनुते नालंकृतिना गुणः ।

हेमचन्द्र का औचित्य विचार, इस दृष्टि से यूरोप के समीक्षा मार्गों के निवृत्त प्रतीत होता है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि औचित्य की दृष्टि से अगर भी कला के समीक्षण का कार्य हुआ है या नहीं। भारतवर्ष है कि अगर नहीं न भी अधिक इस पर बल दिया गया है।

सबसे पूर्व यूनान में इसका प्रयोग संगीत शास्त्र के सिद्धान्तों के संबंध में किया गया। आगे चलकर इसका संबंध भाषण कला के साथ जुड़ा। उस समय इसका स्वल्प दार्शनिक अधिक था। व्यावहारिक रूप से इसका अनुवर्तन नहीं होता था। अरस्तू ने भाषण शास्त्र के प्रसंग में कवि कला में इसका विचार किया। उन्होंने इसे 'प्रोपेन' नाम से व्यवहृत किया है। अरस्तू का शिष्य थियोफ्रेस्टस हुआ। उसने जीवित्य को शैली का गुण माना। इसके अनन्तर यह भाषण शास्त्र तथा काव्य शास्त्र के गुणों में प्रधान तत्व माना जाता रहा। यह स्थिति आगे तक चलती रही। कुछ समीक्षक जीवित्य तत्व पर इतना बल देते थे कि शैली तथा उसके प्रकारों को जीवित्य का ही ह्मन्तर समझते थे। इसी आधार पर दो अनुसियस ने इस प्रसंग में कहा है कि—'खिल के जिस अंग में जीवित्य नहीं होगा, वह यदि पूर्ण रूप से व्यर्थ नहीं है तो कम से कम उसका महत्वपूर्णे अंश अपरथ व्यर्थ होगा।'

इसी तरह को सिसरो ने लैटिन में 'बैकोरम' नाम दिया है और इसकी बारबार दुहराई की है। होरेस और किन्टीलस ने भी जीवित्य के सिद्धान्त को बड़ी प्रमुखता दी है। मध्यकाल में भी एस टॉमस इसी सिद्धान्त के पक्षपाती रहे हैं। वे सीमर्य का 'छन्द बाध जीवित्य' कहते हैं। वॉले ने इस सिद्धान्त को बड़ी गंभीरता के साथ स्वीकार किया था। यूरोप में जब पुर्नजागरण काळ आया तो इसका प्रभाव काफी बढ़ गया। रेनासिंस युग में तो इसी का बोझाड़ा रहा, 'विरोपठ' फ्रांस में। ईंग्लैण्ड के पुटेनहम सिडनी और जीम्सन् ने इसी सिद्धान्त का प्रचार किया। आगे चलकर डाइडन ने लेखनकला को विचारों तथा शब्दों का जीवित्य माना था। यही बात अठारहवीं शताब्दी में जीम्सन् के द्वारा अधिक स्पष्ट होकर व्यक्त हुई। रोमांटिक मार्ग के लेखकों ने भी रुढ़ि पर बल न देकर प्रकृति का महत्त्व दिया और दूसरी व्याख्या के साथ जीवित्यवाद को कला में स्वीकारा। इस प्रकार यूरोप की कला समीक्षा में जीवित्य की मान्यता बहुत काल तक तथा भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतेमान रहा है। अब कुछ विशदता के साथ एक एक का विचार किया जाय।

अरस्तू—सबसे पूर्व अरस्तू का इस विषय में क्या विचार है—यह दिखाने का प्रयास करते हैं। उन्होंने उला के विवेचन में दो प्रमुख सिद्ध हैं। पोटेटिक्स और रिगोरिक। पहले में काव्य कला और दूसरे

में भाषण कला का उपपादन है। दोनों में ही औचित्य को मान्यता प्रदान की है। पोट्टिक्स में घटनीचित्य, रूपौचित्य, विरोधौचित्य, तथा विपरीतचित्य चार प्रकार के औचित्य भेदों का वर्णन किया है। इनमें घटनीचित्य नाटक की कथायन्तु से सम्बन्धित है। इसका दुहरा अर्थ है। नाटक की घटना यन्तु जगत से सम्बन्धित होनी चाहिये। यही घटना उचित है। दूसरी अनुचित। अर्थात् चरित्र के अनुसार घटना सत्य न हो वा संभव आवश्यक हो। यह एक प्रकार का घटनीचित्य है। दूसरे प्रासंगिक घटना मुख्य या आधिकारिक घटना के उचित होने चाहिये। इस प्रकार घटनीचित्य के दो भेद उन्होंने स्वीकार किये हैं।

रूपौचित्य का अर्थ यह है कि वस्तु को प्रमाणगाली तथा सुन्दर बनाने के लिये रूपक का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग में इस बात की सावधानी रखनी पड़ती है कि रूपक उचित हो। यद्यपि यन्तु का उत्कर्ष दिखाने में उत्कृष्ट गुणों से युक्त विरोध तथा उसे ही न दिखाने के लिए हीन गुणों से युक्त विरोध प्रयुक्त करने चाहिये। रूपक में उपमान और उपमेय का ध्येय रहता है। इसमें यह देखना चाहिये कि उपमान उपमेय का समान काटि, समान जाति तथा समान धर्म का हो। अन्यथा रूपक अनुचित हो जायगा। उदा. का 'गुलाबी औगुली वाला' कहना उचित है, मैगनी औगुली वाली कहना अनुचित।

विरोधौचित्य में यह देखा जाता है कि प्रकरण में वा अर्थ हो उसकी पुष्टि करना विरोध का काम है। इसलिये इस अर्थ के लिए उपयुक्त विरोध का प्रयोग करना चाहिये। यही विरोधौचित्य है। पराशरम की निम्न का प्रसंग में उस मातृ हत्या तथा मरणा का प्रसंग में 'पितृ हत्या का शायक' कहना उचित होगा।

विपरीतचित्य का सम्बन्ध भाषावित् भाषा से है। भाषा भाषा स्वयंका होनी चाहिये। भाषा यदि उदात्त है वा भाषा छुट, दुर्बल न हो। इसी प्रकार भाषा यदि साधारण है तो भाषा में भाषा या गांधीय अधिक नहीं होना चाहिये। भाषण करते समय अपना गद्य वा पद्य को रचना करते समय इस प्रकार के विपरीतचित्य पर ध्यान न रखने वाला व्यक्ति को ईंसी दाती है।

रिटोरिक में भी चरित्र के औचित्य (Propriety) का निराद ध्यान दिया है। यह यथायथ भाषावित् है। यद्यपि यह ध्यान

है श्रोता को अपने घरा में लाकर अपने विचारों के अनुकूल बनाना । इसके लिए बसे रसानुकूल भाषा का प्रयोग करना चाहिए । अनादर प्रकट करने में कोष की भाषा किसी की सजुता व्यक्त करने में हीनता की भाषा पर्य प्रशंसा करने में महत्व व्यंजक भाषा का प्रयोग करना भाषा की रसानुकूलता है । माय और भाषा में पूर्ण सामंजस्य होना चाहिये । यह मायीचित्य है । मायीचित्य वक्ष्य को विरयसनीय और उक्ति को सत्य दिख करता है । इसके अन्वय में मापण का सम्बन्ध कानों से मले डी हो, हृदय से नहीं होता ।

इस प्रकार पारचात्य आलोचना के महत मुनि अरस्तू ने पाँच प्रकार के औचित्य श्रेणी का वस्तुतः अपने काव्यों में किया है ।

सांगिनय—इसके अनन्तर तीसरी शताब्दी के आलोचक सांगिनस आते हैं, उनका ग्रन्थ 'सीन डी सक्लाइम्' पारचात्य आलोचना शास्त्र की मौलिक रचना समझी जाती है । इसमें ग्रन्थकार न अलंकारोचित्य तथा शब्दोचित्य दो प्रकार के औचित्यों का वस्तुतः किया है । वे काव्य में मग्ग्यता (Sublimity) के पक्षपाती हैं । उसकी पुष्टि अलंकारों द्वारा होती है । अलंकार शब्द तथा अन्वय का सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं तथा काव्य में मग्ग्यता व्यक्त करने में सहायक होते हैं । दूसरी ओर मग्ग्यता अलंकार के अमस्कार की पुष्टि करती है । इस प्रकार दोनों में परस्पर का अपकारोपकारक भाव रहता है । पर यह बात तभी हो पाती है जब कि अलंकार का प्रयोग उचित हो । इस औचित्य का अर्थ यह है कि यह भाषा के साथ-साथ ही जन्मा हो । भाषा के साधारण होने पर विशेष प्रयत्न द्वारा कवि अमस्कार ज्ञान के लिये अलंकार योजना बाध में करे—यह न होना चाहिये । अन्वय-पद्यन ने जो पृथक्-व्यत्न-निर्यत्य तथा अपृथक्-व्यत्न-निर्यत्य दो भेद अलंकार प्रयोगों के माने हैं उनमें से दूसरा उचित है वहला अनुचित ।

शब्दोचित्य को और भी स्पष्टता के भाषा उन्होंने दिखाया है । काव्यकला में शब्द को वही महिमा है । उचित तथा शोभन पदों का प्रयोग श्रोताओं के हृदय पर आकर्षण तथा आश्वासन की भाव बाधता है । उनमें जीवनी शक्ति होती है । इसके बिना काव्य मृतफसा लगता है । 'सुन्दर तथा उचित शब्द अर्थ का वास्तविक आशोक है ।'¹

1 For in fact beautiful words are the very and peculiar light of thought

शब्द का फिर औचित्य क्या पास है इसके लक्ष में समझने विपरीत-
मुख्य शब्द प्रयोग ही बताया है। मध्य तथा महिमासहित शब्दों
का प्रयोग इसी प्रकार के विषयों के वर्णन में करना चाहिए। इसके
विपरीत करने से शब्द प्रयोग अप्रसंगिक होगा। इससे स्पष्ट है कि
सांगिनस काव्य में शब्दौचित्य की महिमा को ठीक-ठीक समझते थे।

हौरस—इनका ग्रन्थ 'आर्त् पोइटिका' है। इसमें औचित्य की
मान्यता और महत्त्व अनेकत्र दिखाये हैं। कवियों के लिए इसके तीन
बारे हैं।

- १—श्रीक आदर्शों का अनुकरण करना।
- २—पात्र के स्वभाव की रक्षा करना।
- ३—काव्य में औचित्य का सदा ध्यान रखना।

काव्य या नाटक की क्या दो प्रकार की हो सकती है इतिहास
प्रसिद्ध या कविकल्पित। इनमें पहले प्रकार की क्या पर यदि काव्य
लिखा जाय तो उसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसके
पात्रों का स्वभाव इतिहास परम्परा में जैसा है काव्य में वैसा ही
चित्रित किया जाय। परम्परा का अतिक्रमण न हो। क्या यदि कवि
कल्पित है तो कवि ने पात्रों की व्यवहारों जिस जिस स्वभावों के
साथ की है उनकी अन्त तक पालना करनी चाहिए। यह नहीं होना
चाहिए कि जो पात्र पहले बहुत स्वभाव का दिखाया गया है उसी को
फिर मध्य, शिष्ट चित्रित किया जाय। इससे औचित्य की हानि
होती है।

यह तो खा अतिरिक्त चित्रण के विषय में। अभिनय के विषय में
भी हमने औचित्य की चेतावनी लीची है। इसमें दो बातों का ध्यान
विशेष रूप से रखना चाहिए। एक तो अभिनेय भाव के अनुरूप ही
चेष्टा करनी चाहिये। वर्राधों में यदि वृत्तास, आनन्द आदि की
भावना जगानी हो तो अभिनेता हम भावों की चतुर्गुणा भाषा ही न
बोले, उसका मुल भी प्रमत्त और हारमोन हो। इसके अतिरिक्त नाटक
की वे ही पात्रावे अभिनेय होती हैं जो रमानुक्त और चर्चित हो।
नीरस, बिरस अवस्था अनुचित घटनाओं की, जैसे मृत्यु, युद्ध,
बाह संस्कार प्रभुन आदि की संवत्त सूचना देनी चाहिए। मृत्यु का
अभिनय अनुचित है। मीडिया स्त्री पात्र ने परिचित पर अपने

पुत्रों का वध कर जाता था। यह घटना माटक में सूच्य है। अभिनेय नहीं। परशुराम का मातृवध, भीम द्वारा दुर्योधन के रथ से शीपरी का केगसिंचन आदि घटनाएँ ऐसी ही हैं। दशमस्क के अनुसार भी अभिनेय वस्तु के छह भेद तथा सूच्य तीन विभाग हैं। इसमें औचित्य का सिद्धान्त ही कार्य करता है।

हीरेस ने छन्दों के औचित्य का भी विधान किया है। जिस प्रकार का विषय हो उसी के अनुकूल छन्द का चुनाव कवि को करना चाहिए। ग्रीक साहित्य में भावों के आधार पर काव्यों के भेद किये गए हैं, जैसे काव्य काव्य (Elegy) व्यंग्य काव्य (Satire) दुःखान्त नाटक (Tragedy) तथा सुखान्त नाटक (Comedy) कहाते हैं। हीरेस का कथन है कि इन काव्यों के लिये छन्द नियत हैं। उगी का आश्रयण कवि को करना चाहिए। यह भावानुसारी छन्द प्रयोग है। भारतीय आचार्यों ने भी इस प्रकार का परोपनिषाद किया है। सेमेन्द्र ने 'सुवृत्त टिप्पण' में छन्दगत औचित्य का विचार किया है। संस्कृत में कालिदास और बिम्बी में गोस्वामी तुलसीदास ने भी भावानुसारी छन्दों का प्रयोग किया है।

यूरोप के क्लासिकल युग में औचित्य की पूरी-पूरी मान्यता रही है। इस मार्ग के अनुयायी कवि तथा आलोचकों की दृष्टि में कला के क्षेत्र में अनुशासन की मान्यता वर्तमान थी। शास्त्र तथा लोक दोनों का ही अनुशासन कला में बन्धोने माना था। लोक का अनुशासन औचित्य ही है। सेमेन्द्र ने काव्य समीक्षा के प्रेरणास्त्रूप जिस प्रकार जीवन से लिया था, उसी प्रकार क्लासीकल समीक्षकों ने भी काव्यालोचन का आदर्श लोक को माना है। लोक के उदात्त, शिष्ट रूप को आदर्श बनाया है। यही औचित्य की मूल भावना है।

यह समीक्षा पद्धति ग्रीक साहित्य के प्रभाव अन्त में ही रही हो, ऐसी बात नहीं है। उससे बहुत बाद में १८वीं शताब्दी में भी महाकवि रोपने औचित्य पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने अपने प्रथम 'पेसे ऑन क्रिटिसिज्म' में भाव के अनुसार वर्णों का प्रयोग करने पर बड़ा आग्रह किया है। उनके अनुसार पूर्ण अर्थ की प्रतिध्वनि होना चाहिए। महाकवि के बलने का काव्य में बिप्राण हा तो शब्द भी सरसपाये, मंदगति से बहव से जाने चाहिये। इसके विपरीत मन्थन

शब्द का फिर औचित्य क्या बसु है इसके उत्तर में हमोंने विषया-
मुक्त शब्द प्रयोग ही बताया है। मध्य तथा महिमामयित शब्दों
का प्रयोग इसी प्रकार के विषयों के वर्णन में करना चाहिए। इसके
विपरीत करने से शब्द प्रयोग अप्रसन्न होगा। इससे स्पष्ट है कि
हांगिनस काव्य में शब्दौचित्य की महिमा को ठीक-ठीक समझते थे।

हौरस—इनका ग्रन्थ 'आर्ट पोइटिका' है। इसमें औचित्य की
माम्यता और महत्त्व अनेकत्र दिखाये हैं। कवियों के लिए इसके तीन
उपदेश हैं।

१—ग्रीक भाषणों का अनुकरण करना।

२—पात्र के स्वरूप की रक्षा करना।

३—काव्य में औचित्य का सदा ध्यान रखना।

काव्य या नाटक की क्या दो प्रकार की हो सकती है इतिहास
प्रसिद्ध या कविकल्पित। इनमें पहले प्रकार की क्या पर यदि काव्य
लिखा जाय तो इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसके
पात्रों का स्वभाव इतिहास परम्परा में जैसा है काव्य में वैसा ही
चित्रित किया जाय। परम्परा का अतिक्रमण न हो। क्या यदि कवि
कल्पित है तो कवि ने पात्रों की अवतारणा मिल मिल स्वभावों में
साय की है उनकी अन्त तक पाकना करनी चाहिए। यह नहीं होना
चाहिए कि जो पात्र पहले बहुत स्वभाव का दिखाया गया है उसी में
फिर नम्र, शिष्ट अंकित किया जाय। इससे औचित्य की हानि
होती है।

यह तो रहा चरित्र चित्रण के विषय में। अभिनय के विषय में
भी इसने औचित्य की रेखाएँ खींची हैं। इसमें दो बातों का ध्यान
विशेष रूप से रखना चाहिए। एक तो अभिनेय भाव के अनुरूप ही
चेष्टा करनी चाहिये। दूसरी में यदि लज्जास, आनन्द आदि की
भावना जगानी हो तो अभिनेता इन भावों की उद्योगिका भाषा ही न
बोले, बसका मुख भी प्रसन्न और हास्यमय हो। इसके अतिरिक्त नाटक
की वे ही घटनाएँ अभिनेय होती हैं जो रसानुसृत और चरित हो।
नीरस, विरस अथवा अनुचित घटनाओं की, जैसे मृत्यु, युद्ध,
दाह संस्कार प्रियुन आदि की केवल सूचना देनी चाहिए। सूक्ष्म का
अभिनय अनुचित है। मीडिया स्त्री पात्र ने परिस्थिति बरा अपने

पुत्री का वध कर दासा था। यह घटना नाटक में सूच्य है। अभिनेय नहीं। परशुराम का मातृवध भीम द्वारा अनुशासन के रक्त से शीपरी का केरासिचन आदि घटनायें ऐसी ही हैं। दशरूपक के अनुसार भी अभिनेय वस्तु के द्वाब अन्वय तथा सूच्य तीन विभाग हैं। इसमें औचित्य का सिद्धान्त ही कार्य करता है।

हीरेस ने व्यंशों के औचित्य का भी विधान किया है। जिस प्रकार का विषय हो उसी के अनुकूल छन्द का चुनाव कवि को करना चाहिए। ग्रीक साहित्य में भावों के आधार पर काव्यों के भेद किये गए हैं, जैसे कल्लु काव्य (Elegy) व्यंग्य काव्य (Satire) दुःखान्त काव्य (Tragedy) तथा सुखान्त नाटक (Comedy) कहलाते हैं। हीरेस का कथन है कि इन काव्यों के लिये छन्द नियत हैं। उन्हीं का आश्रय कवि को करना चाहिए। यह भावानुसारी छन्द प्रयोग है। भारतीय आचार्यों ने भी इस प्रकार का पर्याप्त विचार किया है। मैमेन्ट ने 'सुवृत्त तिलक' में छन्दगत औचित्य का विचार किया है। संस्कृत में अलिदास और हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास ने भी भावानुसारो व्यंशों का प्रयोग किया है।

यूरोप के न्यासिकक युग में औचित्य की पूरी-पूरी मान्यता रही है। इस मार्ग के अनुयायी कवि तथा आलोचकों की दृष्टि में कला के क्षेत्र में अनुशासन की मान्यता वर्तमान थी। शास्त्र तथा लोक दोनों का ही अनुशासन कला में उद्योग माना था। लोक का अनुशासन औचित्य हो है। मैमेन्ट ने काव्य समीक्षा के प्रेरणावस्तु जिस प्रकार जीवन में लिये थे उसी प्रकार न्यासिकक समीक्षकों ने भी आदर्श-लोचन का आदर्श लोक को माना है। लोक के वृत्त, शिष्ट रूप को आदर्श बनाया है। यही औचित्य की मूल भावना है।

यह समीक्षा पद्धति ग्रीक साहित्य के प्रभाव काव्य में ही रही हो, ऐसी बात नहीं है। उसके बहुत बाद में १८वीं शताब्दी में भी महाकवि पौपेने औचित्य पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'एन ऑन क्रिटिसिज्म' में माप के अनुसार बयों का प्रयोग करने पर बड़ा आग्रह किया है। हमारे अनुसार पर्याय अर्थ की प्रतिष्ठा होना चाहिए। अज्ञानान्त के बतने का काव्य में विषय ही तो शब्द की सरसराते, मंदगति से बहते से हाने चाहिये। इसके विपरीत प्रत्यक्ष

संस्कृत के कारण यदि समुद्र की भयंकर लहरों का बहान करमा है तो राष्ट्र भी जोरस्थो कठोर तथा सुरित्पट होने चाहिये । संस्कृत के भाषाओं ने प्रतिकूलवर्णना दोष में इसी तत्त्व को समझा है । वास्तव में यह वर्णों का औचित्य है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य कला के क्षेत्र में औचित्य की माय्यता भारतीय तथा पारचात्य भाषाओं ने समान रूप से की है । इससे उक्त तत्त्व की व्यापकता, मूलानुर्धिता एवं अवस्थापेक्षा का पता चलता है । यह काव्य का ऐसा मूल तत्त्व है कि सब की दृष्टि इस पर पड़ती है । इसका कारण है काव्य की समीक्षा करते समय जिस का भी ध्यान जोयन पर आया, जो भी यह विचारेंगे कि जीवन का काव्य के माय अनेक सम्बन्ध है तो यह इस साधारण नियम की अवहेलना नहीं कर सकता । औचित्य और कुछ नहीं, काव्य के साथ जीवन के सम्बन्धों का मामात्म्य वाचक शब्द है । इसे कोई शास्त्रीय ढंग से माने या न माने इसका भावना को सर्पचा सुझा नहीं सकता । जिन लोगों ने औचित्य का नामव निर्देश नहीं किया है उन्होंने काव्य में जो मुख्य दोष विचार किया है वह औचित्य का ही विचार है । इसका कारण यही है कि यह काव्य का मूल तत्त्व है । इसीलिये भारत तथा यूनान के आदि समोच्च भवत पर्यं अस्तु की दृष्टि पहले अयसर में ही इस पर पड़ी ।

इतना अन्तर अवश्य है कि पारचात्य समीक्षकों ने जो औचित्य का विचार किया है वह अपूर्ण तथा बाह्य है । काव्य के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों में इसके दर्शन करने की क्षमता उनमें नहीं मिलती । हेमिस्ट तथा आनन्द वर्धन में यह अन्तर्गामिनी दृष्टि विद्यमान है । आनन्द वर्धन का इस विषय का उल्लेख प्रासंगिक है । मुख्य विषय है ध्वनि । अतः औचित्य का विस्तार यहाँ नहीं मिलता । फिर भी जितना उन्होंने सिखा है वह गम्भीर है और उसमें पता चलता है कि वे इसको गम्भीरता और व्याकृता अच्छी तरह अनुभव करते थे ।

हेमिस्ट ने इन्हीं से प्रेरणा ली । उन्होंने औचित्य की व्यापकता तथा अनिवार्यता सभी व्यवस्था और सञ्चार के साथ दिखाई है । वृत्तों सिद्धांतों के विषय में उनका विचार यही स्पष्ट है । वे इस दस दस में नहीं कैसे कि पहले सब मतों के संयोजन पर ही अपने औचित्य

ये नहीं। अब काव्य की समीक्षा करते समय इसकी
ता सञ्चली। इसीलिये उन्होंने अलंकार रस आदि
की आवश्यकता दिखाई है।

संस्कृत के कारण यदि समुद्र की भयंकर लहरों का चयन करना है तो राज्य भी भोजन को कठोर तथा सुरिप्त होने चाहिये। संस्कृत के आचार्यों ने प्रसिद्धाकर्षण बोध में इसी तथ्य को समझाया है। प्रास्त्य में यह यत्नों का औचित्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य कला के क्षेत्र में औचित्य की मांगता भारतीय तथा पारश्वात्य आचार्यों ने समान रूप से की है। इससे उक्त तथ्य की व्यापकता, मूल्यानुबंधिता एवं अवस्थापेक्षा का पता चलता है। यह काव्य का ऐसा मूल तत्त्व है कि सब की दृष्टि इस पर पड़ गई है। इसका कारण है काव्य की समीक्षा करते समय जिस का भी ध्यान जीवन पर आया, जो भी यह विचारेंगे कि जीवन का काव्य के साथ अनेक सम्बन्ध है तो यह इस साधारण नियम की अवहेलना नहीं कर सकता। औचित्य और कुछ नहीं, काव्य के साथ जीवन के सम्बन्धों का सामान्य यावक शब्द है। इसे कोई शास्त्रीय ढंग से माने या न माने इसकी भावना को सर्वथा सुझा नहीं सकता। जिन लोगों ने औचित्य का नाम न निर्देश नहीं दिया है उन्होंने काव्य में का शुद्ध बोध विचार किया है वह औचित्य का ही विचार है। इसका कारण यही है कि यह काव्य का मूल तत्त्व है। इसीलिए भारत तथा यूनान के आदि समीक्षक गुरु एवं भरत की दृष्टि पहले अवसर में ही इस पर पड़ी।

इतना अन्तर अवश्य है कि पारश्वात्य समीक्षकों ने जो औचित्य का विचार किया है वह अपूर्ण तथा बाध है। काव्य के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों में इसके वर्णन करने की क्षमता उनमें नहीं मिलती। सेमेन्ट तथा आनन्द वर्धन में यह अन्तर्गामीनी दृष्टि विद्यमान है। आनन्द वर्धन का इस विषय का उल्लेख प्रासंगिक है। मुख्य विषय है ध्वनि। अतः औचित्य का विस्तार यहाँ नहीं मिलता। फिर भी जितना उन्होंने दिखाया है वह गम्भीर है और उसमें पता चलता है कि य इसकी गम्भीरता और व्यापकता अच्छी तरह अनुभव कर लें।

सेमेन्ट ने इन्हीं से प्रेरणा ली। उन्होंने औचित्य की व्यापकता तथा अनिवार्यता बड़ी धृष्टता और सफाई के साथ दिखाई है। दूसरे सिद्धान्तों के विषय में उनका विचार बड़ा स्पष्ट है। ये इस दल दल में नहीं फँसे कि पहले सब मतों के स्वरूप पर ही अपने औचित्य

का भयन बनाते । वे तो केवल इतना भर बिखाना चाहते हैं कि काव्य में रस, अलंकार जो भी रह सकते हैं रहें । वे सब उसकी शोभा बढ़ायें या उसे स्पर्श प्रदान करें । पर औचित्य के बिना वे सब निरर्थक हैं, कृतकान्त नहीं । अतः काव्य की समीक्षा करते समय इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती । इसीलिये उन्होंने अलंकार रस आदि सब में औचित्य की आवश्यकता दिखाई है ।

संस्क्रयात के कारण यदि समुद्र की भयंकर लहरों का वखन करना है तो राष्ट्र में भोजस्यी कठोर तथा सुखसिष्ट होने चाहिये । संस्कृत के व्याचार्यों ने प्रतिकूलवर्णता दोष में इसी तत्त्व को समझया है । वास्तव में यह वर्णों का औचित्य है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य कला के क्षेत्र में औचित्य की माग्यता भारतीय तथा पारचात्य व्याचार्यों ने समान रूप से की है । इससे उक्त तत्त्व की व्यापकता, मूल्यानुबंधिता एवं व्यपस्थापेक्षा का पता चलता है । यह काव्य का ऐसा मूल तत्त्व है कि सब की दृष्टि इस पर पड़ती है । उसका कारण है काव्य की समीक्षा करते समय जिस का भी ध्यान जोबन पर आया, को भी यह विचार होगा कि वीर्यन का काव्य के साथ अनेक सम्बन्ध है तो यह इस साधारण नियम की अवहेलना नहीं कर सकता । औचित्य और कुछ नहीं, काव्य के साथ वीर्यन के सम्बन्धों का मामाग्य वाचक शब्द है । इसे कोई शास्त्रीय ढंग से माने या न माने इसको भावना को सर्वथा मुला नहीं सकता । किन लोगों ने औचित्य का नामच निर्देश नहीं किया है उन्होंने काव्य में जो गुण दोष विचार किया है वह औचित्य का ही विचार है । इसका कारण यही है कि यह काव्य का मूल तत्त्व है । इसीलिये भारत तथा यूनान के आदि समीक्षक सरल एवं भरस्तु की दृष्टि पहले अपसर में ही इस पर पड़ी ।

इतना अन्तर अवश्य है कि पारचात्य समीक्षकों ने जो औचित्य का विचार किया है वह अपूर्ण तथा बाह्य है । काव्य के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों में इसके दर्शन करने की चमत्ता उनमें नहीं मिलती । शोमेन्ट तथा आनन्द वर्धन में यह अन्तगामिनी दृष्टि विद्यमान है । आनन्द वर्धन का इस विषय का उल्लेख प्रासंगिक है । मुख्य विषय है ध्यनि । अतः औचित्य का विस्तार वहाँ नहीं मिलता । फिर भी कितना उन्होंने लिखा है वह गम्भीर है और उसमें पता चलता है कि वे इसकी गम्भीरता और व्यापकता अच्छी तरह अनुभव करते थे ।

शोमेन्ट ने इन्हीं से प्रेरणा ली । उन्होंने औचित्य की व्यापकता तथा अभिवायता बड़ी व्यपस्था और सफाई के साथ दिलाई है । दूसरे सिद्धान्तों के विषय में उनका विचार बड़ा स्पष्ट है । वे इस दृष्टि पर से नहीं कैसे कि पहले सब मतों के लयबन पर ही अपने औचित्य

का भवन बनाते । ये तो केवल इतना भर दिखाना चाहते हैं कि काम्य में रस, अलंकार जो भी रह सकते हैं रहें । ये सब उसकी शोभा बढ़ावें या उसे स्वरूप प्रदान करें । पर औचित्य के बिना ये सब निर्यक्त हैं, कृतकत्व नहीं । अतः काम्य की समीक्षा करते समय इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । इमीलिय सन्तोंने अलंकार रस आदि सब में औचित्य की आवश्यकता दिखाई है ।

कवि शिक्षा

काव्य मीमांसा में 'बोधित्व विचार बर्णों' की भाँति चेमेन्द्र ने कवि शिक्षा पर 'कविकंठाभरण' ग्रन्थ लिखा है। कछेबर में यह ग्रन्थ यद्यपि अधिक विस्तृत नहीं है फिर भी ग्रन्थकार ने जिस व्यावहारिक दृष्टि से समस्या को समझा और सुलझाया है तथा इस प्रकार के व्यापक और आस्पष्ट विषय का जैसी स्पष्टता और सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया है वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में भी चेमेन्द्र महान सिद्ध होते हैं।

पूर्ण परिचय के लिये इस विषय की परम्परा देखनी चाहिए। काव्य मीमांसक ने कवि शिक्षा का दो प्रकार से प्रतिपादन किया है—साक्षात् और परम्परा से। पहली श्रेणी में वे आचार्य हैं जिन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ या ग्रन्थ का कुछ भाग इस विषय पर लिखा है। वे हैं काल क्रम से दण्डी, छट्ट, वामन, राजरोवर, चेमेन्द्र, हेमचन्द्र, वाग्मट, अरिसिंह और केशव। वे जो हैं। चेमेन्द्र दो चतुष्टयी के ग्रन्थ में आते हैं। आर उनसे पहले के और बाद के चतुष्टयी के ग्रन्थ में आते हैं। इस स्थिति में तुलनात्मक अध्ययन से इनके कृतित्व की जांच परीक्षा हो सकती है। दूसरी श्रेणी परम्परा से कवि शिक्षा देने वाले आचार्यों की है। इस काटि में वे सभी आ जाते हैं जिन्होंने किसी न किसी रूप में काव्य मीमांसा पर लेखनी उठाई है। इनका मुख्य प्रतिपाद्य तो काव्य का स्वस्म दृष्टियाँ, अलंकार, गुणदोष आदि होते हैं पर दोनों के प्रकरण में उनका पर्वोक्त विस्तार कर कवियों को उनसे बचने का संकेत वे देते हैं। यही उनकी कविशिक्षा है। आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ, मोज, जगन्नाथ आदि सभी ऐसे हैं। शिक्षार्थियों के भेद, कवियों के भेद, कवि शिक्षा, अभ्यास के उपाय आदि विषय पहली श्रेणी के आचार्यों के यहाँ प्रमुख होते हैं। इनके यहाँ यह सब छुटा रहता है। एक-एक को छें।

दण्डी—दण्डी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में तीन कारिकाएँ इस विषय पर लिखी हैं। इनके अनुसार कवि में तीन गुण आवश्यक हैं—भैरविक प्रतिभा, निर्मल मुक्ति और अमल लगन। प्रतिभा परमेस्वर का दिया हुआ गुण है। यह प्रयत्नों से अर्जित नहीं की जा सकती। दूसरे दो अमल अमल हैं। निमल काव्य नाटक, शास्त्र, इतिहास आदि

का अधिक से अधिक अध्ययन, अध्ययन कवि को करना चाहिये। इससे अपनी संस्कृति का परम्पराप्रवाह अवगत होता है और कवि के विचार समुचित होते हैं। तीसरा गुण अभ्यस अभ्यास का है। इससे वे लोग भी कवि बन सकते हैं जिनमें प्रतिभा नहीं होती। परिश्रम पूर्वक साधना से यदि सरस्वती की उपासना की जाय तो साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी कवि बन सकता है। यद्यपि यह सरस्वती का अननूयित कवि प्रतिभावान से देठा होगा।

रुद्रट—रुद्रट ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से दृष्टी के समान ही विचार व्यक्त किये हैं। वे शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य रचना का कारण समझते हैं। इनमें से शक्ति तो यह स्वामाबिक समता है जिसके कारण नवीन विचारों की किरणें स्वतः बुद्धि में आती हैं। व्युत्पत्ति शोक और शास्त्र का ज्ञान है। अभ्यास से इन दोनों गुणों का परिवर्धन तथा परिष्कार हो जाता है। इससे कवि को प्रतिभा निकल कर लोकवन्द्य अमर कृतियों की सृष्टि करती है।

वामन—आचार्य वामन ने इसे भिन्न शैली से बताया है। उनके अनुसार काव्य के मूलतत्त्व हैं—लाव, विद्या और प्रकीर्ण। इनमें पहला है लाव का विवेकपूर्ण प्रयोजन। इससे अपने समय की स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान कवि का हो जाना चाहिये। विद्या में व्याकरण, कोश, छन्द, कला काम शास्त्र राजनौति आदि परिगणित हैं। प्रकीर्ण में अनेक बातें आ सकती हैं। वामन ने लक्ष्य का ज्ञान, प्रयोग, श्रेष्ठ कवियों का सत्संग, परीक्षा, कल्पना और अध्यान ये सब इसमें गिनाये हैं। कल्पना प्रतिभा का सामान्तर है। यह काव्य की जननी है। अध्यान विद्या की एकाग्रता है। इसकी साधना एकाग्र और प्रयत्नशील में हो सकती है।

राजशेखर—इनके बाद प्रसिद्ध आचार्य कवि राजशेखर आते हैं जिन्होंने इस विषय पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य भीमांसा' लिखा है। इनका प्रतिपादन बड़ा विस्तृत अथवा वैज्ञानिक है। वे कवि का आक्षेपक ज्ञान से आवश्यक समझते हैं। काव्य का कारण केवल एक ही है—प्रतिभा। यही कवि में शब्द भण्ड, चित्रकला, शीघ्र तथा अल्प गुणों का प्रतिभास कहलाता है। यह ही प्रकार की होती है—

कवि शिक्षा

काव्य मीमांसा में 'जीवित्य विचार पचा' की भाँति हेमेन्द्र ने कवि शिक्षा पर 'कविकंठाभरण' ग्रन्थ लिखा है। क्लेश्वर में यह ग्रन्थ यद्यपि अधिक विस्तृत नहीं है फिर भी ग्रन्थकार ने जिस व्यावहारिक दृष्टि से समस्या को समझा और सुलभता है तथा इस प्रकार के व्यापक और अस्पष्ट विषय का जैसी स्पष्टता और सुलभता से प्रतिपादन किया है वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में भी हेमेन्द्र महान सिद्ध होते हैं।

पूर्व परिचय के लिये इस विषय की परम्परा देखनी चाहिए। काव्य मीमांसकों ने कवि शिक्षा का हा प्रकार से प्रतिपादन किया है—साक्षात् और परम्परा से। पहली श्रेणी में वे आचार्य हैं जिन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ या ग्रन्थ का कुछ भाग इस विषय पर लिखा है। वे हैं काकल कमल स दहवी, छोट, बामन, राजरोखर, हेमेन्द्र, हेमचन्द्र, बागमट, अरिसिंह और केराब। ये भी हैं। हेमेन्द्र दो चतुष्टयी के मध्य में आते हैं। चार उनसे पहले के और चार बाद के आचार्य हैं। इस स्थिति में सुलनात्मक अध्ययन से इनके कठित्व की स्पष्ट परीक्षा हो सकती है। दूसरी श्रेणी परम्परा से कवि शिक्षा देने वाले आचार्यों की है। इस काटि में वे सभी आते हैं जिन्होंने किसी न किसी रूप में काव्य मीमांसा पर लेखनी बटाई है। इनका मुख्य प्रतिपाद्य तो काव्य का स्वरूप धृष्टियाँ, अलंकार, गुणरूप आदि होते हैं पर दोनों के प्रकरण में उनका पर्याप्त विस्तार कर कवियों को उनसे बचने का संकेत वे देते हैं। यही उनकी कविशिक्षा है। आनन्दवर्धन, भम्मट, विश्वनाथ, भोज, जगन्नाथ आदि सभी ऐसे हैं। शिक्षार्थियों के भेद, कवियों के भेद, कवि शिक्षा, अभ्यास के उपाय आदि विषय पहली श्रेणी के आचार्यों के यहाँ प्रमुख होते हैं। इनके यहाँ यह सब छुटा रहता है। एक-एक को छे।

दूसरी—दहवी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में तीन कारिकाएँ इस विषय पर लिखी हैं। इनके अनुसार कवि में तीन गुण आवश्यक हैं—नैसर्गिक प्रतिभा निर्गुण धृति और अमर्य ज्ञान। प्रतिभा परमेस्वर का दिया हुआ गुण है। यह प्रयत्नों से अभिन्न नहीं की जावी दूसरे दो प्रयत्न लभ्य हैं। निम्न काव्य नाटक, शास्त्र, इतिहास आ

का अधिक से अधिक अभ्ययन, अवश कवि को करना चाहिये। इससे अपनी संस्कृति का परम्पराप्रवाह अनगण होता है और कवि के विचार समृद्धि होते हैं। तीसरा गुण अमन्द अभ्यास का है। इससे वे लोग भी कवि बन सकते हैं जिनमें प्रतिभा नहीं होती। परिभ्रम पृथक् सामधानों से यदि सरस्वती की उपासना की जाय तो साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी कवि बन सकता है। यद्यपि यह सरस्वती का अनुगृहीत कवि प्रतिभावान से होता होगा।

छन्दः—छन्द ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से शब्दों के समान ही विचार व्यक्त किये हैं। वे शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य रचना का कारण समझते हैं। इनमें से शक्ति तो यह स्वाभाविक समता है जिसके कारण नवीन विचारों की किरणें स्वतः बुद्धि में आती हैं। व्युत्पत्ति शोक और शास्त्र का ज्ञान है। अभ्यास से इन दोनों गुणों का परिवर्धन तथा परिष्कार हो जाता है। इससे कवि को प्रतिभा निखर कर लोकवन्द्य अमर कृतियों की सृष्टि करती है।

वामन—वाचार्प वामन ने इसे मित्र शैली से बताया है। उनके अनुसार काव्य के मूलतत्त्व हैं—ज्ञाक, विद्या और प्रकीर्त्य। इनमें पहला है ज्ञाक का विवेकपूर्वक पदवेक्षण। इससे अपने समय की स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान कवि को हो जाना चाहिये। विद्या में व्याकरण, कोश छन्द, कला अथ शास्त्र राजनीति आदि परिगणित हैं। प्रकीर्त्य में अनेक बातें आ सकती हैं। वामन ने लक्ष्य का ज्ञान, प्रयोग, श्रेष्ठ कवियों का सस्तरंग, परीक्षा कल्पना और अवधान ये छ' इसमें गिलावे हैं। कल्पना प्रतिभा का नामान्तर है। यह काव्य की बमनी है। अवधान चित्त की एकामता है। इसकी साधना एकमन्त्र और मन्त्रवेदा में हो सकती है।

राजशेखर—इनके बाद प्रसिद्ध वाचार्प कवि राजशेखर आते हैं जिन्होंने इस विषय पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा' लिखा है। इसका प्रतिपादन बड़ा विस्तृत अथवा वैज्ञानिक है। ये कवि का आलापक ज्ञान भी आवश्यक समझते हैं। काव्य का अरण्य क्षेत्र एक ही है—प्रतिभा। जहाँ कवि में राष्ट्र भाव, अलंकार, शैली तथा अन्य गुणों का प्रतिपादक होता है। यह वाचकार की होती है—

कवि शिक्षा

काव्य मीमांसा में 'कौचित्य विचार बर्णा' की भाँति हेमेन्द्र ने कवि शिक्षा पर 'कविकण्ठाभरण' ग्रन्थ लिखा है। कक्षेपर में यह ग्रन्थ पर्याप्त अधिक विस्तृत नहीं है फिर भी ग्रन्थकार ने जिस व्यावहारिक दृष्टि से समस्या को समझा और सुझाया है तथा इस प्रकार के व्यापक और अप्रष्ट विषय का जैसी स्पष्टता और सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया है वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में भी हेमेन्द्र महान सिद्ध होते हैं।

पूर्ण परिचय के लिये इस विषय की परम्परा देखनी चाहिए। काव्य मीमांसकों ने कवि शिक्षा का दो प्रकार से प्रतिपादन किया है—साक्षात् और परम्परा से। पहली भेड़ी में वे व्याचार्य हैं जिन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ या ग्रन्थ का कुछ भाग इस विषय पर लिखा है। वे हैं काक क्रम से इण्डी, खट्ट, पामन, राजरोजर, हेमेन्द्र हेमचन्द्र, बागमट, अरिसिंह और केराय। ये नौ हैं। हेमेन्द्र दो बहुपटी के ग्रन्थ में आते हैं। बार उनसे पहले के और चार बाद के आचार्य हैं। इस स्थिति में सुखमात्मक अध्ययन से इनके कृतित्व की स्पष्ट परीक्षा हो सकती है। दूसरी भेड़ी परम्परा से कवि शिक्षा देने वाले व्याचार्यों की है। इस काटि में वे सभी आ जाते हैं जिन्होंने किसी न किसी रूप में काव्य मीमांसा पर लेखनी कलाई है। इनका मुख्य प्रतिपादक तो काव्य का स्वस्म दृष्टियों, अलंकार, गुणरूप आदि होते हैं पर दोनों के प्रकरण में इनका पर्याप्त विस्तार कर कवियों को उनसे बचने का संकेत वे देते हैं। यही उनकी कविशिक्षा है। आनन्दवर्धन, गम्मत, विरचनाय, भोज, जगन्नाथ आदि सभी ऐसे हैं। शिक्षार्थियों के भेष, कवियों के भेष, कवि शिक्षा, अभ्यास के उपाय आदि विषय पहली भेड़ी के व्याचार्यों के यहाँ प्रयुक्त होते हैं। इनके यहाँ यह सब छुना रहता है। एक-एक को हैं।

द्वितीय—द्वितीय ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में तीन अंशों इस विषय पर लिखी हैं। इनके अनुसार कवि में तीन मुख्य आवश्यक हैं—मैसगिक प्रतिभा, निर्मल भुक्ति और अमल जगन। प्रतिभा परमेस्वर का दिया हुआ गुण है। यह प्रयत्नों से अर्जित नहीं की जाती। दूसरे दो प्रयत्न जग्य हैं। निमित्त काव्य नाटक, शास्त्र, इतिहास आदि

अधिक है, इस विषय पर भी लोग एक मत नहीं। कुछ पक्षी को तो कुछ दूसरी को महत्त्व प्रदान करते हैं। समन्वयवादी लोग दोनों के समन्वय को काव्य का कारण समझते हैं।

कवियों के भेद—कवियों के अनेक भेद हैं—शास्त्रकवि, काव्यकवि तथा समयकवि आदि। पहले शास्त्रों के आधार पर काव्य रचना करते हैं। काव्यकवि अपेक्षा कुछ मौखिक होते हैं। उन्हें काव्यों से प्रेरणा मिलती है। समयकवियों में दोनों से अर्थात् शास्त्रों और काव्यों से प्रेरणा मिलती है। स्वाभाविक है कि पहला कवि, दूसरा सरस और तीसरा मेष्ठ कवि होता है। काव्य कवि के आठ उपभेद हैं—शब्द कवि, अर्थ कवि, अलंकार कवि, कवि कवि रस कवि, मार्ग कवि और शास्त्राय कवि। इनके नामों से ही संक्षेप जाने जा सकते हैं।

काव्यपाक—राजशेखर ने एक और अलक्ष्य दिशा में विचार किया है। रचना की पूर्णता किसे कहना चाहिए तथा उसका रूप क्या होता है इस उद्ध्य का 'काव्य पाक' नाम से उन्होंने विवेचन किया है। इसके बिना रचना का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विषय में भी आचार्यों का मतभेद है। आचार्य संग्रह इसे साहित्यिक परिखाम करते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार काव्यपाक रौखी की वह पूर्णता है जिसमें शब्द अपरिवर्तनीय होते हैं। ऐसी रचना में किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्यायान्तर प्रयुक्त नहीं हो सकता। इनका कहना है कि जब तक कवि को बुद्धि दुर्लभिल रहती है तभी तक वह शब्दों को बदलता बदलता रहता है। जब सरस्वती सिद्ध हो जाती है तो पद सदा के लिये स्थिर हो जाते हैं।

अथापोद्धये तावद् पावद् दोक्षापते मनः ।

पदानां स्थापिते स्वीये इत्यसिद्धा सरस्वती ।

कवियित्री अवस्थिसुम्नरी इस विचार से सहमत नहीं। उसके अनुसार महाकवियों की कृतियों में भी पर्याय समता विद्यमान है। इसके अनुसार काव्य पाक भायानुकूल अभिव्यक्ति है।

कवि शिक्षा—कवि शिक्षा का भी राजशेखर ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है। युग्यु कवि को सर्व प्रथम माथा पर अभिष्मर प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये संज्ञायें, क्रियायें, कोश, ध्वन तथा

कारयित्री तथा भावयित्री । कारयित्री रचनात्मक शक्ति है, भावयित्री आलोचनात्मक ।

कवि—कारयित्री प्रतिमा का घनी कवि होता है । यह प्रतिमा जन्मजात, प्रयत्न जात तथा उपदेश जात तीन प्रकार की होती है । राजशेखर प्रतिमा को प्रयत्न तथा उपदेश द्वारा उपार्जनिय समझते हैं । जनका आग्रह है कि बिना इसके काव्य रचना हो ही नहीं सकती । इसलिये अम्मास सिद्ध कवियों में भी इसकी विद्यमानता मानी है । पर इनमें उत्तरातर अपकर्ष है । जन्मजात प्रतिमा वाक्य कवि सारस्वत है । यह अपनी मनमौज से रचना करता है जो कृपणते लेकर कदाचित् तक सर्वत्र फैल जाती है । प्रयत्नजात प्रतिमा वाक्य की समता सीमित रहती है । इसकी रचनाओं की पहुँच पक्षीसियों तथा मित्रों तक रहती है । औपदेशिक कवि गुरुओं के उपदेश द्वारा थोड़ी समता कमा लेता है । इसकी रचनाय सुन्दर पर निश्चार होती हैं । जनका प्रसार केवल उसके ही घर में होता है ।

आलोचक—भावयित्री प्रतिमा वाले भावक हैं । उनके दो भेद हैं । अटोचकी और सतृणाभ्यवहारी । पहले सब प्रकार की कृतियों से नाक छिकोड़ते हैं । दूसरे कुटी भसी सब प्रकार की रचनाओं पर मुग्ध हो जाते हैं । तिनकी समेत भोजन का भाव है । चायापरीय लोग इनमें दो भेद और जोड़ते हैं, मत्सरी और तस्वामिनिवेशी । मत्सरी रचना को ईर्ष्या के साथ देखता है अतः इसकी अभिनन्दना नहीं करता । तस्वामिनिवेशी मनन करता हुआ रचना के अन्वस्तस्व तक पहुँचता है । वह सच्चा भर्त्सक है । भेद आलोचक यह है जो स्वयं कवि भी हो तथा गुण-दोष बिगड़ी भी हो । राजशेखर की मान्यता है कि एक आलोचनागुण कवि में भी होने आवश्यक है । सभी यह अपनी और परायी रचना को परख सकेगा । इनमें भेद आलोचक तस्वामिनिवेशी है । कवि को चेखा ही होना चाहिए । बिना विवेक अधिमगुण्य रचना करने वाले तो कवि नहीं कवि हैं । 'कृकवि कवि रेव वा ।'

प्रतिमा के अतिरिक्त दूसरा सहायक साधन व्युत्पत्ति है । साधारणतया इस शब्द से ज्ञान संपत्ति का तात्पर्य लिया जाता है पर आचार्यों ने इसके भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं, व्यापक ज्ञान, वपिता-मुचित विवेक आदि । प्रतिमा तथा व्युत्पत्ति में किस का महत्त्व

अधिक है, इस विषय पर भी लोग एक मत नहीं। कुछ पहली को तो कुछ दूसरी को महत्त्व प्रधान करते हैं। समन्वयवादी लोग दोनों के समन्वय को काव्य का कारण समझते हैं।

कवियों के भेद—कवियों के अनेक भेद हैं—शास्त्रकवि, काव्यकवि तथा समयकवि आदि। पहले शास्त्रों के आधार पर काव्य रचना करते हैं। काव्यकवि अपनेका कृत मौलिक होते हैं। उन्हें काव्यों से प्रेरणा मिलती है। समयकवियों में दोनों से अर्थात् शास्त्रों और काव्यों से प्रेरणा मिलती है। स्वामाधिक है कि पहला ऋषि, दूसरा सरस और तीसरा श्रेष्ठ कवि होता है। काव्य कवि के आठ उपभेद हैं—शब्द कवि, अर्थ कवि, अलंकार कवि, उक्ति कवि रस कवि, मार्ग कवि और शास्त्राय कवि। इनके नामों से ही शक्य जाने जा सकते हैं।

काव्यपाक—राजशेखर ने एक और उत्प्रेक्ष्य विद्या में विचार किया है। रचना की पूर्णता किसे कहना चाहिए तथा उसका रूप क्या होता है इस उद्ध्य का 'काव्य पाक' नाम से उन्होंने विवेचन किया है। इसके बिना रचना का प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विषय में भी आचार्यों का मतभेद है। आचार्य मंगल इसे साहित्यिक परिक्षाम कहते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार काव्यपाक शैली की वह पूर्णता है जिसमें शब्द अपरिवर्तनीय होते हैं। ऐसी रचना में किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्यायान्तर प्रयुक्त नहीं हो सकता। इनका कहना है कि जब तक कवि को कुछ हुआमिल रहती है तभी तक वह शब्दों को बदलता बदलता रहता है। जब सरस्वती सिद्ध हो जाती है तो पद सदा के लिये स्थिर हो जाते हैं।

अथापोद्धयो राजदू पावदू बोलायवे मन ।

पदांनं स्वापिते स्वैर्ये हन्तसिद्धा सरस्वती ।

कविविप्री अयस्मिमुन्दरी इस विचार से सहमत नहीं। उसके अनुसार महाकवियों की कृतियों में भी पर्याय समता विद्यमान है। इसके अलावा काव्य पाक भाषायुक्त अभिव्यक्ति है।

कवि शिक्षा—कवि शिक्षा का भी राजशेखर ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है। शुभ्र कवि को सर्व प्रथम भाषा पर अधिकार प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये संज्ञाएँ, क्रियाएँ, कोश, शब्द तथा

असंकार का अभ्यास करना होगा। कवि के व्यक्तित्व में आठ गुण अपेक्षित हैं। स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्त्व, बहुभुवता, दृढ़ स्मृति और अनिर्वेद। इसके अतिरिक्त कवि को पवित्र रहना चाहिए। यह पवित्रता शब्द बुद्धि तथा शरीर तीनों की हो।

कवि के निर्माण में उसकी वाद्य सामन सामग्री का भी बड़ा हाथ रहता है। उसे एक ऐसा आवास मिलना चाहिए जिसमें साहित्य की प्रेरणा मिले और जोड़ा भी मानसिक क्लेश न हो। उसके सेवक बड़े विनीत और बुद्धिमान हों। अनेक भाषाओं के ज्ञान में सक्षम हों। उसका क्षेत्रक भी बड़ा योग्य हो। वह तो आधा कवि हो। क्षेत्रन सामग्री सब प्रकार से सम्पन्न होनी चाहिये। कवि के लिये इस प्रकार के राजस जीवन की शिक्षा देते हुए आचार्य की दृष्टि समाज तथा आत्मपदाताओं पर गई है। वे एक ओर कवि से कला द्वारा राष्ट्र के मार्ग प्रदर्शन की आशा करें और दूसरी ओर उसे साधारण सुविधा भी न प्रदान करें, यह अनुचित है। कवि की मातृकता ओस की घूब है जो जोड़ी सी प्रतिकूलता को वायु धने पर धूल में मिल सकती है। अतः उसकी रक्षा का उपाय होना चाहिए। माव ही राजशेखर यह भी कहते हैं कि वाद्य सामन सहायक मात्र होते हैं। मुख्य वस्तु तो प्रतिभा है।

और भी शिक्षाएँ उन्होंने कवि के लिये दी हैं। रचना प्रारम्भ करने से पूर्व उसे अपनी प्रतिभा परख लेनी चाहिए। अपना भाषा बिकार, समाज की उत्पत्तीन रुचि, अपना ग्रिप विषय आदि भी पहले विचार लेने चाहिए। उसे उचित अवसर पर अपनी रचनाओं का पाठ करना चाहिए। कवि की दैनिकचर्या भी नियमित हो। इसमें कवि का काम्य के सिवाय दूसरी बात पर ध्यान न जाय।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि राजशेखर ने विषय का प्रतिपादन बड़े विस्तार और शास्त्रीयता के साथ किया है। पर इसमें व्यवस्था तथा योजना की कमी है। प्रत्येक बात पर मतभेद बिना कर विस्तार करने की प्रवृत्ति बहुत है। प्रतिभाओं आलोचकों तथा कवियों के भेद इसका प्रमाण हैं। औपदेशिक कवि को इन्होंने इतना ठेठा माना है कि वह महाकवि बन ही नहीं सकता। यह निर्णय भी सख्तविपक्ष है। इतिहास परम्परा से आक्षिप्त, आरम्भ आदि औपदेशिक

कवि ही थे। वे महाकवियों के मूर्धन्य माने जाते हैं। कवि के लिये जैसा राजसी जीवन उन्होंने बताया है वह भी अभ्युपहाय है। वह अप्राप्य नहीं कवि की प्रतिभा के पंखों का मार भी बन सकता है।

चेमेन्द्र—राजशेखर के बाद चेमेन्द्र ने इस विद्या में कार्य किया है। इनकी पद्यविषयक रचना 'कविकण्ठाभरण' है। यह आकार में पद्यपि छोटी है पर अपेक्षित सभी विवरण इसमें विद्यमान हैं। राजशेखर का भावविस्तार, मेघ उदमेदों की अस्थायिक कल्पना का प्रपञ्च इसमें नहीं है। ग्रन्थ में योजना व्यवस्था तथा व्यावहारिकता बहुत है। इस विषय पर चार प्रश्न तीन हैं—'काव्य मीमांसा' 'काव्य कल्पलता धृति' तथा 'कविकण्ठाभरण'। इनमें सब से अधिक उपयोगी, तथा परिष्कृत पुरतक इसे ही कह सकते हैं। शेष दोनों पुस्तकों में इनका अधिक विस्तार है कि वे उनके लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं, जिनके लिये लिखी गई हैं।

शिष्यार्थी का क्रमिक विकास—चेमेन्द्र के अनुसार प्रारम्भ से पूर्णता प्राप्त करने तक शिष्यार्थी के पाँच क्रमिक विकास होते हैं। उन्हीं के नाम पर कविकण्ठाभरण के पाँच अध्याय (संक्षिप्त) हैं। इनमें प्रथम है अकवि को कवित्वाप्ति। यहाँ कवित्व का तात्पर्य व्याख्यान मनोवृत्ति से है। काव्यादि के अनुरीक्षण से यह संभव होती है। दूसरा विकास क्रम ज्ञान और अभ्यास का है जिसे चेमेन्द्र ने शिष्या कहा है। इस अवस्था में पद्य रचन की सुमता आ जाती है। अतः इसके बाद आकृता ज्ञान आवश्यक होता है। इसलिये तीसरे पद क्रम में अमत्कार प्राप्ति की आवश्यकता तथा उपाय बताये हैं। यहाँ कविता के रूप का जहाँ तक सम्बन्ध है वह पूर्ण हो जाता है। अब कवि को गुण दोषों का ज्ञान प्राप्त कर उससे कविता को निमुक्त रखने की आवश्यकता होती है। अतः चौथे अध्याय में गुण दोष परिज्ञान का ही विवेचन हुआ है। अन्त में प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए कवि को लोक तथा शास्त्र दोनों का अधिकाधिक परिचय बढ़ाना चाहिये। पंचम अध्याय परिचय प्राप्ति का है। इस प्रकार कवित्वाप्ति, शिष्या, अमत्कृति, गुणदोष विज्ञान तथा परिचयप्राप्ति इन पाँच विकास कक्षाओं बलीग होकर शिष्यार्थी पूर्णकवि बन भ्रष्टा है। इनमें से एक एक पर कुछ अधिक विस्तार से विचार करना आवश्यक है।

अक्षरकार का अभ्यास करना होगा। कवि के व्यक्तित्व में आठ गुण अपेक्षित हैं। स्वास्थ्य प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्त्व, बहुमुखता, दृढ़ स्मृति और अनिर्येद। इसके अतिरिक्त कवि को पवित्र रहना चाहिए। यह पवित्रता शब्द बुद्धि तथा शरीर तीनों की हो।

कवि के निर्माण में उसकी बाह्य साधन सामग्री का भी बड़ा हाथ रहता है। उसे एक ऐसा आश्रम मिलना चाहिए जिसमें साहित्य की प्रेरणा मिले और थोड़ा भी सामाजिक क्लेश न हो। उसके सेवक बड़े विनीत और बुद्धिमान हों। अनेक भाषाओं के बोलने में सक्षम हों। उसका खेलक भी बड़ा योग्य हो। वह तो आत्मा कवि हो। खेलन सामग्री सब प्रकार से सम्पन्न होनी चाहिये। कवि के लिये इस प्रकार के राजस नीयन की शिक्षा लेते हुए आचार्य की दृष्टि समाज तथा आमयदात्यों पर गई है। वे एक ओर कवि से कला द्वारा राष्ट्र के मार्ग प्रदर्शन की आशा करें और दूसरी ओर उसे साधारण सुविधा भी न प्रदान करें, यह अनुचित है। कवि की मातृकता ओस की बूंद है जो थोड़ी सी प्रतिकूलता की वायु बहने पर धूल में मिल सकती है। अतः उसकी रक्षा का उपाय होना चाहिए। साथ ही राजशेखर यह भी कहते हैं कि बाह्य साधन सहायक मात्र होते हैं। मुख्य वस्तु तो प्रतिभा है।

और भी शिक्षाएँ उन्होंने कवि के लिये दी हैं। रचना प्रारम्भ करने से पूर्व उसे अपनी प्रतिभा परख लेनी चाहिए। अपना माया बिखर, समाज की उत्कण्ठीन रुचि, अपना प्रिय विषय आदि भी पहले विचार लेने चाहिए। उसे कबित अवसर पर अपनी रचनाओं का पाठ करना चाहिए। कवि की दैनिकीयता भी नियमित हो। इसमें कवि का काव्य के सिवाय दूसरी बात पर ध्यान न जाय।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि राजशेखर ने विषय का प्रतिपादन बड़े विस्तार और शास्त्रीयता के साथ किया है। पर इसमें व्यवस्था तथा योजना की कमी है। प्रत्येक बात पर मतभेद दिखा कर विस्तार करने की प्रवृत्ति बहुत है। प्रतिभाओं आलोचकों तथा कवियों के संदर्भ इसका प्रमाण हैं। औपदेशिक कवि को उन्होंने इतना हेठा माना है कि वह महाकवि बन ही नहीं सकता। यह निर्येद भी अत्यविषय है। इतिहास परम्परा से आदिवास, भारवि आदि औपदेशिक

कवि ही थे। वे महाकवियों के मूर्धन्य माने जाते हैं। कवि के लिये जैसा राजसी जीवन उन्होंने बताया है वह भी अभ्ययहाय है। वह अप्राप्य ही यही कवि की प्रतिभा के पंखों का मार भी बन सकता है।

चेमेन्द्र—राजशेखर के बाद चेमेन्द्र ने इस विशा में कार्य किया है। इनकी पतङ्गिपयक रचना 'कविकण्ठाभरण' है। यह आकार में पद्यपि छोटी है पर अपेक्षित सभी विवरण इसमें विद्यमान हैं। राजशेखर का सा अतिविस्तार, मेघ नन्दमेवों की अव्यधिक कल्पना का प्रपञ्च इसमें नहीं है। ग्रन्थ में चोखना व्यवस्था तथा व्यावहारिकता बहुत है। इस विषय पर बड़े ग्रन्थ तीन हैं—'काव्य मीमांसा' 'काव्य कल्पलता पृथि' तथा 'कविकण्ठाभरण'। इनमें सब से अधिक उपयोगी, तथा परिष्कृत पुस्तक इसे ही कह सकते हैं। शेष दोनों पुस्तकों में इतना अधिक विस्तार है कि वे उनके लिये विशेष उपयोगी नहीं है, बिनके लिये लिखी गई हैं।

शिष्यार्थी का क्रमिक विकास—चेमेन्द्र के अनुसार प्रारम्भ से पूर्णता प्राप्त करने तक शिष्यार्थी के पाँच क्रमिक विकास होते हैं। उन्हीं के नाम पर क कविकण्ठाभरण के पाँच अध्याय (संक्षिप्ति) हैं। इनमें प्रथम है भक्तवि को कवित्वाप्ति। यहाँ कवित्व का तात्पर्य व्यात्मक मनोवृत्ति से है। काव्यादि के अनुशीलन से वह संभव होता है। दूसरा विकास कर्म ज्ञान और अभ्यास का है जिसे चेमेन्द्र ने शिक्षा कहा है। इस अवस्था में पद्य रचन की क्षमता आ जाती है। अतः इसके बाद आस्ता ज्ञाना आवश्यक होता है। इसलिये तीसरे पद कर्म में समस्कार प्राप्ति की आवश्यकता तथा उपाय बताये हैं। यहाँ कविता के रूप का यहाँ तक सम्बन्ध है वह पूर्ण हो जाता है। अब कवि को गुण दोषों का ज्ञान प्राप्त कर उससे कविता को निमुक्त रखने की आवश्यकता होती है। अतः चौथे अध्याय में गुण दोष परिज्ञान का ही विवेचन हुआ है। अन्त में शैवता प्राप्त करने के लिए कवि को लोक तथा शास्त्र दोनों का अधिकाधिक परिचय बढ़ाना चाहिये। पंचम अध्याय परिचय प्राप्ति का है। इस प्रकार कवित्वाप्ति, शिक्षा समस्कार, गुणदोष विज्ञान तथा परिचयप्राप्ति इन पाँच विकास कक्षाओं उत्तीर्ण होकर शिष्यार्थी पूर्णकवि बन सकता है। इनमें से एक-एक पर कुछ अधिक विराट्ता से विचार करना आवश्यक है।

कवित्वाप्ति—कवित्वाप्ति दो प्रकार से होती है—दिव्य उपायों से तथा मानुष प्रयत्नों से। दिव्य उपाय है 'ॐ ऐ क्लीं सौं ॐ सरस्वत्यै नमः' इस मन्त्र का जाप। इससे प्रत्येक मायक को सरस्वती की कृपा प्राप्त होती है। 'सोमेन्द्र' का यह अनुमृत प्रयोग था। मानुष प्रयत्न शिष्यार्थी की योग्यता के अनुसार भिन्न भिन्न हैं। शिष्यार्थी तीन प्रकार के होते हैं—अल्पप्रयत्न माध्य कष्ट माध्य तथा असाध्य। इन्हीं को क्रमशः सुशिष्य, दुर्गशिष्य तथा अशिष्य भी कहा जाता है। सुशिष्य को बाह्ये कि यह माहिस्य के जानकारों की सत्संगति में भापा तथा ब्रह्म विद्या का अभ्यास करे तत्साह के साथ मधुर काम्यों को सुने तथा अन्य तत्संबन्धी ज्ञान प्रकट करे। उसे शुद्ध वैराग्य या वीरम नैयायिक को गुरु नहीं बनाना बाह्ये। दुर्गशिष्य को बाह्ये कि वह काश्मिदासादि के काम्यों को देखे महा कवि से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए उसकी एक चित्त होकर परिचर्या करे दूसरों के पदों के पद पाद आदि को परिवर्तित करने का अभ्यास करे तथा अर्धशुभ्य शब्दों को जोड़ पद्य बनाये इत्यादि। तीसरा अशिष्य है। वह या तो स्वभाव से कठोर हृदय का व्यक्ति होता है अथवा व्याकरण या तर्क द्वारा उसकी काव्य प्रतिभा नष्ट हो जाती है। इसके हृदय में कवित्व पृथि का उदय नहीं हो सकता भले ही अच्छी से अच्छी शिक्षाएँ वह प्राप्त करे। सिद्धान्त पर भी गद्या गाता नहीं है और दिखाने पर भी अप्पा देल नहीं केता।

शिष्या—इस प्रकार कवि कीमनोवृत्ति बन जाने पर शिष्यार्थी को सर्व प्रथम आचोपजीवन द्वारा रचना का अभ्यास करना बाह्ये। आचोप जीवन का अर्थ है दूसरे प्रसिद्ध कवियों के पदों के पद पाद अथवा समस्त पद्य के अनुकरण में अपना पद्य बनाना। इसके द्वारा रचना कार्य में प्रवेश होता है। इसके साथ साथ 'सोमेन्द्र' से भी शिष्याएँ और दी हैं जो कवि की जीवन पर्याय तथा अभ्यसन से सम्बन्धित हैं। वे इस प्रकार हैं—सरस्वती व्रत यज्ञानुष्ठान गणेशपूजन, विवेकशक्ति अभ्यास, स्नान, प्रीति अन्नम जम्बपूर्ति लण्घन, दूसरे की रचनाओं का पाठ, काव्य शास्त्र का ज्ञान समम्भापूर्ति कवियों का सत्संग, महाकाव्यों का आस्वादन, शिष्टता सम्मान मैत्री सीमनस्य, मुग्धेय अ भनयों का देखना, सरमता कवियों को दान देना, गीत सुनना सोकाचार परिग्राम प्रसिद्ध कथाओं का आस्वादन, इतिहास का अनसरण करना, मित्रों को देखना, शिल्पियों के कौशल का देखना

वीरबल्लोकन, युद्धालोकन, शोक प्रताप को सुनना, श्मशान या
 अरण्य देखना, प्रती लोगों की सेवा, नींद तथा आयतनों का देखना
 अच्छा मोहन, मातृसाम्य, (स्वास्थ्य) शोक न करना, प्रमाद में
 जागता प्रतिभा, स्मृति आनंद, सुखासन, दिन में सोना गर्मी ठण्डक
 से बचना, पत्र लेखन आदि देखना, ग्रहसुखों का परिचय, प्राणियों के
 विविध स्वभाव का प्रेक्षण, समुद्रादि के दर्शन, सूर्य चन्द्र तारों तथा
 अतुल्यो का ज्ञान, मेले, उत्सव आदि में जाना, देश भाषा के कर्मों से
 भावग्रहण करना, पद रखने व हटाने की बुद्धि, संशोधन, स्वतन्त्रता, पक्ष,
 समा, विद्यालय आदि में ठहरना, वृष्णा न करना, परोत्कर्ष का सहने की
 क्षमता आत्मरक्षापा करने में हस्ता का अनुमय करना, बार-बार
 दूसरों की प्रशंसा करना अपने काव्यों को सुनाने का साहस, घर
 किंवा मधुरता का स्वाग, दूसरे के उत्कर्ष को सदुपायों से जीतने की
 इच्छा, ज्ञान के लिए सब का शिष्य बनने की तैयारी, कविता पाठ के
 अवसरों की पहचान, भाषाओं के विश्व का अनुवर्तन, ईशित तथा
 आचार से दूसरों के भाव पहचानना, उपदेश का ही कर्म में निर्वहन
 करना, कविता के शेष शेष में उपदेश देते रहना, रस प्रसंग का
 अधिक हस्ता न बनाना, अपनी सुष्ठियों का प्रचार, चतुरता, पाठित्य
 नि संगता, एकान्त प्रियता, आशा, त्याग, संतोष, सात्विकता, अयाच
 कदा शिष्टता, काव्य रचना का आनंद, मध्य-मध्य में विग्रामग्रहण,
 मयोनवस्तु के उत्पादन का प्रयत्न, मय देयताओं की स्तुति परकष की
 सहिष्णुता, गंमारता, निर्विकारता, आत्मरक्षापा न जाना, दूसरों की
 अपूरा कृतिओं का पूरा करना, दूसरों के अभिप्राय को प्रचारान्तर से
 अपनी रचना में व्यक्त करना, दूसरों के अनुकूल भाव व्यक्त करना,
 प्रसाद गुण वाक्ते पदों का प्रयोग, प्रसंगातिरिक्त अर्थों को अभिव्यक्त
 करना, निर्विराध रस का वर्णन करना, व्यस्त मय समस्त भाषा का
 प्रयोग प्रारम्भ किये काव्य को पूरा करना और वाणी में चमत्कार
 पूरा प्रवाह जाना । ये ती शिष्टाये हैं जो काव्य में रुचि उत्पन्न होने के
 अनन्तर प्राप्त करनी चाहिये ।

अभ्यास—इन ती शिष्टाओं में आचार्य का तात्पर्य शीघ्र
 पिछास करने के साथ-साथ काव्य रचना का अभ्यास कराने से है ।
 उन्होंने अभ्यास के २३ उपाय बताये हैं । ये भाषा, भाव तथा कला तीनों
 में शीघ्र जाने के लिए हैं । भाषा सम्बन्धी अभ्यास जैसे दूसरों के

अभिप्राय को प्रकारान्तर से अपनी भाषा में व्यक्त करना, प्रसाद गुण युक्त शब्दों का प्रयोग, भाषा में चमत्कार तथा प्रपाद ज्ञान आदि। भाषा सम्बन्धी अभ्यास अनेक प्रकार से किया जा सकता है। दूसरों के भाषा अपनाना, प्रसंगोचित अर्थ व्यक्त करना आदि। कक्षा साधना के भा इसी प्रकार अनेक उपाय हैं—वन्द्य पूर्ति, समस्या पूर्ति, रचना के मध्य-मध्य में उपदेश, रस प्रसंग को अत्यधिक लंबा न करना आदि आदि।

बौद्धिक विकास—कोरे अभ्यास से पदयोजना तो हो सकती है पर काव्य नहीं रचा जा सकता। अतः बौद्धिक विकास पर चेनेन्स ने अभ्यास से कड़ी अधिक बल दिया है। इसके लिये ७७ उपाय बताये हैं। वह चार प्रकार की साधनाओं से हो सकता है—ज्ञानवर्धक अथवा भाषोत्तमक कार्य करने से, बौद्धिक शक्तियों को प्राप्त करने और बढ़ाने से, मनुष्यव्याप्तकृत स्वभाव बनाने से और शिष्ट चर्या और व्यवहार का पालन करने से। इनमें पहले और दूसरे उपाय बौद्धिक विकास के साधन कारण हैं; तीसरे और चौथे सहायक कारण। पहली श्रेणी के कार्य अर्थात् ज्ञानवर्धक और भाषोत्तमक कार्य २२ हैं। ज्ञानवर्धक कार्य जैसे अभ्यशास्त्र का ज्ञान, कर्मों का आस्थापन, अमिनय प्रेरण, इतिहास का अनुसरण आदि। भाषोत्तमक कर्मों में प्रेस स्वान तथा दूरियों का देखना लिया गया है जो भाषा का उभारते हैं, जैसे बीरा का, मुन्नी, रमरान, अरयय, आयतम, समुद्र आदि का देखना आदि।

बौद्धिकशक्तियों का उपार्जन करना एवं उन्हें बढ़ाना भी बौद्धिक विकास का कारण है। कवि को विवेकशक्ति, प्रविभा, स्मृति, चतुरता, पारिवर्त्य आदि गुणों का उपार्जन करना चाहिए तथा उनके संवर्धन का अभ्यास करना चाहिये।

चर्या—सहायक साधन पाठ और आन्तर दो प्रकार के हैं। पाठ में चर्या और व्यवहार आता है और आन्तर में सांत्विक स्वभाव की साधना। दिनचर्या के १२ उपाय तथा स्वभाव साधना के १४ उपाय बताये गए हैं। कवि की दिनचर्या संवत् सांत्विक और कला के अनुकूल होनी चाहिये। सरस्वतीव्रत, यज्ञागुष्ठान, गणेशपूजन, कविसंस्तव, आदि से सांत्विकता आती है। प्रभाववागरण, मुद्रासन गर्मी, ठंडक आदि से व्यवहार करके, विनाम द्वारा मन का शांत देने आदि से शरीर

स्वस्थ रहता है। हेमेन्ट्र के बताये मार्ग पर चलने से शरीर और बुद्धि दोनों स्वस्थ रह सकते हैं, इसमें संदिह नहीं। यह बौद्धिक विकास का यत्न सहायक साधन है।

स्वभाव—आन्तरिक सहाय साधनों के अन्तर्गत स्वभाव साधना के २४ उपाय आते हैं। शिक्षार्थी कृषि को अपना स्वभाव सात्विक, असाहचर्य, शिष्ट, उदार तथा अमीन बनाना चाहिये। इसके लिये वह सङ्गमों से मैत्री करे, सरस बने, मोड़ तथा स्वतंत्र हो, दूसरों के उत्कर्ष को सदैव और अपनी प्रशंसा स्वयं न करे। हाँ दूसरों की प्रशंसा स्वीकृत करे। अपना आलोचना यदि कोई करे तो उसे सहन करे। कोपादिबिभर्षण न आने दे। कृपणा, वाचना आदि करना उसके व्यक्तित्व में टाँका लगायेंगे अतः बर्हत्त्याग दे। क्षमापार्जन के लिये वह क्षमा उदार हो कि सबका शिष्य बनने में उसे संकोच अनुभव न हो।

हेमेन्ट्र का यह विमर्श बड़ा महत्त्वपूर्ण है। कक्षा साधक के लिये इसमें बहुत कुछ प्राप्तव्य है। हेमेन्ट्र के मत संकलासाधक का व्यक्तित्व यदि उज्ज्वल नहीं है तो वह उज्ज्वलादि को कला का स्रष्टा नहीं बन सकता।

दिनचर्या और स्वभाव के अन्तर्गत हमें आचार्य के व्यक्तित्व की भी मूर्तकी मिश्रता ऐ। उन्होंने जा स्वयं किया था, उसी का उपदेश दिया है, ऐसा अनुमान होता है। ज्ञान प्राप्त क लिय सब का शिष्य बन जाने की शिक्षा उन्होंने दी है। उनके कथ्या सं यह प्रमाख्यत होता है कि वे अपने भो का गुरु बना चुक थे। सब दयताओं की समान माय से स्तुति करने की शिक्षा भी उन्होंने अपने अनुभव से दी है। वे स्वयं शय थे, पर इरायतारचरित में वेध्यव मत के प्रति तथा 'अवदान करलता' में बौद्ध धर्म के प्रति भद्रा तथा विश्वास उन्होंने व्यक्त किये हैं।

डा० सूर्यकान्त शास्त्री महाशय का विश्वास है कि इन सौ शिक्षाओं में पूर्वोक्त पाच विकास क्रमों के अनुसार योजना है। पहली से लेकर छहवों पर्यन्त कथित्व प्राप्ति कास की शिक्षायें हैं। इनसे काव्य प्रख्यन को मनावृत्ति बनती है। बीसवीं से लेकर इकतीसवीं तक की शिक्षायें शिक्षाकाश की अर्थात् दूसरे विद्यस क्रम की हैं। इनमें बीसवीं तक औपनयना तथा शेष में बौद्धिक विद्यस की शिक्षायें हैं। बीसवीं कक्षा अन्तर्गत प्राप्ति क कास के शिष्य १२ से ४३ तक औपनयना तथा ४४ से ११ तक बौद्धिक शिक्षायें हैं। गुण दोष परिचान के बीचे विकास

क्रम में ३९ से ७४ तक केवल बौद्धिक शिक्षाये ही हैं। अंतिम क्रम परिचय प्राप्ति के समय के लिये ७५ से लेकर १०० तक जीवनपर्याय तथा बौद्धिक शिक्षा दोनों का विधान है। समीक्षा की दृष्टि से इस नियम का बेहतर वा निर्दोष नहीं जैवता। दूसरी कक्षा शिक्षा प्राप्ति के लिये १५ से २४ तक जीवनपर्याय ही नहीं अभिनय प्रकण, शोकाचार परिज्ञान आदि ज्ञानसम्बन्धक कार्यों का भी वस्तुतः है। इसी प्रकार तीसरे विकास क्रम परिचय प्राप्ति के लिये २२ से ४३ तक जीवनपर्याय ही नहीं, प्रविष्टा, स्मृति, भीष्म आमतना का दर्शन आदि बौद्धिक अभ्यास गिनाये गये हैं। अतः कुछ निरर्थक निर्दोष नहीं कहा जा सकता।

चमत्कार याज्ञना—तीसरी विकासकक्षा चमत्कारयोगना की है। इसमें कवि को अपनी रचनाओं में चमत्कार लाने का प्रयत्न करना चाहिये। चमत्कार काव्य का अपरिहार्य सौन्दर्य है। यह दश प्रकार का होता है—अविचारित रमणीय, विचारितरमणीय, समस्तसूक्ष्मापी, सूक्ष्मकरेशाध्यापी, शब्दगत, अर्थगत, सम्यगत, अक्षरगत, रसगत तथा कलागत। इसमें अविचारित रमणीय चमत्कार पद्य के लक्ष्यमान से ही प्रतीत हो जाता है। विचारित रमणीय अपेक्षाकृत गंभीर होता है वह पद्यार्थ का विचार करने पर प्रतीत होता है। शेष सब का अर्थ स्पष्ट है।

गुणबोध परिज्ञान—चौथे विकास क्रम में गुणबोधों का परि ज्ञान अपेक्षित है। केनेत्र औचित्य को काव्य में सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते थे। औचित्य के अन्तर्गत गुण और वाप सभी समा जाते हैं अतः आचार्य ने इस प्रसंग का उल्लेख नहीं किया बल्कि जितना दूसरे आचार्यों ने वापों के अनेक भेद उपमद दिखाकर तथा शैली की चारुताओं को गुणमान देकर कहा है। इनकी दृष्टि में कलुपता एकमात्र दोष है और विमलता गुण है। कलुपता शब्द, अर्थ और रस तीन में संभव है अतः शब्दकालुप्य, अर्थकालुप्य तथा रस कालुप्य तीन काव्य के दोष हैं। इसके विपरीत शब्दविमलता, अर्थ विमलता तथा रसविमलता तीन काव्य के गुण हैं।

परिचय प्राप्ति—पाँचवीं अंतिम विकास कक्षा में कवि को अधिकारिक वास्तुओं का परिचय प्राप्त करना चाहिये इसे केनेत्र ने 'कवि साक्षात् व्यंजन' कहा है। परिचय धस्तुओं में द्वय बौद्धिक

तथा कुछ शास्त्रीय वस्तुयें गिनाकर शेष को प्रकीर्ण कहकर संकेतित किया है। प्रकीर्ण में चित्र, देश, भूत, वनेष्वर औदार्य, मच्छिमाष, विषेक प्रशम आदि का परिचय बताया है। उनका तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि कवि का उत्कर्ष रचना ही अधिक बढ़ेगा जिसका परिचय अधिक होगा। तर्क, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, पाण्डित्यनीति, कामशास्त्र महाभारत रामायण, वेदान्त, जातुपरिचय, रत्नपरीक्षा, वेद्यक, व्योतिष अनुर्वेद, राक्ष, तुरंग तथा पुरुषों के वक्ष्य धूल, इन्द्रजात तथा प्रकीर्ण में परिचय वस्तुयें गिना दी गई हैं। हमें क्या रचना चाहिये कि सौ शिक्षाओं के अन्तर्गत भी अनेक वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक बताया है। वे कवि बनने के साधन हैं। ये कवि को प्रौढ़ता तथा मद्दिष्टता प्रदान करती हैं। पहली अनिवार्य हैं। वे अलंकारक तथा उत्कर्ष को बढ़ाने वाली।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि जेमेन्स ने शिक्षा जैसे व्यापक विषय का प्रतिपादन बड़ी योजना, व्यवस्था तथा व्यावहारिकता से किया है। राजशेखर का सा अतिविस्तार, अस्पष्टता एवं किसी एक तथ्य के निर्णय पर न पहुँचने की अव्यावहारिकता इसमें नहीं है। होलक पोम्प अनुमयी अव्यापक की मौखिक विचार्यों की बुद्धि सीमा को पहचानता हुआ सरल उपायों द्वारा उत्कर्ष की ओर उसे ले जाता है। व्यापकता, अर्थ शून्य शब्दों से ज्ञान पूर्ति आदि की शिक्षा का विघात प्रत्यक्ष की व्यावहारिकता का परिचय देता है। जेमेन्स ने सब से अधिक बल शिक्षार्थी के बौद्धिक विकास पर दिया है। पुस्तक में पाठ्यप्रदर्शन द्वारा क्लेशर बुद्धि न कर इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता की है। कवि शिक्षा ही वित्तुव शास्त्र बन जाए तो शिक्षार्थी उसी में फँस जायगा। काव्य रचना का उसे अवसर ही न मिलेगा। 'आये ये हरि मज्जन को ओटम लगे कपास।' इस क्षेत्र में जेमेन्स पूर्ण सफल सिद्ध होते हैं। जेमेन्स के बाद भी कुछ आचार्यों ने कवि शिक्षा पर लिखा है। उसका विवरण इस प्रकार है।

हेमचन्द्र—हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में प्रसंग से इसका उल्लेख किया है। इसमें नवीनता तो कम है केवल प्राचीन मतों का उद्धरण है। इनके अनुसार काव्य का हेतु प्रतिभा है। यह सद्भाव तथा अर्चित हो प्रकार की है। आत्मा के मल आवरण के छय होने से पहली तथा मंत्रादि की साधना से दूसरी प्राप्ति होती है। प्रतिभा का

संस्कार व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा होता है। व्युत्पत्ति का अर्थ है छोड़ शान्ति तथा काव्य में निपुणता प्राप्त करना। मर्मज्ञ कवि के निर्देशन में बार-बार रचना करना अभ्यास है। शिष्या की के लिए सूत्र में आवश्यक बातें हैं—सत् को छोड़ देना, असत् का निर्वचन करना, नियम का पालन तथा वायोपजीवन। यहाँ सत् का तात्पर्य चमत्कार हीन वस्तु अर्थात् इतिवृत्त से है। कार्पनिक वस्तु असत् है।

वाग्मट—इनके अनन्तर वाग्मट ने भी अपने 'वाग्मटासंस्कार' ग्रन्थ में इसका थोड़ा बख्शेल किया है। वे बेयक कल्पना को ही काव्य का हेतु मानते हैं। व्युत्पत्ति उसका आभूषण है तथा अभ्यास निपुणता का साधन। हमके बार उन्होंने कुछ शिष्या बतवाई हैं जो खेमेन्द्र के शतक में से ही कुछ एक का परिगणन मात्र है।

अरिमिह—राजशेखर तथा खेमेन्द्र के बाद इस पर पूरा ग्रन्थ खिलने वाले अरिमिह हैं। उन्होंने 'काव्य कल्पलता' नामक ग्रन्थ इस पर प्रणीत किया है। अमरचन्द्र ने इसी पर 'वृत्ति' नाम से टीका लिखी है। पुस्तक चार प्रतानों में विभक्त है। बितान स्वर्णों में बटे हुये हैं। पहले प्रतान में छन्द, दूसरे में शब्द, तीसरे में श्लेष, चित्र अलंकार तथा चौथे में उपमा रूपक आदि अलंकार वर्णित हैं। अन्त में रचनाभ्यास के कुछ उपाय भी बताये गये हैं। पर वे मौलिक नहीं हैं। पुस्तक में अनावश्यक विस्तार, आपत्ति, परिगणन आदि के दोष हैं। मौलिकता का अभाव है। लेखक परिमयी अवरण है। इसने शिष्यावियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दसमूह एकत्र किये हैं।

केशव और देवेश्वर—इस विषय के अन्तिम लेखक केशव तथा देवेश्वर हैं जिन्होंने क्रमशः 'अलंकार शेखर' तथा 'अभि कल्पलता' पुस्तकें कवि शिष्या पर लिखी हैं। पुस्तकें अरिमिह तथा अमरचन्द्र का अनुकरण मात्र हैं।

समाहार—यह संस्कृत साहित्य की कवि शिष्या के क्रमिक विकास का सूक्ष्म चित्र है। समूहालंबनात्मक दृष्टि से इसे देखें तो राजशेखर और खेमेन्द्र ही आचार्य इस विषय में प्रमुख प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपनी अपनी पद्धति से विस्तार पूर्वक विषय का रसमंत्र प्रतिपादन किया है। राजशेखर की मिष्टता बहुदृढ़ एवं विरालता पाठक को विस्मित करती है। खेमेन्द्र की व्यवस्थित योजना, अनुभव

और निर्भ्रान्त निर्द्वेष हमें मुग्ध बनाते हैं। राजशेखर महान् हैं, सेमेन्द्र व्यावहारिक। राजशेखर के विषयावगम में प्रांजलता तथा व्यक्तता का अभ्यास है। सेमेन्द्र में ये दोनों गुण बहुत बढ़े बढ़े हैं।

अन्त में एक प्रश्न पठता है। इस प्रकार की कवि शिक्षा से कवि के निर्माण में कितना उपकार होता है? प्रश्न को यों समझना चाहिये। काव्य का मुखहेतु प्रतिभा है। वह जन्म जात सहज होती है यह सभी मानते हैं। फिर शिक्षा इसका क्या उपकार करेगी? कवियों का इतिहास इसकी अपार्यकता सिद्ध करता है। पारमोक्षि, व्यास आदि के जीवन में इस प्रकार का मार्ग प्रदर्शन कुछ था इसमें कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी वे कवि ही क्यों कवियों के उपजीव्य बने फिर क्या यह सब याणी का विज्ञापन मात्र है या किसी आवश्यकता की पूर्ति है? उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि जिनमें जन्मजात प्रतिभा है उनके लिये इसका उपकार केवल संस्कार मात्र का है। कला का परिष्कार कुछ नियमों के आधार पर ही हो सकता है। पर यह सब का विचार नहीं। कभी कभी परम्पराओं का ज्ञान व्यर्थम्ब प्रतिभा की निःसीम उड़ान को सीमित भी कर सकता है। इतना तो मानना ही चाहिये कि हम सबके अध्ययन से कवि बैठन हो जाता है और भावमग्न हृदय की जो उपचेतना बसा होती है जिसमें ग्रेष्ठ काव्य का जन्म होता है, वह हमके हाथ में नहीं रहती। अतः यही कहना चाहिये कि सहज प्रतिभा के लिए कवि शिक्षा काह उपकार नहीं करती। भरिपल बैलों के लिए खीक चाहिये। जानदार बढ़के तो अपनी खीक आप बनाते हैं। शायर तो पेखीक ही अच्छा।

पर जो बीच के लोग हैं उनके लिए इसकी सहायता कम महत्व की नहीं। शिक्षा यदि सचे हृदये गुरुओं द्वारा हो तो काव्य रचना में रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। जिनकी रुचि हा उन्हें सुझ बनाने में तो इस पद्धति में संतोषजनक सहायता मिलती है। प्रतिभा वाले कवियों की रचनाओं में भाव की भासिका तथा अनुभूति की व्यापक गंभीरता रहती है। शिक्षा प्राप्त कवियों की कृतियों में करुणा का अमस्कार, शैली का मगध और 'पोलिस' आदि स्पष्ट रहती है। हिन्दी में कबीर, नानक, दादू, मीरा आदि केवल प्रतिभा के कवि हैं। सुसखी, पिहारी आदि

संस्कार प्राप्त प्रतिमा के। केशव चम्पासजन्म निपुणता के कवि हैं।
 उनका निर्माय कविराजा से हुआ प्रतीत होता है। हम सब के कृतित्व
 का मूल्यांकन किया जाय तो मानना पड़ेगा कि ये दूसरी कोटि के कवि
 नक्षत्रों की भी साहित्याकाश में कम चमक नहीं रखी। सरस्वती की
 सेवा भी उनकी उपेक्षणीय नहीं मानी जा सकती। चम्पास प्रसूत
 कृतियों में कल्पना का चमत्कार इतना आश्चर्य होता है कि वह
 मौलिकता की रेखा छू लेता है। श्री हर्ष का 'नैपथीचरित' इसी प्रकार
 का काव्य है। वह संस्कृत काव्यों को प्रसिद्ध गृह्यपी में से एक है।
 हेमचन्द्र तो प्रतिमा के दो भेद मानते हैं, सहजा तथा औपाधिकी।
 औपाधिकी प्रतिमा चम्पासजन्म निपुणता है जो प्रतिमा के समकक्ष
 हो जाती है। मौलिक प्रतिमा के कृषी कवियों को यही चाहिये कि
 वे इस सीमा बंधन में न बँधें। भीरे के पंख मधु में भीग कर अपनी
 कमान की कमता जो बैठते हैं।



देन

संस्कृत साहित्य में चेमेन्द्र का अपना स्थान है जिसका महत्व किसी से कम नहीं। वे कवि, नाटककार, रीतिकार, कोषकार तथा इतिहासकार हैं। इनकी कृतियों में काव्य, महाकाव्य, समीक्षामन्य, ईश्वरशास्त्र के ग्रन्थ, नाटक, उपदेश प्रधान रचनायें, तथा महाकाव्य एवं इतिहास काव्यों के सूक्ष्म रूपान्तर सभी प्रकार की रचनायें विद्यमान हैं। इन रचनाओं के रूप भी विविध हैं और विषय भी। चेमेन्द्र ने अपने काव्य की परिधि में जितने विस्तृत जीवनक्षेत्र को समेटा है, उतना अन्य किसी ने भी नहीं। संस्कृत साहित्य में मोक्ष और हेमचन्द्र दो कलाकार इस भेद्यो में आते हैं। पर वे न इतने विस्तृत ही हैं जितने कि चेमेन्द्र और न मौलिक तथा गंभीर ही। इसलिए जिस दृष्टि से इनका मूल्यांकन होना चाहिये उस दृष्टि से वे सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं।

इनके काव्यों को तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं। महाकाव्यों के सूक्ष्मरूपान्तर, उपदेश प्रधान रचनाएँ और महाकाव्य। इनमें से सूक्ष्मरूपान्तरों में काव्यत्व नहीं के बराबर है, हो भी नहीं सकता। यहाँ कवि की प्रथिमा विस्तृत वस्तु को सूक्ष्म बनाने में व्यस्त रहती है। पर चेमेन्द्र ने जो कुछ किया है वह कम नहीं है। 'रामायण', 'महामारुत', 'बृहत्कथा' जैसे समुद्रकल्प ग्रन्थ साधारण पाठकों के लिए सुचारु सरिता बन गए। यह साधारण कार्य नहीं है।

उपदेश प्रधान रचनाओं के फिर दो उपविभाग हैं। साक्षात् उपदेश प्रधान करने वाली और ध्वन्य द्वारा उपदेश देनेवाली। 'आरुचर्या', 'सम्यक्समयकापदेश' तथा 'चतुर्थ्यर्गसंग्रह' पदछा भेद्यो में हैं। इनमें कदाचित् तथा उपदेश दोनों को साथ साथ जोड़ देने से इनका प्रभाव द्विगुणित हो गया है। जन साधारण का उससे सुधरने का पर्याप्त लाभ होता है।

ध्वंगप्रधान रचनायें हैं—'देशोपदेश', 'मर्ममाला', 'दर्पदलन', 'समयमातृका' और 'कमलालिकास'। इनमें ध्वंग के लक्षण बने हैं—पूर्व, कृपण, दर्पारी लोग, दुष्टियाँ बिल, पिछार्थी, कायस्थ, घृद्धयर, बेरपायें, साधु संन्यासी, भोसिलिये जाकर आर व्याधिपी, गमेय, सुनार, व्यापारी आदि आदि।

इनकी दुर्बलताओं को रोमेन्द्र ने बड़े निकट से देखा है और उन्हें प्रकट करने के लिए ऐसी चुटकियाँ ली हैं जो निर्वच्य भी हैं और गीठी भी। समाज की ऐसी दुर्बलतायें दूर न की जायें तो विपद् बढ़ने और समूचे समाज के दूषित होने की आशंका रहती है। इसलिये रोमेन्द्र इनसे बचने के लिए तथा अन्त में इनकी समाप्ति के लिए ध्यंग प्रचेसों का सहारा लेते हैं। स्वभाव से मनुष्य सामाजिक मान का भूला रहता है। ध्यंग उसकी इस कोमलता पर तीखा प्रहार करता है जिससे तिलमिलाकर वह दुर्बलताओं को त्यागने तथा मानपूर्व्य कीयन बिठाने के लिए बहुरूपी हो जाता है। इनसे बहासीन व्यक्ति की इन दुर्बलताओं के प्रति हीन भावना तथा अपने प्रति गौरव की भावना आवृत होती है। फलतः साधारण लोग भी इस आत्म में फैलने से बच जाते हैं। इसलिये मनीषियों का विचार है कि ध्यंग विद्यान समाज सुधार का बेष्ठ साधन है जिसे एक साहित्यिक कर सकता है। इसके साथ-साथ यदि कुछ रचनात्मक विचार भी उपस्थित किये जायें तो फिर सुषर्ष में सुगन्धि हो जाती है। रोमेन्द्र ध्यंग पोषण तो सफलता से करते ही हैं, साथ-साथ रचनात्मक विचार भी व्यक्त करते हैं। 'कच्चा बिलास' में उन्होंने ऐसा ही किया है। विविध व्यवसायों के कष्ट पूर्ण व्यवहारों का सुझाव देते हुए उनकी हीसी बहाई है और अन्त में युवकों के लिए निष्पाप आजीविन का उपदेश दिया है। इनके ध्यंग्य न तो इतने तीव्र हैं कि असह्य हो छटें और कपि को पक्षांगी प्रमाणित कर दें और न इतने कोमल हो दें कि वे उपेक्षणीय हो जायें। उनमें सामंजस्य है और रचनात्मकता है। इस प्रकार ध्यंग्यकार के रूप में रोमेन्द्र संस्कृत साहित्य में मूर्धन्य हैं।

इसके बाद इनका रीतिकार का रूप भी सुदृढ विचार किया जाय। इनके अन्तर्गत तीन पुस्तकें आती हैं, 'कविकण्ठाभरण', 'श्रीधित्य विचार चर्चा' और 'सुसूचक विचार'। तीनों ही कृतियों का अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्व है। इनके ऊपर रोमेन्द्र ने संस्कृत साहित्य को आदर्य बनाया है। नवीन मार्ग की खोजकर उसे पूरा प्रतिष्ठा दी है।

'कविकण्ठाभरण' कवि शिक्षा पर लिखा हुआ छोटा ग्रन्थ है। इस की योजना में कवि ने स्वोपय मार्ग अपनाया है। परम्परा का पावन नहीं किया। पुष्पुष्प कवियों के लिए अमरम्बर वत्त्व को अनि-
; से आवश्यक माना है। इसमें वे व्यावहारिक प्रतीत होते हैं।

कवि शिक्षा का प्रकार भी बनका मौलिक है। वह राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' से इस अर्थ में बहुत आगे है कि यह व्यावहारिक है; सर्व साधारण के लिए सुगम है। 'काव्य मीमांसा' पाठित्यपूर्ण ढंग से पिली हुई आदर्शमय रचना है जो सिद्धहस्त कवियों को भी भ्रम में डालने वाली है। चेमेन्ट ने कविता बनाने का मार्ग सुगम और सरल बनाया है। इस दिशा में और भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य जो उन्होंने किया है वह है कवि बनने वाली की मानसिक एवं शारीरिक शिक्षा का। बनका कहना है कि रचना की शिक्षा के समान ही कवि की बुद्धि का शिक्षण भी आवश्यक है। इसी सम्बन्ध में वे शारीरिक स्वास्थ्य का भी विचार किये बिना नहीं रहते। शरीर और बुद्धि के अयोग्य सम्बन्ध को मानकर चेमेन्ट ने कितनी अभिनव साम्यता प्रकट की है ? इस सम्बन्ध में निराशा भी का वह कहना चाहता था है कि बुरा लगाकर बाधाम पिये बिना कवि नहीं बना जाता।

औचित्य विचार बर्षों में जो समीक्षा मार्ग उन्होंने दिखाया है वह सर्वथा नवान तो नहीं है, पर व्यापक तथा गम्भीर बहुत है। इसकी प्रासंगिक बर्षों तो दूबडा, आनन्दवर्धन आदि ने की है पर उसे समीक्षा क्षेत्र में जो स्थान मिलना चाहिए वह नहीं दिया गया था। गुणदाप के प्रसंग में आचार्य आग औचित्य का स्मरण करते थे। दूबडा की अपेक्षा आनन्दवर्धन ने औचित्य पर अधिक बल दिया है पर उनके विचार से भी वह व्यति का गौण अङ्ग है। काव्य का आनन्दतत्त्व तो किसी के मत से अलंकार, किसी के मत से रीति, दूसरे की दृष्टि में रस और तीसरे के सिद्धान्त में व्यति हैं। चेमेन्ट ने इन सब विचारों को एक ओर रखकर औचित्य को रसादि का भूतवत्त्व सिद्ध किया है। उनके विचार से काव्य की आत्मा औचित्य है और वह भी इसलिये कि औचित्य के बिना रस, अलंकार, व्यति आदि अकिञ्चित्कर हैं। वे काव्य के विधायक तत्त्व नहीं हो सकते। इन सब के प्रयोग में औचित्य है जो वे अपना अभीष्ट प्रभाव डालते हैं अन्यथा नहीं। फलतः यही सिद्ध होता है कि बिना काव्य का भूत समन्वय जाता है उनका भी भूत औचित्य है। इस विचार से चेमेन्ट बड़े विवेकी सिद्ध होते हैं कि उन्होंने रसादि के महत्त्व का अग्रहण नहीं किया। उनके साथ औचित्य का अनुस्यूत किया है। उनकी प्रतिमा स्वीकारिणी है विरस्कारिणी नहीं।

औचित्य सिद्धान्त में औरों की अपेक्षा अधिक निरूपयात्मकता है। यह रस, ध्वनि, अलंकार, गुण, दोष आदि से मिल है और साधारण बुद्धि गम्य है। क्योंकि औचित्य का आधार जीवन का स्थूल दैनिक रूप है। जीवन में सबकी दृष्टि से जो उचित है वही काव्य में भी उचित है। फिर किसी पद्य में एक की दृष्टि से काव्यत्व अपेक्षा रस, ध्वनि आदि है और दूसरे की दृष्टि से नहीं है, इस दुविधा के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। संस्कृत के समीक्षा प्रश्नों में अनेक ऐसे स्वल्प पाये जाते हैं जहाँ एक आचार्य के अनुसार काव्यत्व है और दूसरे की दृष्टि से उसका अभाव। औचित्य सिद्धान्त के अनुसार काव्य समीक्षा को बाध तो इस प्रकार की संदिग्धता और अनिश्चितता नहीं रह जाती।

समीक्षा मार्ग में विषयापेक्षा का अर्थ जितना अधिक होगा उतनी ही कक्षा लोकजीवन के निकट आ जाती है। वस्तुनगट जो हमारी ज्ञान की परिधि में रहता है, उसके आधार पर कक्षा का मूल्यांकन होने लगता है और यह जन साधारण की पहुँच के अन्तर्गत हो जाती है। यह कक्षा के प्रसार और परिष्कार दोनों के लिये ही कामवाचक है। औचित्य मार्ग में यह बात विद्यमान है। उसका आधार जीवन है। इस मत में साहित्य जीवन से ऊपर किसी दूसरे लोक की रचना नहीं। इसी से उत्पन्न विचार सृष्टि है। रखादि सिद्धान्तों के प्रतिपादन के अन्तर्गत जो जहाँ जहाँ 'सद्भावैकसंवेद्यता' का पुट लगा मिळता है उसकी यही आवश्यकता नहीं पड़ती। वास्तव में इस 'सद्भावैकसंवेद्यता' को दुहाई दग जाने पर कक्षा समीक्षक का विवेक हारकर बैठ जाता है। आगे बढ़ने के उसके सब रास्ते बंद हो जाते हैं। फिर कक्षा के नियंत्रण का अन्त हट जाता है। वह स्वच्छन्द कथा खेरिणी हो जाती है। समीक्षारास अर्थात् जीवन सका जनका कारण समूह कुछ ऐसा ही था। कोई कुछ कहता तो असद्भाव बनाकर साहित्य की मैफिद से बाहर निकाल दिया जाता। औचित्य का कक्षा समीक्षण का आधार मान लेने पर इस प्रकार की कुञ्जटिका हट जाती है।

रस अलंकार आदि के अनुयायी कवियों में जो मायरा अतिगामिता दिखाई पड़ती है उसमें औचित्य पर दृष्टि का न रहना

ही कारण है। पाण्य की रसैकपरकता, माष की अलंकारिकसङ्घता इसमें प्रमाय है। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के अलंकारबादी केशव तथा ध्यनिमार्गी बिहारी इसी मेणी के साहित्यकार हैं। इनमें कोई रस को ही तथा कोई अलंकार को ही कविता का सर्वस्व मानकर रचना करते हैं। इसलिये रसबादी के काव्य में रस की मात्रा अति तक पहुँच जाती है और दूसरे तत्व अलंकार, माषा, आदि उपेक्षित रह जाते हैं। वास्तव में जिस प्रकार सामंजस्य जीवन को सुस्मिर एवं सुखद बनाता है उसी प्रकार काव्य को भी। सामंजस्य औचित्य का दूसरा नाम है। आचार्य चेमेन्द्र औचित्य को महत्त्व देने में इसी प्रकार को धारणा रखते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने मत को प्रतिष्ठा मतान्तरों के लड़न से नहीं की। वे समझते थे कि काव्य की शरीर पुष्टि इन सभी से होती है। हाँ, यह अत्यंत अपेक्षित है कि संपदन में जिस तत्व की कितनी धीर जाहूँ पर आवश्यकता है वह उतना हो और यही पर प्रयुक्त हो। इस औचित्य को रक्षा सदा होनी चाहिए। यही इस शरीर के संधारण का एकमात्र आधार है। जिस प्रकार आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त, कफ के सामंजस्य से संपदित हुए शरीर में यदि किसी एक तत्व की अति वृद्धि हो जाय तथा शेष का ह्रास हो जाय तो शरीर ही का ह्रास या विनाश हो जाता है। इसी प्रकार औचित्य मार्ग के प्रवर्तक आचार्य चेमेन्द्र औचित्य के अभाव में रस, अलंकार सब कुछ के रहने पर भी काव्यत्व का अभाव समझते हैं।

काव्य में गुण दोष की समस्या भी केवल औचित्य के आधार पर सुलभ्य है। जो उचित है यह गुण है, जो अनुचित है यह दोष है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि औचित्य का अन्तर्भाव गुण दोष में हो जाता है। औचित्य इससे पूरक स्वतंत्र तत्व है। समीक्षकों ने गुण दोष की पहले पहल कल्पना की तो वे अलंकार आदि की भौति स्वतंत्र माने गए। पर बाद में जब यह अनुभव हुआ कि गुणत्व या दोषत्व कोई स्थिर स्वभाव के गुण नहीं हैं। जो एकत्र गुण है वही अपरत्र दोष बन जाता है इसी प्रकार दोष गुण बन जाता है तो फिर उनमें निर्यामिरय की व्यवस्था माननी पड़ी। इसमें भी इतिवृत्त कुछ नहीं कहा जा सकता। इसीलिए भोज की ही मान्यता यही है कि सब दोष उचित प्रयुक्त हों तो गुण बन जाते

हैं। व्याकरण के लिए व्युत्पत्तिकृति मिल देय है। पर महीकार से सीता विषोग में विचक्षणपेता राम के मुख से व्याकरण व्युत्पत्ति शब्दों का प्रयोग कराकर ही उनकी विधिमापस्या की व्यंजना की है। इस तरह कहा जा सकता है कि गुण दोष व्यवस्था के मूल में एक मात्र निर्धारक तत्त्व औचित्य ही है और वह इतना व्यापक तथा गंभीर है कि इसके मान लेने पर इनकी संख्या बढ़ाने तथा विभाग उपविभाग करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

‘छन्दः’ कह सकते हैं कि समीक्षा क्षेत्र में ‘चेमेन्ट्र’ ने बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। समीक्षाओं की आवश्यकता गामिनी दृष्टि को व्यावहारिकता प्रदान की है, उसे समन्वय तथा सामंजस्य की ओर प्रेरित किया है। वे काव्य और जीवन को एक दूसरे के निकट लाये हैं। समीक्षा जैसे व्यक्तिपरक शास्त्र में विषयापेक्षता का पुट लगा कर उसे जीवन दिया है।

काव्य के मूल्यांकन में औचित्य का जो महत्त्व उन्होंने समझा था उसे दूसरे आचार्य अनुभव न कर सके। उनकी दृष्टि बड़ी पुराने मार्गों के महत्त्व में फिर भ्रान्त हो गई। इसलिए यह तथ्य उन्होंने गुण दोष में अल्पभूत मान लिया। वास्तव में उससे बड़ी व्यापक और बड़ी गंभीर यह ध्येय गुण था। आचार्य ‘चेमेन्ट्र’ ने भी इसकी चर्चा मात्र की थी। इसकी विराह व्याख्या में यदि वे अन्य मठों का संतुलन करते हुए पाण्डित्यपूर्ण ढंग में विराल ग्रन्थ मिलते तो संभवतः आधुनिक लोग इनके अनुवर्तक बनते और भारतीय मर्म का मार्ग बहुत परिष्कृत हो जाता। काव्य कहा व्याकरा के दिव्य लोक से उतर कर पार्थक्य जीवन के मूलोक्त में आ जाती। फिर भी ‘चेमेन्ट्र’ ने औचित्य की इस प्रकार व्याख्या की है कि काव्य के सभी तत्त्व गुण, दोष, अलंकार, ध्वनि, रस, पद्यता, शब्द, अर्थ आदि उसमें समाते हैं।

पारचास्य समीक्षाओं में जैसे कला कृतियों पर सर्वांगीण विचार करने की पद्धति है वैसे भारतीय समीक्षाओं में नहीं है। वे काव्य को ‘संज्ञा’ पद्धती है। एक विशेष दृष्टि से कृतियों की समीक्षा की जाती है। अलंकारवादी समस्कार तत्त्व पर विशेष दृष्टि

प्रकार रसवादी, व्यंग्यवादी आदि हैं। इसकी पहुँच खरित्र विग्रह आदि तक नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य का स्वल्प इन सबसे बहुत अधिक है।

सेमेन्ट ने दृष्टव्यता की एक कसौटी स्थिर की है। उस पर काव्य ही नहीं सब प्रकार की कलाओं को कसा जा सकता है। उसकी वह में यह मान्यता छिपी है कि काव्य या अन्य कोई कला जीवन का प्रतिबिम्ब है। उसके परखने का मानवस्य जीवन से सेना चाहिये। कला कला के लिये नहीं, जीवन के लिये है, जीवन से प्रसूत है और जीवन द्वारा ही परीक्षणीय है। इस दृष्टि से सेमेन्ट का कृतित्व बहुत बढ़ जाता है। उन्होंने समाजा की नई रेखाएँ खींची हैं।

सेमेन्ट ने साहित्य की अनेक दिशाओं में कार्य किया है।

१—उन्होंने इतिहास विद्या में भी कार्य किया था। उन्होंने सूरना ही है कि उन्होंने राजाओं की सूची, 'नृपावली' पुस्तक लिखी थी।

२—हामोदर गुप्त की परम्परा में व्यंग्य काव्य (Satirical poetry) की दिशा में भी सेमेन्ट स्मरणीय है। उन्होंने अपनी 'कला विकास' रचना में विभिन्न व्यवसायों के रूप पूर्ण व्यवहारों पर व्यंग्य कस है।

३—उन्होंने स्वतन्त्र कव्य, नाटक चर्यनात्मक काव्य, नीति उपदेश प्रधान रचनाएँ, व्यंग्य काव्य, अलंकार शास्त्र, छन्द शास्त्र, काम शास्त्र तथा रामायण महाभारत कृष्ण कथा, बौद्धावदान, बालकृत अश्वमेधी तथा वात्स्यायनकृत काम शास्त्र के सूत्र रूप पद्य में किये हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत का स्वातंत्र्यवादी कोई अन्य कवि पुत्रकाव्य का इतना बड़ा प्रयोग नहीं हुआ। वे पद्य, परिच्छेद तथा नियमित हैं। ज्ञान की विविधता और बहुलता ने इनकी शैली में लौकिक समीपता ला दी है। इसकी मौलिकता के दर्शन जब बड़ी-बड़ी रचनाओं में भी दिखाई देते जिनमें कवि ने परिश्रम किया है; बल्कि छोटी-छोटी सहज रूप से मिली कृतियों में कवि का खेप्ट रूप व्यक्त हुआ है। कवि प्रकृष्टता लौकिक है। लोक को काव्य में खतारने की प्रज्ञा उसमें है। 'समय गातृका' में मुख्य घेमियों पर व्यंग्य करने, पेरना के रूप पूर्ण व्यवहारों का लाका खींचने, मेश्या जीवन का पथार्थ रूप दिखाने में कवि पूर्णतः सफल है। अनेक चर्चों में यह

भौतिक है। इनकी शैली में सीधुता, व्यंग्य प्रधानता एवं व्यपता है। हास्यव्यंग्यक दृश्य घटनाओं एवं व्यक्तियों के वर्णन के लिए इनकी प्रतिभा अत्यन्त सज्जम है।

श्लोक व्यवहार में निपुणता तथा सफलता प्राप्त करने की दिशा में भी कवि की बहुलता में कार्य किया है। 'सेव्यसेवकोपदेश', 'चरुचर्या', 'चतुर्थ्यर्गसंग्रह' तीन रचनायें इसी दिशा के प्रयत्न हैं। इनमें कवि का श्लोक जीपन का सूक्ष्म निरीक्षण अत्यन्त प्रशंसनीय है।

मानव की दुर्बलताओं को कवि ने व्यंग्य का विषय बनाया है। 'वर्ष बहान' रचना में उन्होंने मनुष्य के दुर्प पर व्यंग्य किये हैं। दुर्प की उत्पत्ति जन्म, धन, विद्या, सौन्दर्य, शौर्य, दान और तप आदि से होती है। पर ये सभी विषय विवेकी के लिए उपहसनीय हैं। 'कच्चा विनास' में वैद्य, चेश, व्यापारी, सुनार, गधैया, शेखीखोर, मिकारी, साधु आदि के दार्शनिक जीवन पर व्यंग्य के छोट छोट हैं।

'देशोपदेश' तथा 'नाम माळा' में भी काश्मीर के देशीय जीवन का, वहाँ के अस्थाचार, दार्शनिक व्यवहार और व्यवहार का चित्रण है। देशोपदेश रचना में इषा में किये बनाने वाले लाल, दीनमन्त्रिन, लालची कृपण, दूसरों के हाथों में गुणिषा की भाँति खेलने वाली सुखिरान्त्य बेरवा, सर्पिणी दुर्ग्य कृटिक कृटिनी, मक्कीके बेरा में चन्दर सा प्रवोत होने वाला बिठ, दुर्बल बंगाली बाबू जो काश्मीर की जलवायु के प्रभाव से दुःखाहसी बन गया है, नव विवाहित बूढ़ पुरुष, पतिव्रत, धूर्त कायस्थ और उसकी अंजल चित्त पत्नी, जालाक व्यापारी, शेखीखोर रसायनिक, मिथ्या तपस्वी, आईकारी पैयाकरख आदि के इत्यमहो रेखाचित्र दिये गये हैं। 'नाम माळा' में भी वही प्रकार विविध रेखाचित्र दिये हैं पर इसमें काश्मीर में कायस्थों के द्वारा राज्य में फैलाये व्यवहार का वर्णन विशेष हुआ है। एक ही कायस्थ अपनी जालाकी के बल से गृह कल्याधिपति, परिपालक (ग्रान्त का शासक) सेलोपाम्पाय, गजबिधिर (Chief Accountant) तथा मियोगी आदि बन बैठा है। इन रचनाओं में एक ओर काश्मीर के स्थानीय जीवन का चित्रण है दूसरी ओर जीवन के साधारण स्तर के दर्शन का भी उद्घाटन किया है। यहाँ भी कवि के व्यंग्य कटने का गुण प्रमुख प्रतीत होता है।

समाज के दैनिक जीवन का चित्रण जम्हण (१२वीं शती) ने अपने 'मुग्धोपदेश' ग्रन्थ में किया है। पर वहाँ कवि गंभीर और नैतिक बना रहता है। विषय के उचित निम्न स्तर पर उतर कर उसका यथार्थ चित्रण नहीं करता। इसी प्रकार का दूसरा प्रयास वासुदेवाय कवि नीलकण्ठ दीक्षित का 'कवि विडम्बना' है। इसमें भी शिष्टता एवं नैतिकता पर विशेष दृष्टि है। प्रतिपाद्य का यथार्थ चित्रण नहीं हुआ। इसमें सफलता बितनी खेमेन्द्र को मिली है उतनी अन्य किसी को नहीं।





छंद विचार

छन्दों का विवेचन करने के लिये चेमेन्ट ने 'सुश्रुत-तिलक' ग्रन्थ की रचना की है। इसका महत्त्व पहचानने के लिये यह आवश्यक है कि इस विषय का इतिहास सूक्ष्म रूप से देख लिया जाय।

इतिहास

साहित्य के अन्य विषयों की भाँति छन्दों पर भी संस्कृत में बड़ा विस्तृत विचार हुआ है। संस्कृत साहित्य में छन्दों की संख्या संभवतः संसार के सभी साहित्यों की अपेक्षा अधिक है। उनके स्वरूप का विवेचन भी बड़ी व्ययथा के साथ किया गया है। साधारणतया छन्दों के दो भेद हैं—मात्रिक और पण्डिक। मात्रिक छन्दों के आकार की गणना उसके अक्षरों से, जिरा मात्रा कहा जाता है की जाती है। मात्रा उच्चारण की उस ध्वनि का नाम है जिसमें एक स्वर हो और जो एक मूटके में जाती जाती है। व्यंजन की इसमें गणना नहीं की जाती। इस रबर की एक मात्रा और दीर्घ की दो मात्राएँ मान ली जाती हैं। इस प्रकार 'अम' शुद्ध तीन मात्राओं का मान आयेगा। अतएव इन छन्दों का यह है कि यहाँ अणु गुरु ध्वनियों के विन्यास का कोई नियम नहीं होता। कबल मात्राओं की गणना होती है। पण्डिक छन्दों में अणु गुरु ध्वनों के यथा स्थान विन्यास का नियम रहता है। वर्ण भी मात्रा के समान एक स्वर या व्यंजन सहित स्वर कहलें हैं। आदिक जागो में ध्वनों की गणना के लिये गणों की सुधारणा पद्धति बनाकर बड़ी सुविधा कर ली है। सोन ध्वनों का एक गण होता है और ये अणु गुरु के विपर्यय से हैं। उदाहरण के लिये 'कनारी' शुद्ध आदि में अणु तथा दो गुरु ध्वनों का यथास्थान व्यवस्था समूह है। मात्रिक छन्दों की अपेक्षा पण्डिक छन्दों की संख्या तब प्रयोग संस्कृत में अधिक हुए हैं।

संस्कृत छन्दों में मात्रा या वर्ण एक से लेकर अस्सी तक पद में होते हैं। एक छन्द में प्रायः चार पद रहते हैं। वे परस्पर समान भी होते हैं और भिन्न भी। पहली छठी पहले और तीसरे छठे दूसरे और चौथे आपस में समान हो जाते हैं। इस प्रकार छन्द

छन्द का जन्म तो साहित्य के साथ ही साथ हो जाता है। हमारे देश के साहित्य में उस पर शास्त्रीय विचार भी वैदिक-काल में ही प्रारम्भ हो गया था। ब्राह्म ऋतसूत्र तथा अलुङ्कमणी ग्रन्थों में छन्द विचार के पूरे पूरे अध्याय मिलते हैं। छन्द को वेदांग माना जाता है, ये उसके पाद हैं। 'छन्द यावौ ऋग्वेदस्य।' इसके सिमे पड़े विंगल का 'छन्द-सूत्र' प्रसिद्ध था। विंगल ऋषि माने जाते हैं और 'छन्द-सूत्र' ऋत ऋषि गृह्यसूत्रों का समसामयिक समन्वय करता है। कुछ लोग महर्षि परब्रह्म को भी विंगल बताते हैं पर वह निःसम्बिम्ब नहीं है। भरत ने असंगत छन्दों के महत्व का उल्लेख किया है। उनके विचार से सारा वाङ्मय छन्द है, 'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्।'।

विंगल

महर्षि विंगल संस्कृत के छन्द शास्त्र के इतिहास में सप्रमत्त आचार्य हैं। उनका ग्रन्थ 'छन्द-सूत्रम्' अपने विषय को पूर्ण और प्रौढ़ रचना है। यह अपने से पूर्व के दीर्घ कालीन विकास की सूचना देती है। यह करने को तो वेदांग है पर इसमें बियेचन लौकिक छन्दों का हो है। ऐसे छन्दों का मा. उल्लेख इसने किया गया है जो संस्कृत साहित्य की उपलब्ध राशि में कहीं प्रयोग में नहीं आते। 'सम्बन्ध' के उस समय जनपद साहित्य के छन्द रहे हों।

भरत

महर्षि विंगल के बाद आचार्य भरत आते हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में (अध्याय १४-१५) छन्दों का विचार किया है। वहाँ लौकिक और वैदिक दो प्रकार के छन्दों का उल्लेख हुआ है। छन्दों को संख्या ६६ है। आर्या छन्द पौष प्रकार का माना भरत का समय ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी माना जाता है।

भारह मिहिर

भारह मिहिर ज्योतिष के आचार्य थे। उनका प्रसिद्ध गृह्यसंहिता इसी विषय की रचना है। पर उसके १०४ वें अ. प्रसंगपर ६६ छन्दों का उल्लेख हुआ है। भारह मिहिर ईसा की छ. शताब्दी के विद्वान हैं।

अग्नि पुराण

इसके अनन्तर छन्दों का उल्लेख ७ वीं शताब्दी के अग्नि-पुराण में हुआ है। ई०पू० से लेकर ई०पू० तक ८ अध्यायों में पुराणकार ने छन्दों का विवेचन किया है, इसमें छन्दों का विभाजन, क्रम, तथा प्रतिपादन की शैली सब 'छन्द-सूत्र' के अनुसार हैं।

भुतबोध

भुतबोध इस विषय की छोटी पर महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास माने जाते हैं। किंवदन्ति है कि उन्होंने अपनी पत्नी लीलावती को छन्दों का ज्ञान कराने के लिये यह पुस्तिका लिखी थी। इस कल्पना का आधार पुस्तक की सरस शृंगार प्रधान शैली तथा बार बार प्रियतमा के लिये कहे गये प्रेमप्रणय संशोचन हैं। लच्छन और उदाहरण एक ही पद्य में आ जाते हैं क्योंकि जिस छन्द का लक्षण किया जाता है वह वही छन्द में होता है। यति के विषय में प्रत्येक विशेष सावधान है। रचना बड़ी विशद एवं सरस शैली में लिखी गई है। यह शास्त्र होते हुए भी काव्य है। जेमेन्द्र के शास्त्र काव्य का यह ठीक उदाहरण है।

जेमेन्द्र

इसके बाद आचार्य जेमेन्द्र आते हैं। उनकी रचना 'सुपुत्र विसृज्य' आकार में बहुत बड़ी नहीं है। इसमें कुल १२४ कारिकाएँ हैं जो तीन विन्यासों में विभक्त हैं। इन्हीं में छन्दों का स्वरूप परीक्षण, गुण दोष विवेचन तथा प्रयोग का विचार किया गया है। लेकिन छन्दों की भिन्न समस्याओं को इसमें उगाया गया है और उन पर जिस ढंग से विचारणा हुई है वह सब बड़े महत्व का है। पहले आचार्यों ने छन्द विचार करते समय उनके लक्षण और उदाहरण ही विस्तार से दिये थे। यह प्रतिपादन रूप में है और स्पष्ट भी। जेमेन्द्र का विचार बड़ा सूक्ष्म और भावुकता पूर्ण है। उन्होंने छन्दों के गुण दोष तथा प्रयोग-विषय पर भी बड़ा विशद विचार उपस्थित किया है। छन्द विमर्श की यह गई दिशा उन्होंने खोजी है। जेमेन्द्र की सूर्यवेमुली व्यावहारिक प्रथमा ही इसे पहचान सकती तथा इस पर चिन्तन उपस्थित कर सकती। उनसे बाद के आचार्य इनके मार्ग पर चलने तक का आह्वान न प्राप्त कर सके। इतनी सूक्ष्मता इस में है।

छन्द का जन्म तो साहित्य के साथ ही साथ हो जाता है। हमारे देश के साहित्य में उस पर शास्त्रीय विचार भी वैदिक-काल में ही प्रारम्भ हो गया था। प्राज्ञ भौतसूत्र तथा अनुक्रमणी ग्रन्थों में छन्द विचार के पूरे पूरे अभ्यास मिलते हैं। छन्द को वंदाग माना जाता है, वे उसके पाद हैं। 'छन्द पादो तु वेदस्य।' इसके अग्रे पहले विंगल का 'छन्द-सूत्र' प्रसिद्ध था। विंगल 'अपि माने जाते हैं और छन्द-सूत्र' भौतस्य गृह्यसूत्रों का समवर्तमानिक समस्त जाता है। कुछ लोग महर्षि परब्रह्म का भी विंगल बताते हैं पर यह निःसम्भ्रम नहीं है। भरत ने प्रसंगगत छन्दों के महत्व का उल्लेख किया है। उनके विचार से सारा वाक्स्य छन्द है, 'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्।'।

विंगल

महर्षि विंगल संस्कृत के छन्द शास्त्र के इतिहास में सप्रथम आचार्य हैं। उनका ग्रन्थ 'छन्द सूत्रम्' अपने विषय को पूर्ण और ग्रीव रचना है। यह अपने से पूर्व के दीर्घ काशीन विंगल की सुचना देती है। यह कहने को तो वेदांग है पर इसमें विवेचन शौकिक छन्दों का ही है। ऐसे छन्द का भा. उल्लेख इसमें किया गया है जो संस्कृत साहित्य की उपलब्ध राशि में कही प्रयोग में नहीं आते। 'सम्भव' वे उस समय अनपद साहित्य के छन्द रहें।

भरत

महर्षि विंगल के बाद आचार्य भरत आते हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में (अध्याय १४-१५) छन्दों का विचार किया है। यहाँ शौकिक और वैदिक दो प्रकार के छन्दों का उल्लेख हुआ है। छन्दों की संख्या ६८ है। आठों छन्द पाँच प्रकार का माना है। भरत का समय ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी माना जाता है।

दाराह मिहिर

दाराह मिहिर ज्योतिष के आचार्य थे। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्संहिता इसी विषय की रचना है। पर उसके १०४ में अध्याय में प्रसंगवश ६१ छन्दों का उल्लेख हुआ है। दाराह मिहिर ईसा की छठी शताब्दी के विद्वान हैं।

अग्नि पुराण

इसके अनन्तर छन्दों का उल्लेख ७ वीं शताब्दी के अग्नि पुराण में हुआ है १०८ से लेकर १३५ तक ८ अध्यायों में पुराणकार ने छन्दों का विवेचन किया है इसमें छन्दों का विभाजन, क्रम, तथा प्रतिपादन की शैली सब 'जन्द-सूत्र' के अनुसार है।

भुतबोध

भुतबोध इस विषय की छोटी पर महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता महाकवि काश्मिरास मने जाते हैं। किंबदन्त है कि उन्होंने अपनी पत्नी लीलावती को छन्दों का ज्ञान कराने के लिये यह पुस्तिका लिखी थी। इस कल्पना का आधार पुस्तक की सरस शृंगार प्रधान शैली तथा बार बार प्रियसमा के लिये कहे गये प्रेमप्रवण संशोधन हैं। सद्यस और उदाहरण एक ही पद्य में आ जाते हैं क्योंकि जिस छन्द का सद्यस किया जाता है वह वही छन्द में होता है। पति के विषय में प्रशंसा विशेष साधधान है। रचना बड़ी विराट् पद्य सरस शैली में मिली गई है। यह शास्त्र होते हुए भी काव्य है। हेमेन्द्र के शास्त्र काव्य का यह ठीक उदाहरण है।

हेमेन्द्र

इसके बाद आचार्य हेमेन्द्र आते हैं। उनकी रचना 'सुबुध तिलक' आकार में बहुत बड़ी नहीं है। इसमें कुल १२४ कारिकाएँ हैं जो तीन विन्यासों में विभक्त हैं। इन्हीं में छन्दों का स्वरूप परचम, गुण दोष विवेचन तथा प्रयोग का विचार किया गया है। लेकिन छन्दों की बिना समस्याओं को इसमें उग्राया गया है और उन पर जिस ढंग से विचारणा हुई है वह सब बड़े महत्त्व का है। पहले आचार्यों ने छन्द विचार करते समय उनके सद्यस और उदाहरण दो दिशाएँ हैं। यह प्रतिपादन रूढ़ भी है और स्थूल भी। हेमेन्द्र का विचार बड़ा सूक्ष्म और मायुक्ता पूर्ण है। उन्होंने छन्दों के गुण दोष तथा प्रयोग विषय पर भी बड़ा विराट् विचार उपस्थित किया है। छन्द विमर्श की यह नई दिशा उन्होंने जोड़ी है। हेमेन्द्र की सर्वतोमुखी व्यावहारिक प्रवृत्ति ही इसे पट्टपान सकी तथा इस पर बिम्बित उपस्थित कर सभी जनम बाद क आचार्य इनके मार्ग पर चलने तक का आदर म प्राप्त कर सके। इतनी सूक्ष्मता इस में है।

छन्द का जन्म तो साहित्य के साथ ही साथ हो जाता है। हमारे देश के साहित्य में उस पर शास्त्रीय विचार भी वैदिक-काल में ही प्रारम्भ हो गया था। प्राचीन गीतसूत्र तथा अनुक्रमणी ग्रन्थों में छन्द विचार के पूरे पूरे अध्याय मिलते हैं। छन्द को वेदांग माना जाता है, ये उसके पाद हैं। 'छन्द पादो नु वेदस्य।' इसके अन्तर्गत पिङ्गल का 'छन्द-सूत्र' प्रसिद्ध था। पिङ्गल ऋषि माने जाते हैं और 'छन्द-सूत्र' गीत एवं गृह्यसूत्रों का समसामयिक समग्र भाग है। कुछ लोग महर्षि पराशर को भी पिङ्गल बताते हैं पर यह निःसन्देह नहीं है। भरत ने प्रसंगत छन्दों के महत्व का उल्लेख किया है। उनके विचार से सारा पादमय छन्द है, 'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्।'।

पिङ्गल

महर्षि पिङ्गल संस्कृत के छन्द शास्त्र के इतिहास में सद्यप्रथम आचार्य हैं। उनका ग्रन्थ 'छन्दः सूत्रम्' अपने विषय को पूर्ण और मौल्य रखता है। यह अपने से पूर्व के शीर्ष काशीन विकास की सूचना देती है। यह करने को तो वेदांग है पर इसमें विवेचन लौकिक छन्दों का हो है। ऐसे छन्दों का मा. उल्लेख इसमें किया गया है जो संस्कृत साहित्य की उपलब्ध शक्ति में कहीं प्रयोग में नहीं आते ? संभवतः वे उस समय जनपद साहित्य के छन्द रहे हों।

भरत

महर्षि पिङ्गल के बाद आचार्य भरत आते हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में (अध्याय १४-१८) छन्दों का विचार किया है। वहाँ लौकिक और वैदिक दो प्रकार के छन्दों का उल्लेख हुआ है। छन्दों की संख्या ६८ है। आर्षा छन्द पौनःप्रकार का नाम है। भरत का समय ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी माना जाता है।

भारह मिहिर

भारह मिहिर ज्योतिष के आचार्य थे। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ ब्रह्मसंहिता इसी विषय की रचना है। पर उसके १०४ वें अध्याय में प्रसंगवश ६३ छन्दों का उल्लेख हुआ है। भारह मिहिर ईसा की छठी शताब्दी के विद्वान हैं।

अग्नि पुराण

इसके अनन्तर छन्दों का उल्लेख ७ वीं शताब्दी के अग्नि पुराण में हुआ है। ११८ से लेकर ३३५ तक ८ अध्यायों में पुराणकार ने छन्दों का विवेचन किया है, इसमें छन्दों का विभाजन, क्रम, तथा प्रतिपादन की शैली सब 'छन्द-सूत्र' के अनुसार हैं।

भुतबाण

भुतबोध इस विषय की छोटी पर महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास मने जाते हैं। किंबदन्त है कि उन्होंने अपनी पत्नी लीलावती को छन्दों का ज्ञान कराने के लिये यह पुस्तिका लिखी थी। इस कल्पना का आधार पुस्तक की सरस शृंगार प्रधान शैली तथा बार बार प्रियतमा के लिये कहे गये प्रेमप्रणय संशोधन हैं। लक्षण और वृत्ताहरण एक ही पद्य में आ जाते हैं क्योंकि जिस छन्द का लक्षण किया जाता है वह उही छन्द में होता है। यति के विषय में प्रत्येक विशेष सावधान है। रचना बड़ी विराट् एवं सरस शैली में लिखी गई है। यह शास्त्र होते हुए भी काव्य है। जेमेन्द्र के शास्त्र काव्य का यह ठीक वृत्ताहरण है।

जेमेन्द्र

इसके बाद आचार्य जेमेन्द्र आते हैं। उनकी रचना 'सुवृत्त विलोक' आकार में बहुत बड़ी नहीं है। इसमें कुल १२४ कारिकाएँ हैं जो तीन विभागों में विभक्त हैं। इन्हीं में छन्दों का स्वस्व परिचय, गुण दोष विवेचन तथा प्रयोग का विचार किया गया है। लेकिन छन्दों की जिन समस्याओं को इसमें जगाया गया है और उन पर जिस ढंग से विचारणा हुई है वह सपत्ने महत्त्व का है। पहले आचार्यों ने छन्द विचार करते समय उनके लक्षण और वृत्ताहरण ही धिखाये हैं। यह प्रतिपादन सत्य भी है और स्पष्ट भी। जेमेन्द्र का विचार यदा सूक्ष्म और मायुक्तता पूर्ण है। उन्होंने छन्दों के गुण दोष तथा प्रयोग पर भी यदा विशद विचार व्यक्त किया है। छन्द विमर्श की यह नई दिशा उन्होंने खोली है। जेमेन्द्र की सर्वतोमुखी व्यावहारिक प्रवृत्ति ही हम पहचान नहीं तथा इस पर विचिन उपस्थित कर सही उनसे बाद के आचार्य इनके मार्ग पर चलने तक का साहस न प्राप्त कर सके। इतनी सूक्ष्मता इस में है।

प्रथम की योजना इस प्रकार है। इसमें कुल तीन विन्यास हैं। पहले विन्यास में २७ छंदों के लक्षण तथा आदाहरण दिये हैं। केवल एक को छोड़कर सभी आदाहरण कवि के अपने हैं। छंदों का चुनाव व्यावहारिक दृष्टि से हुआ है। जिनका कवि आसानी से प्रयोग करते हैं उन्हीं पर विचार हुआ है। इनमें ६ अक्षरों वाले छंदों से लेकर २१ अक्षरों के छंदों तक का आलेख है। प्रथम विन्यास के अन्त में कवि ने स्पष्ट कहा है कि प्रचुर पद्य रचिर छंदों का यह वर्णन इस लिये किया गया है कि ये ही अपेक्षाकृत अधिक सरल हैं, सब प्रकार के काव्यों में इनका प्रयोग होता है। ये ही सुकविगणों के परिचित हैं। ये ही वर्ण दिये हैं। इनमें परुष वर्ण विषम मात्रा तथा दुष्ट विराम आदि कुछ नहीं हैं। इन्हीं का विचार निम्नासुओं के लिये हितकारक हो सकता है।

इति सरल तरवात् सर्गकाव्योऽवतरात्,
सुकवि परिचितरात् कीर्तक्यामृतस्यात्।
परुष विषम मात्रा दुर्विरामोष्मिष्ठेयम्,
प्रचुर रचिर पृथक् व्यक्तिरुक्तं द्वितीयम्।

दूसरा विन्यास छंदों के गुण दोष विवेचन का है। इस प्रसंग में छंद से लेकर वस अक्षरों तक के पाँच छंदों को कव्य के अनुपपुक्त समझकर उन्हीं को छोड़ दिया है। जैसे माछड़ी की बालछड़ी की नोक पर मौरी नहीं बैठ सकती, वसी प्रकार ऐसे छोटे छंदों पर कव्य भारती बिभाज नहीं करती।

स पट्ट सप्ताक्षरे पृष्ठे विमान्धति सरावती।
यु गीज मल्लिकार्जुन बाल रुक्मिका कोटि सक्ते ॥

दूसरे विन्यास में छंदों का गुण दोष विवेचन किया गया है। यह सामान्य और विशेष दो प्रकार से हुआ है। सामान्य रूप से छंदों के विषय में चेमेन्द्र का विचार है कि गंभीर साहित्य छोटे छंदों में नहीं लिखा जाना चाहिये। वस एक अक्षरों के पाद वाले छंद इनकी दृष्टि में छोटे हो हैं। छोटे छंदों में गति प्रायः द्रुत तथा बड़े छंदों में विलंबित होती है। इसलिये छोटे छंदों में समस्त उबावों में अमरस शब्दों का प्रयोग होना चाहिये। अवसरवश इसमें अपवाद भी किये जा सकते हैं पर सामान्य नियम यही है।

छंदों की समीक्षा में मारम्भ के पार छंद छोड़कर अनुपपुक्त से लेकर वस सभी छंदों पर विचार किया है जिनके लक्षण पहले

विन्यास में दिये गये हैं। समीक्षा में तीन बातों का ध्यान रखा गया है गति, विग्रह और विषय। इनमें जो पहले दो तर्कों को प्रमुखता दी है। इन दृष्टियों से ज्ञानों में शब्द योजना का सुझाव कवि से दिया है। तीसरा तर्क विषय आगे तीसरे विन्यास में विशेषित हुआ है। अच्छा होता यदि वह दूसरा विन्यास बनता और दूसरा उसके बाद आता। इससे समीक्षा का आधार स्पष्ट हो जाता। किस छन्द में कसी गति होनी चाहिये—इसका संकेत छन्दों के नामों में मिला है। इत्यादिक के लिये 'शाकुन्तलिका' छन्द किया जाय। इस शब्द का अर्थ है 'शेर की कोठा'। हमसे संकेत मिलता है कि इस छन्द में सिंह की कोठा की सो मस्त गंभीर गति होनी चाहिये। वह समस्त और ऊर्जस्वित हो। प्रारम्भ में साधारण पर उत्तरोत्तर ऊर्ध्व प्रपान होनी चाहिये। इस प्रेरणा से आचार्य का सुझाव है कि इसका प्रारम्भ 'आ' ज्वनि वाले अक्षर से और अवसान विसर्गो वाले शब्द से होना चाहिये। प्रारम्भ के पदों में इच्छी असमस्त मापा और उत्तरार्ध में समानों का मारापन लिये हुये हो। मध्य में 'ओ' ज्वनि नहीं होनी चाहिये। इससे छन्द का लय बढ़ती उतरती सी है। उसके समता क्षुप्त हो जाती है। अपनी बात की पुष्टि में भवभूति का एक बड़ा अच्छा पद्य उदाहरत किया है। रायण को समा में इनुमान करते हैं कि 'हे रायण यदि अज्ञान से अथवा प्रभुता के चर्मह में तुमने मीठा का इरण हमारी पीठ पीछे कर लिया है तो अब उन्हें छोड़ दो। अभी तो बात मेरे हाथ में है। नहीं तो ज्वमण के उच्छ्रिते उपरक समे पायों से अब विशाई हैं आयेगी तो तुम पुनः सहित नन्ही की छाया में मृत्युशोक को जाओगे।'।

अज्ञानाद् भाव वाचिपरमसाहस्यराक्षसा,
सीतेष्व प्रतिमुष्यतां राठ, मरुपुत्रस्य हस्तेऽमुना।
नो चेत्कश्चिदपि मुक्त मार्गसमाप्त्येवाप्युक्ततच्छोषित,
अथवा द्रिगन्त मन्तकपुरं पुनैर्द्विषो वास्पसि ॥

इस पद्य में भाव और ज्ञान दोनों की दृष्टि से शब्द योजना ठीक है। पूर्वार्ध में समानास दिखाया गया है उत्तरार्ध में श्लेष। उसी के अनुसार पहले असमस्त इच्छी मापा और बाद में समानों को गौरवपूर्ण मापा व्यवहृत हुए हैं। छन्द की भी यही माग है। इसी रीति से ज्ञानों की समीक्षा हुई है।

विन्यास की समाप्ति पर बताया गया है कि समीक्षा में गुण दोषों का विवेचन आत्यन्त सूक्ष्म है। यह सूक्ष्म एवम् कोमल प्रतिभा वाले व्यक्तियों के ही अनुभव की वस्तु है। विविध रूप बाह्य वाणी के गुण अलग गुण जा लाग जानते हैं, वापों के आत्यन्त सूक्ष्म रूप को भी जो अनुभव कर लेते हैं वही लोग इस विवेचन को ठीक ठीक समझ सकेंगे।

तीसरे विन्यास में बर्च विषय की अपेक्षा से दुग्धों का विवेचन किया गया है। किस विषय अथवा किस भाव के लिये कौन सा दुग्ध प्रयुक्त करना चाहिए यह इसका विवेच्य विषय है। इस संबन्ध में भी उन्होंने कुछ तो साधारण नियम बताये हैं और कुछ विशेष। साधारण नियम इस प्रकार हैं—

कविता चार प्रकार की हो सकती है।

१—शास्त्र

२—काव्य

३—शास्त्र काव्य

४—काव्य शास्त्र

शास्त्र से तात्पर्य उन ग्रन्थों का है जिनमें काव्य के अंग उपांगों के स्वरूप तथा गुण दोषों का विवेचन किया जाता है जैसे काव्य प्रकाश, साहित्य वर्ण्य आदि। इसका अर्थ अधिक न अधिक स्पष्ट हो सभी पाठकों का उपकार हो सकता है। अर्थ की स्पष्टता अनुष्टुप छन्द से अधिक आती है अतः शास्त्र के लिये अनुष्टुप छन्द उपयुक्त है।

काव्य में विशिष्ट प्रकार के शब्द और अर्थ का अलंकारों के साथ मेल होता है। उसमें रस और वर्णन के अनुरूप सब प्रकार के छंदों का यथा स्थान प्रयोग करना चाहिए।

शास्त्र काव्य यह है जिनका रूप तो इतिवृत्तामरक पर विषय काव्य के समान रहे। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्वर्ग का वर्णन उपदेशात्मक पद्धति से होता है। इसमें भी बड़े बड़े छंदों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

काव्य शास्त्र इससे विपरीत होता है। यह रूप में तो कश्चित् एवम् अलंकार युक्त होता है पर प्रतिपाद्य विषय शास्त्रों का सा रूप होता है। अतः इसमें महिकाव्य तथा भौमिक काव्य इसके उदाहरण

है। मौलिक काव्य काश्मीर में खिलता गया था महुि काव्य आज भी पठन पाठन में आता है। इससे व्याकरण साहित्य आदि विषयों की शिक्षा अखिल शैली में राम की कथा के सहारे हो गई है। कि वहन्ती है कि कमी पढ़ाये समय। बन्ती गुरु और शिष्यों के मध्य से निकल गई थी। इसलिये एक वर्ष का अध्ययन करना पड़ा। गुरु ने फिर रामकथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया और उसी में वह सब कुछ पढ़ा गये जो उन्हें पढ़ाना था। इसमें छन्दों का प्रयोग विभिन्न रसों के अनुसार किया जाता है। केवल की कवि प्रिया, रसिक प्रिया आदि काव्य शास्त्र ही हैं।

बीषा प्रकार शुद्ध साहित्य का है। इसमें विशिष्ट शब्द और अर्थ का मेल अलंकार युक्त शैली में किया जाता है। छन्दों का प्रयोग इसमें रस और वर्णन के अनुकूल होता है। इस आनुसम्भ को स्पष्ट करने के लिये चेमेन्द्र ने पंद्रह छन्दों के विषय और भाव का जलोज किया है। वह इस प्रकार है।

- १—अनुष्टुप—शमादिका उपदेश
- २—अपजाति—शृ गार के आलंकार उचीपन
- ३—रसप्रता—चन्द्रोदय आदि श गार-उचीपन।
- ४—यशस्व—जीति
- ५—वसंततिलका—वीर तथा रौद्ररस का मिश्रण
- ६—माहिनी—सर्ग के अन्त में।
- ७—शिक्षारिणी—युक्तियों द्वारा वस्तुओं में भेद प्रदर्शन।
- ८—दरिणी—उदारता, औचित्य आदि।
- ९—पृथ्वी—आक्षेप, काप, भिन्नकार आदि।
- १०—संदाक्रांता—वर्णों, विभाग का व्यवसाय आदि।
- ११—शाब्दसाधिकीहित—शीघ्र वर्णन।
- १२—साधरा—पवन आदि का वेग वर्णन।
- १३—बोधक, लोटक तथा नकुट—मुक्तक शैली के सूक्त।

यह चेमेन्द्र का सविशेष विचार है। साधारण रूप से अपना मतभ्य उन्होंने इस प्रकार दिया है।

सिद्ध हस्त कवियों के हाथ में पड़ कर सभी छन्द योग्य बन जाते हैं। गोमह के समाम के समय विराट पुत्र के साधारण अरब भी अशुभ के हाथों में आकर विशेष बन गये थे। फिर भी अक्षर्या

और भावों के अनुसूच को छन्दों का प्रयोग होता यह विशेष लक्ष्य धर्यन करता है।

यदि कोई व्यक्ति कमर की मेखला गले में पहन ले तो बससे पहनने वाले की अज्ञता ही प्रकट होगी। जिस प्रकार मनुष्य की योग्य वृद्ध पुरुष नहीं हो सकता उसी प्रकार सरस भावों के बिना छन्द तथा उसके भावों के बिना सरस छन्द अनुपयुक्त होते हैं।

जब जब महा कवियों ने यद्यपि अनेक छन्दों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है फिर भी उनकी सिद्ध किसी विशेष छन्द में ही रही है। कवियों का अधिक प्रयोग अपने सिद्ध छन्द का ही करना चाहिये। इस विषय में संस्कृत के कुछ कवियों के नाम लिखे जा सकते हैं। जैसे—

विद्याधर—अनुष्टुप

पाणिनि—उपजाति

भारवि—अश्वत्थ

रमाकर—वसंतविरहका

मन्मथ—शालग्राम

कालिदास—अश्वत्थ

राजशेखर—अश्वत्थ

कवर का छन्दों का प्रयोग बार-बार बिगड़न किया है वह प्रायिक सम्भवा चाहिये। कवियों का अपने अन्तर्गत छन्द का ही प्रयोग करना चाहिये। जिसके यश में वाणी नहीं जाती वे यदि बार-बार छन्द बदलते हैं तो प्रबन्ध बिगड़ जाता है। सिद्ध कवोरवर सब प्रकार से सफलता ल लेते हैं। हिन्दी में केशव और तुलसी इसके उदाहरण हैं। केशव ने रामचरित में छन्दों को शीघ्र-शीघ्र किया है। इससे रसका संतान कभी नहीं भंगता। तुलसी छन्दों का यथास्थान सफलता से प्रयोग किया है। छन्द में विशेष सफलता प्राप्त करने वालों में विहारी, भर्मा आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

लेमन्त्र—अनुष्टुप विमर्श से कुछ साधारण
जा सकते हैं या इस प्रकार है—

१—संस्कृत शब्दों के प्रभाव गति आदि का संकेत उनके नामों में रहता है जैसे मैत्रायाता, वृत्त-विस्तीर्णता, शार्दूलविक्रीडित आदि। जेमेन्ड ने अपने सुमन्त्रों का आधार इन्हीं संकेतों को बनाया है।

२—शब्दों के लक्षणों में गति का संकेत प्रायः रहता है। पर इसके अतिरिक्त भी कथ में अनेक छोटे छोटे विभाम रहते हैं जो लक्षणों में नहीं दिये जाते और बिम्बा परिचय प्रतिमाशील व्यक्ति हो कर पाते हैं। ये विभाम स्वभावतः एक शब्द के पूरा हो जाने पर आते हैं। समास हो जाने से अनेक शब्दों का एक शब्द बन जाता है और शब्द का विभाम लुप्त हो जाता है। समस्त पद में, इसी लिये गति वृत्त हो जाती है। जेमेन्ड ने जो शब्दों के प्रयोग से समासों का बिम्ब-नियेष किया है वह इसी दृष्टि से किया है। पृथ्वी शब्द की गति बिस्तृत होती है—जैसा कि उसके नाम से व्यक्त होता है। असमस्त पदों से उसका स्वरूप ठीक रहता है। समासों से वो वह संकुचित सी हो जाती है।

३—हृदय भावों के प्रभाव में संकोच विस्तार, शीघ्रता, मंदता, आरोह अवरोह आदि का अनुभव किया करता है। ये ही प्रभाव मापा में लय एवं ध्वनियों की विशेष योजना द्वारा भी उत्पन्न किये जा सकते हैं। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर शब्दों और उनके लक्षणों की पारस्परिक उपयुक्तता का निर्यय करना चाहिये। जिस प्रभाव का भाव हो उसी प्रभाव की लय बाँट। ऊँच उसके लिये प्रयुक्त होना चाहिये। मापा में ध्वनियों भी इसी प्रभाव की हों, इस प्रकार शब्द, भाव और मापा की त्रयी एक रूप हो जाती है। जेमेन्ड ने 'आ' ध्वनि में विस्तार और विसर्ग ध्वनि में हृत्त आरोह का अनुभव किया है। शार्दूलविक्रीडित शब्द के विषय में कवि का विचार है कि इसके धातु का आदि अक्षर 'आ' तथा अन्त्य अक्षर विसर्ग होने चाहिये। तभी ऊँच उर्ध्व स्विच बन सकेगा। इसी प्रकार माहिनी शब्द में आरोह होता है। इसीलिये उसका में सुगन्ध प्रयाग किया जाता है। इस-५ विसर्गों से हीन शब्द हो तो वह पुष्कटी समरी गौ की भाँति रोमा हीन बन जाती है।

४—भाषा में गति तथा विग्रह पैदा कर छन्द का स्वभाव बढ़ता जा सकता है। यदि गति के छन्द में यदि स्वरित गति की भाषा प्रयुक्त हो तो वह स्वरित प्रमाण वाले भाष का वाहन बन सकता है।

५—छोटे छन्दों में समस्त तथा बड़े छन्दों में असमस्त शब्दों का प्रयोग उपयुक्त होता है। ऐसा करने से इत और विलम्बित गति का क्रमरा उद्घाटन हो जाता है।

६—छन्द का निर्वाचन भाष तथा भाषा की दृष्टि से आवश्यक है पर यद्य पूर्वक अन्यस्त छन्द को छोड़कर अनन्यस्त का प्रयोग करने से अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।

७—काव्य के चारों की समीक्षा का आधार औचित्य होना चाहिये। इसके अविरलित अन्य कोई कठोर नियम आधार नहीं बन सकता। औचित्य आपेक्षिक तत्व है अतएव परिस्थिति के अनुसार बदलता बदलता रहता है।

चेमेन्द्र के बाद चार आचार्य और हैं जिन्होंने छन्दों का स्वतन्त्र विचार किया है। बारहवीं शताब्दी के हेमचन्द्र ने इस विषय पर छन्दोनुशासन लिखा है जिसमें प्रतिपादन शैली की सुवमता विरोध बख्खेखनीय गुण हैं।

दूसरा केदारमह का पुत्र रत्नाकर है जो क्षत्रवर्ग में बड़ा प्रसिद्ध है। इस पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। प्रतिपादन की शैली हेमचन्द्र के अनुसार है। विमानन में प्रवक्तार की सतर्क बुद्धि के दर्शन होते हैं। अनुमानतः यह ग्रन्थ चौदहवीं शताब्दी का है।

चौदहवीं शताब्दी में गंगादास ने इस विषय पर छन्दोर्मन्त्री ग्रन्थ लिखा। यह भी प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण करता है। विवेचना आदि की कोई अन्वष्टति इसमें नहीं दीख पड़ती।

सबसे बाद में 'बाप्पी भूपाल' के रचयिता रामोदर भाते हैं। उन्होंने छन्द पर यह ही अध्यायों की छोटी पुस्तक लिखी है जो किन्हीं नवीन विरोधता के अभाव में पारंपरिक है।

मूल्यांकन

सेमेन्ट का 'सुवृष्ट तिलक' कलेवर में छोटी रचना है पर इसका विषय व्यापक है। प्रतिपादन गंभीर है और सभ्यता उपयोगी है। दूसरे आचार्यों की भाँति सेमेन्ट छन्दों के लक्ष्य लक्ष्य बिना ही संतुष्ट नहीं होते। वे उनके गुण दोषों का विवेचन करते हैं उनके प्रयोग के स्वभाव का निर्धारण करते हैं। दूसरों की भाँति वे आवश्यक अनावश्यक सभी छन्दों का संग्रह भी नहीं करते। जिनका काव्यों में प्रचुरता से प्रयोग मिलता है उन्हीं पर अपनी प्रतिमा का प्रयोग करते हैं। इससे उनकी व्यावहारिकता का परिचय मिलता है।

इनके छन्द विचार में अंतर्गामीनी भावुकता व्यापक अध्ययन और संतुलित विवेक के वरान होते हैं। सेमेन्ट ने जा कार्य छन्दों के क्षेत्र में किया है वह इतना कठिन है कि वाग के लोग इनका मार्ग अनुसरण भी न कर सके। जन्माचार्यों के वन में सेमेन्ट अकेले ही साल वृक्ष की भाँति सबने ऊपर दिखाइ देते हैं। 'सुवृष्ट तिलक' की शैली भी साहित्यिक सरस है। गुण दोषों के विवेचन में उपमाओं की योजना विषय को अत्यन्त प्रष्ट एवं सरस बना देती है।

इसमें उनकी आलोचना की अमूर्तता और व्यावहारिक विवेक का तो साक्ष्य मिलता ही है। इसके अतिरिक्त दृष्टि की उदारता भी प्रतीति लक्षित होती है। वे अपनी मान्यताओं में कठोर नहीं हैं। छन्दों के विषय गिनाकर अन्त में मित्र-भाब से उद्गोने सफाई ही है कि समर्थ कवि अपने अत्यन्त छन्दों का समय अधिक प्रयोग करें और तुम्हें कवि इसमें अपना पय निर्देश हों। यह कथन सहायक है एक मात्र आशा नहीं।

भाग २

मूलानुवाद

१—श्रौचित्य विचार चर्चा

मंगल—बिम्बोंने शत्रु को ठगने में अपनी दृष्टि को बचन से मैत्री बना लिया था उस परम औचित्यकारी भगवान विष्णु को प्रणाम है।

प्रस्तावना—हेमचन्द्र 'कवि कर्णिका' नाम की रचना में काव्य के अलंकारों का वर्णन कर तथा विद्वानों के हर्ष के लिए उसके गुण दोषों का भी विवेचन कर काव्यानुभूति में समत्कार के हेतु और रस के जीवित औचित्य तत्त्व का अर्थ विचार करते हैं।

आवश्यकता—यदि काव्य में बढ़ने पर भी औचित्य के दर्शन न हों तो उसके अलंकार एवं गुणों की मिथ्या गणना निरर्थक है। अलंकार अलंकार ही हैं और गुण भी गुण हैं। रस-विद्य काव्य का स्थिर जीवित तो औचित्य है।

काव्य एक दूसरे का उपकार करने वाले शब्दों और अर्थों का समुच्चय रूप है। उसमें अप्पमा, क्लेशा आदि जो प्रचुर अलंकार हैं वे कटक, कुण्डल केयूर, हार आदि के समान केवल बाह्य शोभा के हेतु होते हैं। इसी प्रकार कुछ अक्षयप्रचुर श्लोकों ने काव्य के गुणों की रस के प्रसंग में गणना की है पर वे भी अस्थिर होते हैं जैसे अत, सत्य, शीघ्र आदि मानवीय गुण। औचित्य तो, जैसा कि इसका आगे अर्थ किया जायेगा काव्य का स्थिर अपिचरित औचित्य है। इसके बिना काव्य निर्जीव है मले ही वह गुण अलंकारों से युक्त हो। गृह्यारादि रसों से भरपूर काव्य का औचित्य जैसे ही जीवित है जैसे रसायनों द्वारा परिपुष्ट व्यक्ति के लिए खेवनीय रस की मात्रा का चपित होना औचित्य होता है।

इसी बात को विरोध रूप में यों कहा जा सकता है कि —

(६) **कारिका**—अलंकार सभी अलंकार होते हैं जब उनका विम्यास अहित स्थान पर हो। गुण भी यदि औचित्य से अयुक्त नहीं हैं तो गुण होते हैं।

वृत्ति—अलंकार सभी शोभा बढ़ाने में समर्थ होते हैं जब उनका विम्यास अहित स्थान पर हो। नहीं तो वे केवल नाम के अलंकार

रह जाते हैं। इसी प्रकार औचित्य से युक्त गुण गुणवा प्राप्त करते हैं
जनों के अगुण ही हैं। जैसे किसी ने कहा है कि—

‘कण्ठ में मेलका, कटि में शंखझर, हाथों में नूपुर और पैरों
में केयूर पहने से; (तथा)

शौर्य से मुझे राहु पर कल्याण करने से कौन व्यक्ति बचाव
भीष नहीं हो जाते। औचित्य के बिना न बालकभर रुचिरता
होते हैं न गुण।

सुझाव—यह औचित्य है क्या ?

(७) का०—जो जिसके योग्य है आचार्य लोग उसे उचित कहते हैं।
जसका भाव औचित्य है।

वृ०—जो जिसके अनुकूल हो वह उचित कहा जाता है। उसी के
भाव को औचित्य कहते हैं।

औचित्य के स्थान—जब काव्य के समस्त शरीर में जीवनमूल
औचित्य की स्थिति यथान रूप से कहीं-कहीं होती है—यह विलापा
जाता है।

(८-१०) का०—(१) पद (२) वाक्य, (३) प्रबन्धार्थ, (४) गुण, (५)
आसंकार, (६) रस, (७) क्रिया, (८) कारण, (९) किंता, (१०) पक्षम,
(११) विरोध (१२) उपसर्ग, (१३) निपात, (१४) काव्य, (१५) देश,
(१६) काल, (१७) अर्थ, (१८) तत्त्व, (१९) सत्त्व (२०) अभिप्राय, (२१)
स्वभाव (२२) सारसंग्रह, (२३) प्रतिमा, (२४) अवस्था, (२५) विचार,
(२६) मर्म (२७) आशीर्षचन तथा (२८) अन्य काव्यांगों में औचित्य
जीयः को से उपाय रहता है।

वृ०—पद आदि काव्य के मर्मत्वाम हैं। औचित्य जीयित घमक
इस सब में व्याप्त रहता है। जसकी स्फुरणा स्पष्ट प्रतीत होती है। इनके
उदाहरण कमरा इस प्रकार हैं —

१—पद में औचित्य—

(११) का०—सूक्ति में किसी विशेष पद का उचित प्रयोग इस प्रकार
शोभाकर होता है जैसे अश्वमुक्ती शुक्ती के मस्तक पर कलूरी का
तथा श्यामी के मस्तक पर चंदन का तिक्त। जैसे —

‘दे देव, युद्ध के समय तुम्हारी इस लङ्कापात में राहुओं के कुस
हृष गण—इस प्रकार की भरीसा मङ्गल’ जम्हियों से सुन कप

मोक्षी गुर्जर-भरेश की पत्नी जंगल में चकित होकर जल की धारा से पति के कृपाय की ओर देखती है। (परिमल कवि)

यहाँ 'मोक्षी' शब्द से अर्थ के औचित्य का चमत्कार छपन्न होता है और गौराङ्गो के मुख पर श्याम तथा श्यामा के मुख पर गौर तिलक की भाँति एक बिजबल्य दिव्यदृष्टि उससे अनुभूत होती है।

नीचे लिखे पद्य में यह नहीं है।

'सौन्दर्य रूपी घम के व्यय का कुछ विचार नहीं किया;
महाप्र क्लेश स्वीकारा; स्वच्छन्द और मुक्त से रहने वाले
झोंगी को चिन्ता का बर उलपन्न किया। यह पेचारी भी
सौम्य पति के अमाय में चुली है। बिघाटा मे इस तन्वी को
जग्म देने में क्या प्रयोजन सोचा था ?

(धर्मकीर्ति)

यहाँ 'तन्वी' शब्द केवल अनुप्रास सोम से (तन्व्यास्तनु-तन्वता) प्रयुक्त हुआ है। किसी प्रकार के औचित्य के चमत्कार को प्रकट नहीं करता। 'धुम्बरी' शब्द का प्रयोग अनुरूप हो सकता था अथवा अत्यधिक रूप या साधारण के व्यञ्जक अन्य पद प्रयुक्त हो सकते थे। तन्वी शब्द तो मिरहकृष्ण छिरी के ब्रिये प्रयुक्त हो तो उचित अर्थ का धोतक होकर शोभाजनक होगा। जैसे—

'कमल के पत्तों की यह शय्या दोनों ओर पीनस्तनों तथा
जपन के मणिक से मुरझ गई है, शरीर के मध्य भाग का
मिलन न होमे से बीच में हरित रह गयी है। डोली भुज
लताओं के शपर शपर फँकने से जहाँ तहाँ चिह्न बन गये हैं।
इस प्रकार यह कुरांगी के संताप की सूचना देती है।

(भी हर्य)

यहाँ 'कुरांगो' शब्द सामारिका की मिरहावस्था का सूचक है अतः औचित्य की पुष्टि करता है।

२—वाक्यगत औचित्य—

(१२) का०—स्याग से वन्नत घने घेरद्वय एवं शीघ्र से उज्ज्वल बने
शास्त्रज्ञान की भाँति औचित्य के साथ रचा गया वाक्य सम्मनों को
सदा प्रिय लगता है।

५०—जो लोग काव्य के विवेक में निपुण हैं उन्हें औचित्य से रचा
गया वाक्य ही अमोघ लगता है। जैसे—

‘देव सुधिष्ठिर वृथाहूँ, अर्जुन गितेन्द्रिय है, नकुल सहदेव अपने संयम के लिए आदरणीय हैं—यह कहता हुआ भीम कीचक का विमारा करने वाली अपनी मुद्राओं पर हाव फेरने लगा। वह किर्मीर की अट्टाओं का विध्वंसक, कुबेर के शीश को शान्ति का उपवेश देनेवाला, कौरवों की अन्तिम रक्षा का ह्वान्त, हिडम्बा का प्रिय भीम आद्य अपने पदार्थ रूप में दिखाई पड़ा।

(सेमेन्ट कृत विनयवल्ली)

यहाँ पर हिडम्बा आदि के निर्देश से भीम के चरित का संकेत देने वाले वाक्य रीति के अनुरूप हैं। बर्णन को सजीव सा बना देते हैं। अतः उचित है। अबका जैसे—

‘हे सुमित्रि, भगवान शिव की पूजा के मणि चमूमा को इधर देखो। यह पुरुर्वशी राजाओं का संवंधी है।

महम व्यापारों की दीक्षा में गुरु है। गौरंगियों के बदन की उपमा से परिचित है। ताराव्यू का प्रिय है। इसकी धृति द्वाचिष्वात्य ठरणी के हाक में ही माने गये हाँठों की मोति अवदात है।

(राजरोजर)

यहाँ नृत्तार रस के अंतरंग भावों के चोतक कामोद्दीपक अर्थ की सूचना देने वाले पदों से वाक्यार्थ निष्पन्न हुआ है। इसलिये औचित्य के कारण अत्यन्त प्रिय लगता है। यह तब ही बिले पदार्थ में नहीं है—

‘सुयोधन की विक्रमशील मुद्राओं पर आभित जगत प्रसन्न रहे। ये मुद्राये शौर्य के कमल का भास हैं, धुस के पारिधि का विपुल सेतु हैं, लज्जग स्त्री मुर्जग का चन्दनवत हैं लक्ष्मी का झीका उपमान हैं। जयकुंजर का आस्ताय है और सुम्बरियों के कर्प का दर्प हैं।

(राजरोजर)

यहाँ एक दोहा के बठोर मुद्रालम्बों का चतुर्ध के साथ वर्णन है। पर नमल भास से उसकी तुलना के कारण वाक्यार्थ बड़ा अप्रसन्न बन गया है।

३—प्रबन्धार्थ का औचित्य—

(१३) का०—यदि कोई विरोध कम उचित रूप से उपनिबद्ध हो तो उस से समस्त प्रबन्धार्थ इस प्रकार शोभित होता है जैसे गुणों के प्रभाव में मग्न होने के कारण से कोई वस्तु रूप शोभित होता है।

बु०—काम्यों में कभी कभी सीधे प्रविभा द्वारा ऐसे अर्थ की कल्पना की जाती है कि वह असूत का बरसाने वाला बनकर समस्त प्रबन्धार्थ को व्याप्यमित कर देता है। सारा काव्याव्यय उससे व्याप्य पर्य प्रभावित होता है और एक विरोध अमलकार आभासित होने लगता है। जैसे—

‘हे मेघ, मैं जानता हूँ तुम पुष्कर आवर्तक मेघों के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए हो, अपनी इच्छा के अनुरूप आकाश धारण करने वाले हो और इन्द्र के प्रधान सेवक हो।

इसलिए अपनी प्रिया से वियुक्त होकर मैं तुम्हारा याचक बना हूँ। प्रेष्ठ व्यक्ति से की गई याचना असफल भी हो तो भी वह नीच व्यक्ति से की गई सफल याचना से खरी अच्छी होती है।

(कालिदास-मेघदूत)

यहाँ अचेतन में चेतनत्व का व्यापारोप किया गया है। मेघ पुष्करों और आवर्तकों के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न है। इन्द्र का प्रधान सेवक है। इससे वृत्त कर्म की योग्यता का उसमें आभाव करना उचित हो जाता है। फलस्वरूप समस्त प्रबन्धार्थ का कल्पित इतिवृत्त संगत एवं रुचिरतर बन जाता है। सब मिलाकर एक निरतिशय औचित्य की घोषणा होती है।

अथवा अमभूति कव्य उत्तर ‘रामचरित’ के नीचे दिये गए प्रसंग में देखिए—

(निपक्ष में) ‘वह अरुण और पताका हैं अथवा समस्त संसार के अद्वितीय धीरे राक्षस के कुल के शत्रु राम की धीरे घोषणा है।

अप—(गर्भ के साथ) ओह, इन शत्रुओं से तो संताप होता है। अरे क्या घृष्णी चरित्रहीन हो गई जो तुम इस प्रकार घोषणा कर रहे हो ? (हँस कर) आहा, कैसे राक्षस कहते हैं। (धनुष तानते हुए)

‘इस धनुष की प्रत्यक्षा ही जीम है। पल्लवाकार पैनी कोटियाँ इसकी बाँधें हैं। घने घर्पर घोष को वह चला रहा है।

अपना प्रास खाने में व्यस्त रहा इससे हुए रामराज के मुख की चमड़ा को भी यह अपने बिगड़ छत्र स हीम बना देता है। (भवभूति)

यहाँ भवभूति ने रामायण की कथा का अधिकमसु कर राम के पुत्र लव के विग्रह और शीर्ष के लक्ष्य की कल्पना की है। यह दूसरे के प्रताप को न सहन करने से युक्तिसंगत बनती है और प्रबन्ध में कैसे हुए रस के अनुकूल बनकर औचित्य की छाया प्रदान करती है।

राक्षसों के नीचे खिले पथ में वह लख नहीं है—

राक्षस—‘जो अनुप पार्वती के कर्णों को इष्टपूर्वक प्रहस्य करने में लगे शिवजी के हाथों में हजारों वर्ष रहा है, जिसका शत्रु देवों के सार कर्णों से बना है और जो मैबिली के मूल्य का धन है वह इस समय लव जाय।

जबक—इसके साथ ही अगर्मसम्भवा सीता का भी प्रतिशान हो ?

यहाँ सीता के प्रतिशान की बात जो राक्षस के प्रसंग से जतक में कही है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि त्याग राक्षस को सीता का प्रतिदान करता नहीं समीष्ट है। यह समझ में नहीं आता कि कोम-कांगी सीता मानवमयी राक्षस जाति के राक्षस को कैसे ही वा खकती है। वह तो राक्षसों का भक्ष्य थी। इस प्रकार वह अनौचित्य चरित्र को विपरीत बनाता है और भावुक दृष्टि में बड़ी अरुचि उत्पन्न करता है।

काशिका के नीचे खिले पथ में भी औचित्य नहीं है—

‘कुछ चणों के लिये शिवजी के नेत्र पाव ली के वरु मूल में बनी नलचिह्नों की पंक्ति में लुमा गये। फिर उन्होंने प्रियतमा को अपने डीठे यत्र कसने से रोक दिया।

यहाँ अम्बिका के संभोग का वर्णन है, पर पार्वती के वरु मूल में नलचिह्नों की पंक्ति बसाना पामर नारियों के योग्य है और उस पर त्रिजगत् गुरु त्रिलोचन शिव का मोहित होना दिखाना परम अनुचित है। इससे यह प्रसंग अनौचित्य की पुष्टि करता है।

४—मुखों में औचित्य

(१४) का०—प्रस्तुत वर्ण के अनुसार मुखों का कम्ब में संनिवेश

संभोग के अवसर पर चर्चित हुए चन्द्रमा के समान अमन्द आनन्द प्रदान करता है ।

पृ०—अतुल्य अर्थ के चर्चित भोज, प्रसाद, माधुर्य-आदि गुणों का प्रयोग काव्य में सुमंग तथा भव्य होता है । वह चन्द्रमा के समान सहृदयों को आनन्द संभोग प्रदान करता है । जैसे भट्ट नारायणकृत बेखी माधव नाटक के निम्नलिखित पद्य में—

‘महाप्रलय के पायु से संघुष्य हुए पुष्कर और आकर्षक
नेपों के गर्जन के समान भयावह, झुनने में आवेच्छमरी और
आकाश पृथ्वी के अंतराल को मर देने वाला यह अमृतपूर्ण
शब्द आज समरोप्य से कैसे उठा ?

यहाँ भोजायी भट्ट योद्धा अरवरथामा के ऊर्ध्वस्वित प्रताप का वर्णन है । उसके अनुरूप ही आद्य गुण भरे वाक्यों का प्रयोग है । इससे पराक्रम का ओचित्य और गौरव सहस्र गुण अधिक बढ़ जाते हैं । मायामद के नीचे लिखे पद्य में भी यह विद्यमान है —

हार, अलाह बस्त्र, नलिनी दक्ष, आस वरसावी हुई चन्द्रम
की किरणें और चम्पन के सरस आलेप जिसके ईश्वर बना
हैं यह अमार्ग किस् प्रकार मुझ सकेगी ।

यहाँ काश्मिरी की विरह व्यथा का वर्णन है । वियोग में का
का वैध्व दूट चुका है । ऐसे भावों के वर्णन के लिए माधुर्य, सुकुमारता
आदि गुणों का प्रयोग किया गया है । इससे प्रसंग पेसा आनन्ददायक
बन गया है । जैसे पुरुषोत्तमना मुन्नी मधुर माधव से प्रियतर
जाती है ।

‘महाकवि चन्द्रक’ के इस पद्य में यह तत्त्व नहीं है—

माय्यपपन्न सुखों के विषय में मैं क्या प्रश्न करूँ ? अथ और
परमय तो हैन होता है, पर मुझ स्थल में आकर मैं य

१—जिसका यह अर्थ है वह पद्य बाण की पद्यरत्न काश्मिरी से च्युत है ।

यह पद्य सब तक उल्लेख नहीं हुआ । पद्य इस प्रकार है ।

हारो अलाह बस्त्र नलिनी दक्षानि प्राप्तेयधीकरमुचस्तुहिनागुमाय ।

यस्तेनानि वरदानि चम्पनानि निर्वाणुमेप्स्यति कर्म स भोजनानि ।

२—यह चन्द्रक कवि ईश्वरी पूर्व पहली पद्यांश में तुलसी राजा का उल्लेख
का । राजतरंगिणी में इसका उल्लेख है ।

प्रतिष्ठा अपश्य करता हूँ कि राष्ट्र मेरे भोगों की वर्षाएँ नहीं
देख पायेंगे ।

यह किसी पोसा की वक्ति है । इसे चात्रवृत्ति के समान भोज
गुण से युक्त होना चाहिये था । यद्यपि इसका अर्थ उचित है पर उचित
गुण के अभाव में ऐसी मन्द पक गई है जैसे इरिद घर की
तेजोविहीन दीप शिखा ।

राजरोखर के निम्नलिखित पद्यार्थ में भी यह गुण नहीं है—

‘इसके कामम्बर को स्नेही जन भी जल जाने के भय से डूबर
नहीं देखते । जल तो इस पर बजलने लगता है ।

अम्बुनादि औषधियों का प्रयोग इस पर निरर्थक हो जाता
है । यहाँ तक है कि हार और मात्साओं की मण्डियाँ बहस्थल
से लग कर लीकों की भाँति बटबटाकर फूट जाती हैं ।’

यहाँ वक्ष्य है बिद्यविभुर रमणी की पीडावशा उसके अनुसूय
यहाँ मानुष्य गुण भी है । पर उसको स्वागकर ‘बटबटाकर लीक की
भाँति फूट जाती हैं ।’ आदि वाक्यों में भोज की स्फूर्त्या दिखाई गई
है । इससे सुक्ति विष्ट में इसी प्रकार अनीचित्य का संचार करती है,
जिसप्रकार कटु बोलने वाली कोमलोगी सुन्दरी ।

५—प्रलंकारों में औचित्य—

(१५) का०—प्रतिपाद्य अर्थ के अनुकूल अलंकार का प्रयोग हो
तो इस औचित्य से काव्यमारती इस तरह शोभित होती है जैसे
पीन स्तनों पर पड़े हार से सुन्दरी ।

ह०—प्रस्तुत अर्थ के उचित ही यदि उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि
अलंकार प्रयुक्त हो तो उससे काव्योक्ति उन्नत कुत्रों पर अटके हुए
मुक्ताहार से कामिनी की भाँति अत्यंत शोभायमान होती है । जैसे—
भी हर्ष के निम्नलिखित पद्यार्थ में—

‘अपना अस्सव देखने के लिए अस्तुक होकर अस्सरज्य काम
देव की भाँति इधर ही आ रहे हैं । लड़ाई की जर्नी समाप्त
हो चुकी है । अतः प्रेमी ने प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास
करते हुए सारवात् अमरदेव के समान लगते हैं ।

यहाँ अस्सरज्य की अमरदेव से उपमा गृ गार रस के प्रसंग में
बड़ी चारुता उत्पन्न करती है । यह औचित्य अमरकार का अरण्य
जनता है ।

महाकवि बम्बल के बीच सिली पदार्थ में यह औचित्य नहीं है।

‘पक्षियों ने आँतों को धूलों की टहनियों पर छेंक फेंक कर झूठासी बना दी है। गृगाक्षी भरपेट मांस खाकर रतिलिन्न रमणी की माँति सो रही है। प्यासा गृगाक्ष सुधिर में सभी सख्तवार को बारबार चाट रहा है और यह साँप बिल को खोम में मरे हुए हाथी की सूँढ़ के अम माग में प्रविष्ट हो रहा है।

यहाँ पुरुषों का मांस खाकर सोई हुई गृगाक्षी की समता सुरुत केवि में क्लृप्त रमणी से की गयी है। यह अनुचित है। इससे रस वैपरीत्य प्रकट होता है।

मासवस्तु के इस पदार्थ में वही बात है।

‘शरद के दिनों में उपलों की आग नहीं बहू के कोप जैसी प्रिय लगती है। वर्धिलो हमा कुबड़े व्यक्ति के आतिगन के समान कर लगतो है। सूर्य की कान्ति निघन व्यक्ति की आक्षा के समान मंद पड़ गयी है। चन्द्रमा विरहिणी स्त्री के मुख जैसा मखिन बन गया है।

यहाँ कोमल कामिनी के कोप से उपलों की अग्नि की समता दी गई है। यद्यपि शीतकाल में प्रिय लगने के कारण यह अनुमृति में ठीक है पर रस में पहले पहल अनुचित लगतो है। चित्त में इससे संकोच का अनुभव होता है। कहां नबोटा का क्षुपित मुख और कहां बहकता हुआ अंगार ? यह समता अनुचित है।

अथवा रामरोजर का निम्नलिखित पद्य देखिये —

‘चन्द्रमा जलते हुए कामदेव के बिठा चक्र जैसा, और उसका चक्क मलिन मुँहे अंगारों जैसा लगते हैं। यह जो चांदनो में मिला हुआ पिसे कपूर जैसा सफेद पदार्थ है यह मानों बिठा की मरम ही वालु स इधर उधर बढ़ रही है।

इसमें चन्द्रमा की समता बिठाचक्र से दी गई है। यह अनुचित है। चन्द्रमा आनन्दसुधा का परमाने वाला है। बिठाचक्र कानों को कटु है और चित्त में आतंक उत्पन्न करता है। अतः उक्त पदार्थ में असंकार गत औचित्य नहीं रहा। जो अर्थ हृदय को प्रिय हो और अनीचित्य का चक्षु में शेष भी न रहे तो वह अलंकार की शोभा को

अविनाशिक पुष्ट करता है। जैसे कवि कार्पेटिक के नीचे लिखे पद्यार्थ में —

‘मैं बड़ब की फस्ती की तरह जाड़े में झूठ गया था। बिस्ता-सागर में गोते खाने लगा। अग्नि ठंडी होगई थी। उसे फूँकते फूँकते होठ खुले ही रहते थे। भूल के मारे कण्ठ भी खोख था। नित्रा विमानित भियतमा की भौंति छोड़कर दूर चली गई और रात्रि सत्पात्र की दान की गई धृष्णी के समान लीण ही नहीं हो पार ही थी।

यहाँ प्रतिपाद्य अर्थ हृदयसंवादी है और अनौचित्य का बोधा अर्थ भी नहीं है। अतः कविता औचित्य के अभाव में भी रमणीय है।

६—रसगत औचित्य

१६—औचित्य के द्वारा रस और अधिक आत्मावलीय बनकर सब हृदयों में व्याप्त हो जाता है। मधु मास जैसे अशोक को अंकुरित कर देता है वही प्रकार वह भी मायुक्त हृदयों को अंकुरित कर देता है।

मृङ्गार रसगत औचित्य—

भी हर्ष का नीचे लिखा पद्यार्थ बराबर है —

‘इस बचानकता की कलिकाएँ बढ़कर ऊपर उठ आई हैं। इसकी कामित पीली पड़ गई है। लैमाई लेकर शीर्ष रवालों से मानो कुछ मर के श्रिये वह अपनी बचान को प्रकट कर रही है। इसे आज मदन पीवित नारी की तरह देखकर देवी वासयदत्ता का मुँह कोपाकण हो जायगा।’

इसमें वासयदत्ता के हृष्यादिप्रसंग माध की कल्पना की गई है। मपीन मातृजी सदा को ललित बनिता के मुख्य कल्पित कर उसमें विरह द्वारा आचारोप किया गया है। इस प्रकार उपमा द्वारा एक रुचिर औचित्य की सृष्टि हुई है और उससे अमरकर अमर दौति का जन्म है।

कालिदास के निम्नलिखित पद्य में भी यही बात है।

हाक के आत्यधिक साक साक पूरा पूरे विकसित मही हुए थे। इनलिये बाक इन्धु की भौंति टेढ़े बिल्लाई देते थे। ऐसा लगता था कि वन स्वस्वियों का जो वसन्त से समागम हुआ है वसन्त इन्हीं सदा नलपुत्र लग गये हैं।

यह कुमार संभव का प्रसंग है। प्रस्तुत पद्यार्थ के बाद भगवान् शंकर का पार्वती के प्रति अभिलाषा भङ्गार वर्णित हुआ है। इससे पूर्व यहाँ वसन्त कामुक के और वनस्पती कामिनियों के रूप में वर्णित हैं। हाक की झाल टेढ़ी कलिकाओं की भवसंगम के मलमल के रूप में प्रतीता है। प्रस्तुत प्रसंग वर तक भङ्गार रस का है। वसी के अनुरूप उपमान गत वस्तुसमूह भांगारिक है। अतः यहाँ औचित्य की शक्यता बाधता विद्यमान है।

यहाँ के इस पद्य में औचित्य नहीं है।

कनेर का फूल वर्ण में तो उत्तम या पर गन्ध शुभ्र या इस लिये चित्त को खेद प्रदान करता था। गुणों के संयोजन विधान में विरह के सृजनहार की प्रकृति प्रायः चढ़ती रहती है।

यहाँ बिधावा की निन्दा के साथ केवल कनेर के फूल का वर्णन है। इसका प्रस्तुत भङ्गार रस में कोई उपयोग नहीं दिखाया गया। इसलिये उद्दीपन विभाव के लिये कुछ भी नहीं कहा गया। फलतः रसगत औचित्य का अभाव है।

हास्यरस गत औचित्य—

उदाहरण—अमरुत के स्वरचित 'आपराध वती' नामक काव्य से।

‘क्या मदिरा को छेदने के भय से मेरा मुख नहीं चूम रहे ?
अपनी नाक क्यों ढकते हो ? अरे यह जो त्रियपना क्यों ढकेरते
हो। बेरपा के बिना तुम कुछ नहीं। यह से धूँठ नेत्रों
यात्री मासती ने ऐसा कहकर सिकुड़ते हुए अत्रियसु भोत्रिय
पर भोक्तृ की मूर्ति आसप दिहक दिया।

इसमें मुख्य रस हास्य है। गीत है गृह्णाणमास। इसके स्पर्श से मुग्धरस में ऐसा अमरुत औचित्य था गया है। ऐसा किसी भेष आसप में आम का रस मिला देने पर होता है। इस औचित्य का व्यञ्जक व्यापार यहाँ है अपवित्र मदिरा के स्पर्श की शंका एवं संकोच से सिकुड़ते हुए अत्रियभोत्रिय पर सूजे भोक्तृ की मूर्ति सरसता लाने के लिये भेष विभासिनी का आसप दिहकना। इस प्रकार हास्य रस गत औचित्य यहाँ वर्तमान है।

प्रथमकार के वसी प्रथम का दूसरा उदाहरण—

‘मार्ग में केरल देश की रमणी पैर में केतकी की सुई बिन्द

आगे से 'सीसी' करने लगी। पर उसके सामीप्य बिट में भार्यना की कि यह बेव्या असम्भ रम्य है। ऐसा ही फिर करो। इस पर वह मुसका दी। वृषा भर के क्षिप उसके चार पाँवों पर चोखनी का जो प्रतिविम्ब पड़ा वो ऐसा लगा मानो यह काम्ता पूर्व के देखने से क्षिप्रित होकर मुख पर श्वेत यस्त्र का धूपट करती है।

यहाँ पर भी हास्य रस में कुटिल बिट की नर्मोक्तियों के औचित्य से गृह्णारमास का पुट खग गया है। इससे अमरकार जनक परिपोष मुख्य रस में आ गया है।

इयामस के इस पदार्थ में कुछ औचित्य नहीं है।

'नायक उसके मुखचुम्बन में लगा ही था कि नायिका का दौंठ लड़ से उलड़ कर नायक के मुँह में गले तक पहुँच गया। वह लकार कर उसे बीसे सेस धुक सखा।

यहाँ हास्य बीमरस रस से संयुक्त हुआ है। पर यह लहसुन में सने पृष्ठों के गुच्छे की भाँति अग्रिम हो गया है और इस अनौचित्य से काम्य का अमरकार विरोधित हो गया है। वृद्ध स्त्री के चुम्बन में और गले तक आप हूय चले दौंठ के धुकने में बीमरस भाव की ही प्रधानता हो जाती है, हास्य की नहीं।

कल्प्य गत औचित्य—

प्रत्यकार की अपनी मुनिमत मीमांसा से—

'अमिमस्यु का जब उसी समय हुआ था। इस पर मुमशा ने 'हे बरस ! हे पुत्र !!!' आदि आदि चिन्ता कर अर्जुन के समक्ष ऐसा विज्ञाप किया कि पत्थर भी पिघल छटे। इसे सुन कर सेना के घोड़ों ने रो-रोकर वास खाना त्याग दिया और कर्मों को नीचा किये वे निरवश लड़े रहे।

इस पदार्थ में कुछ ही समय पहले के प्रिय पुत्र अमिमस्यु के वध से पत्थर शोक के स्थायी माप का वर्णन है। वह पत्थरों तक के हृदय को पिघला देने वाले मुमशा के विज्ञाप से प्रतिकूलित होकर अर्जुन के हृदय में लदीप्त हुआ है। अतः माभोचित व्यापार की योजना हुई है। इतना ही नहीं। घोड़े जैसे पशुओं के हृदय में भी यह संश्रय होकर रोना, मास कबलों को छोड़ देना, निरवश लड़े

रहना आदि अनुमापों द्वारा प्रस्तुत भाव की अनुमृति को और अधिक तीव्र और गम्भीर बनाता है।

परिमल कवि के निम्नलिखित पद्यार्थ में यह नहीं है।

‘हा गृह्णार तरंगिणी के कुङ्कुमिनि, हा राज चूणामणि, हे
सौम्य के सुपानिधान हा वैदग्ध्य दुग्ध के उदधि, हा
उज्जयिनी के मुग्ध, धुवतियों के प्रत्यक्ष कर्दप, सद्गन्धर्व,
कला के चमू, देव तुम कहाँ हो। हमारी प्रतीक्षा करो, हम
भी आती हैं।’

यहाँ किसी राजा की मृत्यु पर उसके गुणों का स्मरण करते
हुए पद्य में शोक स्थायी भाव की स्थिति दिखाई गई है। विभाव
अनुभाव, संचारी भावों द्वारा उसे इस पक्षी तक नहीं पहुँचाया गया
जाकि उचित था।

रौद्रगत औचित्य—

जैसे नारायण के निम्नलिखित पद्यार्थ में —

‘पाण्डवों की सेना में अपनी मुजाओं पर गर्व करने वाला
जो जो शकपारी है। पंचाल वंश में जो कोई भी शिशु
पुत्रा अवश्या गर्भस्थ है। जिसने भी उस निश्चित कर्म को
हत्या या और मेरे युद्ध में आजाने पर जो भी विपरीत
आचरण करता है, मैं उन सब का कोपाम्बु कात हूँ, भले
ही यह स्वयं मृत्यु ही हो।’

यहाँ रौद्ररस का स्थायी भाव क्रोध व्यपस्थामा में दिखाया गया
है। उसके उचित ही शिशु, पुत्रा और गर्भस्थ तक की क्रूर हत्या कर
हातने के उद्यम तक से जाने वाली व्यपस्थामा की प्रतिष्ठा द्रोण के पक्ष
से उत्पन्न हुए क्रोध एवं वेदना से पोषित उसके मन की स्थिरता
सूचित करती है।

प्रपञ्च के निम्नलिखित पद्यार्थ में यह औचित्य नहीं है।

हिरण्यकशिपु के रुधिर में सने मृसिह मगपान के भावों की
प्रभा वेदोपमान हुई तो राक्षस भी उससे भयपिडित
होकर भाग गई और इसमें अपने वक्षस्थल से जीबे गिरते
हुए पक्ष को भी समाप्त न सकी।

यह पदार्थ रौद्ररस का है। पर उसके स्थायी भाव क्रोध की व्यंजना करने वाले व्यापारों का इसमें अभाव है। यादव में यहाँ बोजा सा तो बीभत्सरस है और व्याकुल होकर राक्षसों के भागने में भयानक रस का उसके साथ संकर है। प्रकृत रस जो रौद्र या रसका कहीं मुँह भी नहीं दिखाई देता। औचित्य उसी को पुष्टि में था।

वीरगत औचित्य —

जैसे मन्थकार की स्वरचित 'नीतिकता' के निम्न लिखित पदार्थ में।

'वे वही राम है जिन्होंने शीर्ष से धर्म की आराधना करने वाले, मर्यादा के विपरीत राक्षस ग्रहण करने के व्यवसनी परशुराम की त्रिविधोचित संहारकारिणी तीक्ष्णता को बोझों में ही रोक दिया था, जिन्होंने कान तक यज्ञ को स्वीकृत तथा उस पर अपने कुटिल भ्रमों का प्रसारण कर अन्धकार का निषेध किया था और मार्गों को शान्ति पूर्ण प्राची स्थिति का संकेत किया था।

इसमें तोता और मैना राक्षसों की दूर से राम का संकेत देती हैं। उनकी क्रोध रहित गंभीर आकृति से जैसा प्रभाव प्रतीत होता है उसी के उचित प्रभाव की व्यंजना मर्यादा के विपरीत राक्षस ग्रहण करने वाले मार्गों को मध्य वृत्ति का अपेक्षा देने से हुई है। राम का भ्रमों का अपभ्रम के प्रसंग से हुआ। स्वामाधिक रूप में नहीं। वीरको क्रोध में भी विकार उचित नहीं। उसकी तो वृत्ति प्रसन्न, मधुर और धीर होती है। यहाँ उसी के उचित व्यापारों की योजना है। मार्गों के वसन द्वारा भी राम के उत्कर्ष की अभिव्यक्ति की गई है।

अथवा रामचंद्र का नीचे लिखा पदार्थ देखिये —

'हे लक्ष्मण, धूमती हुई गदा के आघात से संझाहीन होकर तुम जिस सहस्राशुन के परा में हो गये थे और क्षियों के बीच में पशु की भाँति बन्धन गये थे उसकी मुखाधियों को काटने वाले परशुराम को जिसने भीत लिया और ब्राह्मण समझकर माया भरी वही राम वापस बेध में यहाँ आये हैं।

(१०)

यहाँ राघव, सहस्रार्जुन तथा परशुराम के शीघ्र का उत्तरेतर
अर्क दिशाकर प्रमान नायक राम का प्रताप हृदयतम व्यक्त
किया है।

ममभूति के इस पदार्थ में बैसा औचित्य नहीं।
'बड़े लोगों के शरित पर टीका टिप्पणी करना ठीक नहीं, युद्ध
होने वा। खी हाइका का वमन करने पर मो उनका परा
कस्तवित बना रहा और ये महान ही रहे। वे सर राघव
के साथ युद्ध करने में जो तीन कदम पीछे हटे थे, अथवा
मेवनाद के पक्ष में जिस कौरव का हथौड़े प्रयोग किया
या, वह सब लोग जानते हैं।

यह पदार्थ 'बृतर रामचरित' का है। गौणगत्र छंद के वीर
माध का उद्घोषन दूसरों के प्रताप की असहिष्णुता के द्वारा यहाँ किया
गया है। पर उससे प्रमान नायक राम के वीर भाव का उसके खी वच,
सर के युद्ध से अपसरख, सुमोप के साथ युद्ध करते हुए बलि का वच से
पक्ष करना आवि लोकापवादों का स्मरण कराकर कवि ने विनारा कर
दिया है अतः यह वस्तु योजना अनुचित है।

प्रमानक रस में औचित्य—

जैसे मो हर्ष के इस पदार्थ में देखिये—

'यह वज्र अस्त्रमल से माग कर राजगृह में घुस रहा है।
अपकृष्टी साने की शक्ति इसके गले में लटक कर घिसट
रही है। द्वारों को बलापता है वा देहा से बल्लते समय
बलायमान परखी : किफियों का समूह बज कठवा है।
अंगनायें आतंकित हो गई हैं। सर्वस लाग संभ्रम के साथ
उसके पीछे दीव रहे हैं।

तथा—

'हिजड़े लोग सज्जन न करते हुए माग गए क्योंकि उनकी
तो मनुष्यों में गणना ही नहीं थी। यामन लोग अपने
आभार का काम पठाकर कंधुकों के कंधुकों के अन्दर
घुम रहे हैं। फिरल लाग, जैसा कि उनका नाम है, दूर
किनारों पर आ लगे हुए हैं और कुबड़ियाँ घीरेस नीचे-नीचे
जा रही हैं कि कोई देख न ले।

इसमें भयानक रस है। उसके अनुरूप ही बंदरों के ठीके दाँव और मसों की लसोटन से स्त्रियों का आकर्षित होना, अन्तःपुर के कुछ कंचुकी, वामन, किराव, कुठ्ठा आदि का पुरुषों में गिनती न होने से बाढ़े मय से भी सभ्रान्त पथ भयभीत होकर भाग पड़ना आदि ऐसी चेष्टाओं का वर्णन हुआ है जो प्रकृत माय के अनुरूप होने से रुचिर है। फलतः यहाँ औचित्य विद्यमान है। राजपुत्र मुष्मती के इस पदार्थ में वह औचित्य नहीं है —

'जिसे कोमल माथे के मूठों के कौर लिप्ता-लिप्ताकर बढ़ा किया और शिशुकाश में जिसने होम से बचे जल का कमल के पत्तों के दानों में मरमर कर दिया था वही हाथी जब युवा होकर मधुमंथर हुआ और भीतों का समूह उसके शङ्खस्थल पर चकर काटने लगा तो तपस्वी दूर बैठकर उसे आनन्द और मय के साथ देखता है।

यहाँ हाथी की किसी आघात कारिणी विद्वत् चेष्टा का वस्तेल नहीं हुआ। शायी माय मय का बिना अनुभावों के केवल नाममात्र का निर्देश है। फलतः भयानक रस के उचित चरित्रादृष्ट का अभाव है। अतः यहाँ औचित्य की पुष्टि नहीं दी जाती।

बीमत्स रस में औचित्य

प्रत्येक की अपनी सुनिश्चित सीमांसा के वह उदाहरण देखिए —

'यह शरीर सब तरह के अपावों का घर है और सुराह्यों का लज्जामा है। इस तरह-तरह के मूषक वस्त्र और आनन्ददायी चन्दनादि से सजाने में क्या क्षाम होगा। इसके भीतर तो बिप्पा, प्रकृत काशों का समूह और आर्तों का चक्र मग्न हुआ है और वह सदा मृश्यादि से गीझा रहता है। अतः में एक दिन इसे और और मो मुँह फेर कर इसे जोड़ जाऊँ।

यहाँ पैराग्य भावना से उत्पन्न बीमत्सरस का वर्णन है। शायीभाव है सुगुप्ता। इसी के अनुरूप शरीर में पिप्पा आव आदि का वर्णन कर उसके प्रति निरर्थक देशभिमान का वैरस्य व्यंजित किया है। पर्य्य सामग्री माय के उचित ही है।

चन्द्रम के नीचे जिस पदार्थ में वह तपस नहीं प्रतीय होता।

'यह कृत्ता कृश है काना और भंगका है। कान और पूँख सी इसके नहीं हैं। मूल से सुलकर कला बन गया है।

किसी कंकाल के कपाल को खाने से हमका गला भी बूख
 बूझा है। पीय बहते और कोहों से किञ्चिन्नाये पाषों से सारा
 शरीर भाबूत है। फिर भी यह कुतिया के पीछे भाग रहा है।
 यह कामदेव भी 'भरे का माछ' है।

यहाँ कुत्ते के शरीर में अनेक वृक्षित कुरसाओं का प्रदर्शन हुआ
 है। पर यह तो स्वभाव से ही वृक्षित योनिका है और अशुचि पदार्थों
 के खाने में उत्तकी रुचि है। फिर इस प्रकार अत्यधिक निर्बल
 के साथ बीभर्त विरोधों का पशुन करने से किस बात की खोजना
 हुई? वे ही सब यदि पुरुषगत होतीं तो जुगुप्सा में गौरव होता।
 अद्भुतगत् औचित्य

कपि बगदक का निम्नलिखित पद्यार्थ उदाहरण है —

मैं आज कृष्ण खोजने गया तो उसने अपने आप मिट्टी
 खार्ई थी। 'क्या कृष्ण यह सब है?' 'किसने बताया है?'
 'बलरूप ने।' 'मैं विरुद्ध भूत है।' मेरा मुँह देख तो।
 'अच्छा मुँह खोल।' इस पर श्रीकृष्ण ने जब मुँह फाड़कर
 दिखाया तो माता उसमें समस्त जगती को देखकर हक्की-
 बक्की हो गई।, ये केसय हम सब की रक्षा करें।

इस पद्यार्थ में पांडु रंग के हाथों के चाक्ष से उन पर मिट्टी
 खाने का आक्षेप लगा है। उन्होंने भय बकित होकर अपना मुँह खोल
 कर जो दिखाया तो माता उसमें समस्त जगती का दर्शन कर घासक्य
 मिट्टी और विरमय बकित हो गई। यह भगवान् के प्रमाण को तो
 अनभिज्ञ थी। अतः यहाँ अद्भुत इस का परिपाय उचित ही हुआ है।

प्रग्वकार की अपनी मुनिमत भीमासा के इस पद्यार्थ में यह
 शक नहीं है ।

अपार समुद्र समस्त आरब्यों का घर है। उससे अधिक
 अशक्य यह है कि उस सारे को एक मुनि पो गये और
 इस आरब्यों का कर्मा ही क्या कि वे मुनि एक छोटे
 पक्ष से उत्पन्न हुए थे। संसार सेरी आरब्यमयता की मात्र
 फीन पर सक्ता है।

१—धरती ही रचना में दोष विधानेवाले धर्मग्रन्थ की उदार दृष्टि
 प्राच्यनीय है।

इसमें अपार समुद्र का प्रभाव, उसको अगम्य मुनि का एक पुस्तक में पी जाना मुनि का फिर एक छोटे पड़े से जन्म होना आदि घटनाओं द्वारा बिलक्षण विस्मय से अनुभूत रस क्रमशः बढ़ता गया है। पर अन्त में 'संसार ऐसे ही आरव्यों से भरा हुआ है जो उक्त घटनाओं कोई अनुभूत नहीं सिख होती। इस भाव का अर्थात्परम्परा दिखाया है। इससे ऊपर का भाव उतर सा गया और प्रकृत विरोध हो गया। शान्त रस में औचित्य

प्रत्यकार के 'बहुवर्ग संघर्ष' के नीचे किले पचार्य में यह विद्यमान है —

'योग में रोग का भय है, सुख में दुःख का विष में अग्नि और रामा का, सेवा में स्वामी का सुखों में भक्तों का तथा बंध में बुरी स्त्री का। इसी प्रकार मान में शक्ति का भय है, जय में शत्रु का और गरीब में सत्पुरुष का। कलत्र सभी भय से भरे हैं। कोई निर्मल वस्तु है तो वह वैराग्य है।

यहाँ प्राप्तिमात्र के जो योग सुख विचार हैं उन्हें भयदूषित दिखाकर हेय बताया गया है और वैराग्य को समस्त धर्मों का शमन कारक प्रमाणित कर उपादेय दिखाया है। इससे शान्त रस के निर्भीक और स्वच्छन्द रूप का उपदेश अभिव्यक्त होता है। अर्थ की योजना प्रतिपाद के अनुरूप ही है।

इसी प्रकार प्रत्यकार को 'मुनिमत मीमांसा' के इस पद्य में औचित्य है

लाजसा यह है कि—अहि हो या शूद्र, वज्रवान शत्रु हो या मित्र, मणि हो या मिट्टी का डेरा, कृत्तों की शय्या हो अथवा पत्थर की शिवा, दूष हो अथवा प्रमदायें, सर्वत्र समान भावना से भरे दिन बीते और किसी पवित्र धर्म में 'शिय, शिय शिय' का प्रणय करता रहूँ।

यहाँ जीवभुक्त पुरुष के उचित हो प्रिय, अप्रिय राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों का अशम करनेवाला मोक्षोपयोगी साम्यभाव अहि-शूद्र शत्रु-मित्र आदि पर समान दृष्टि द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। पर पुण्यारव्य की जो अस्मत्त्व है वह भेद बुद्धि का प्रतिपादक और उपयुक्त अभेद भावना का विरोधी है। अतः अनुचित है। जब साम्यभाव द्वारा प्रिय हो जाता है तो उससे भेदाभिमान की धर्म्य विगति हो जाती है और सब वस्तुओं शिवमय प्रतीत होती हैं। निर्मल आत्म

काम से वृत्त ऐसे मुमुक्षु की तपोवन और मगर के घूरे में समान दृष्टि हो जाती है। पर पुनरावृत्ति की बात बहना अनुचित है।

रस की संसृष्टि और संकर में औचित्य

(१७) का०—मधुर तिष्ठ आदि रसों को चतुर्थाई से मिलाने पर जिस प्रकार एक विविध आस्वाद उत्पन्न होता है इसी प्रकार शृङ्गार आदि रसों को आपस में एक दूसरे से मिलाने पर विविध रसानुभूति होती है। इनके इस परस्पर मिलाने में कवि को औचित्य की रक्षा करनी चाहिए। अनौचित्य का तनिक भी अंश आ जाने से वह रस संकर प्रिय नहीं रह जाता।

पृ० चतुर रमोदया चटनी या पना आदि के बनाने में जब मीठे, चरपरे लट्टे, मुनखरे आदि रसों का चतुरता से संयोजन करता है तो वे विविध आस्वाद को जन्म देते हैं। इसी प्रकार अयिरुद्ध शृङ्गार आदि रस भी मिलकर विविध रसनीय बन जाते हैं। इनकी अंगानि-भाष-भाजना में औचित्य की रक्षा अवश्य करना चाहिए। यही रसका जीवित है। अनौचित्य की थोड़ी सी वृत्त भी उसमें पड़ गई तो वह विरस हो जाएगा।

शान्त और शृङ्गार रस के संकर में औचित्य

का दर्शन भगवान् व्यास के निम्नलिखित पदार्थ में कीजिये—
‘सप्तमुख उरुण्यो मनोरम है और विभूतियों भी बड़ी रम्य हैं। पर जीवन तो इतना संकल है जितना कि मत्त अंगना को अपागमगी।

यहाँ पर प्राणि मात्र के हित का ध्यान रखने वाले भगवान् व्यास मोक्षपयोगी शान्त रस का उपदेश देना चाहते हैं। पर रागी जनों का यह अमोघ नहीं है। इसलिए गुडनिष्ठिका न्याय^१ से उनका मन प्रसन्न रखने के लिए शान्त को शृङ्गार का अन्न बना दिया गया है। पर अन्त में जीवन को संयत बनाकर उसकी अनित्यता का संकेत भी उन्होंने कर दिया है। और शान्त रस का ही भेद्यता प्रदान की है।

१—मीठा विभाव-जवाब कागड के काग पर दिए जाते हैं। इसे पुनर्विज्ञान कहा जाता है।

धीमस्त और शृङ्गार के अंगंगामिका का उदाहरण मन्थकार की 'वीर्यायाम वरुणता' का नीचे लिखा पर्याय है।

'युवा शय नपु सक की भौंति अचल होकर पड़ा है। मगामी रुधिर की कामना से कामातुर भी आसक्त हो उसके गले से लगी है और मस्नों की ललों की रेखायें बना देती है। वॉंठों का प्रणाल दे देकर उसके अघर का बारबार आस्वादन करती है। इस प्रकार मुरन क्रिया में मगमन सी वह उसके अङ्गवेदन में (अनङ्ग क्रिया) व्यस्त बनी अपने रमसे रक्त को व्यक्त करती है।

यहाँ शुद्ध स्थल में युवा शय का मन्थन करती हुई शृङ्गामी का वर्णन है। श्लेषोपमा कर्षणकार द्वारा उसे कामातिष्ठ युवती जैसा चित्रित किया है। शृङ्गार और धीमस्त दो परस्पर विरुद्ध रस समान बन होकर यहाँ मिले हैं। तरुण शय लीब की भौंति निरचेष्ट पड़ा है और मुग्ध होकर शृङ्गामी युवती की भौंति उसके कंठ से लगी है। अनुरक्त कामातुर मगमी की भौंति वह शोणित की अस्थान इच्छुक है। अपने मस्नों के बिह्व शय पर बना रही है। अपने वॉंठों के प्रसू बनानी हुई बार बार उसके अघर का आस्वादन करती है और अंग वेदन क्रिया में ऐसी लग्न है जैसी रति क्रिया में। अपने शरीर को बार बार ऊपर उठाती है। यहाँ वामिनी और शृङ्गामी की चेष्टायें समान हैं। इसलिये धीमस्त और शृङ्गार भी समान बन हैं। पर उन चेष्टाओं का वाक्य में कर्ता शृङ्गामी है अतः धीमस्त मुख्य है और शृङ्गार गीण। इनके वक्ष्य भी वेधिसत्व है जो धैर्यम्य वासना से युक्त है। फलश्रवण बुद्धि की सुगुप्ता विस्मय निर्विनी रति की विह्वलना की श्रवण होती है। भाषों के संयोजन में रुचिर औचित्य है। समस्त मन्थ में तो शास्त्ररस का ही प्राधान्य है पर इस श्लोक के वाक्य में धीमस्त की मुख्यता है।

वीर और कृष्ण के संकरोचित्य का उदाहरण मन्थकार की 'सुनिमत् मीमासा' का यह पर्याय है।

मनोदित धीयनकाह में ही अभिरन्तु का वध किया गया तो अर्जुन शोक संतप्त हो गए और अयत्रय के वध करी अभिचार वध में वे लग गए। उनका गाण्डीय छुया में जाने लगा। अमजल में स्नान कर स्नायन वन की अभिन

हे मी अधिक शक्तिशाली शोकाग्नि को उन्होंने धारण किया।
'हा यस्त' 'हा यस्त' के मन्त्र वे जपते जाते थे।

अर्जुन त्रिगर्भों के संभ्राम में गया था। पीछे शत्रुओं ने धीमनोरम काल में ही अभिमन्यु का वध कर दिया। इस पर अर्जुन ने अपने अग्रजल में स्नान कर पुत्र शोक की अग्नि को अंतर में धारण कर तथा गायत्री को सुभा के समान माँजकर अयत्रय के वध का अभिचार-मन्त्र प्रारंभ किया जिसमें वध का मंत्र था, 'हा पुत्र, हा यस्त' आदि शब्द। इसमें गुरु वध के लिए दीक्षा के तुल्य व्रत लेने, सारथ्य पद का निर्देश करने एवं शोकाग्नि को प्रचंड बनाने से अंगी वीररस की व्यंजना होती है। करुण रस मध्य में सहसा आ गया है। पर अन्त में अयत्रय वध के अभिचार का इस्तेमाल होने से शौर्य का ही निर्वाह है। अतः मातृ के वधबल का वधा अक्षय्य औचित्य यहाँ विद्यमान है। उसी प्रथम में शान्त, शृंगार, करुण और भीमरस के सफरीचित्य का उदाहरण जैसे —

'देखो, मन्द पुरुषों के हृदय स्त्रियों के तीक्ष्ण कटाक्षों से चूत एवं संसार के रागी बनकर काष आदि कुरोगों के असह्य पावों की तीव्र व्यथा वे व्यथित रहते हैं। कृमियों की माँति अपने अंग से ही अत्यन्त हुए पुत्रादि उन्हें स्नेह के कारण चिपट कर आप बालते हैं। सासारिक वस्तुओं की शय्या पर पड़े हुए वे अनेक कष्ट भागते हैं।

यहाँ अंगी रस है शान्त। उसी के वरपन के रूप में स्त्रियों के कटाक्षों से हृदय के चूत होने, व्याधा पीड़ित बनने तथा पुत्रों की स्नेह दान कृमियों से समठा देने आदि का गीत स्वर संचालन है। ये गाय शान्त रस के ही सुजावेची हैं। सेव्यों की माँत उनका वृत्ति सीमित है। इस प्रकार भाव-व्यंजना में परम औचित्य के दखन होते हैं।

अप आगे ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं जिनमें रसगत औचित्य नहीं मिलता। शृंगार और शान्त के संछर में यह अमरक कवि का पदार्थ है। —

'यदि जाना निमित्त ही है तो जैसे जाना, शीघ्रता क्या है। हा तीन फरम चलकर लड़े हो आशय, जबतक मैं सुखाय मुँह देखती हूँ। यह जीवन पटी के केद में से

बहते हुए पानी के समान है। कौम जानता है, बाद में मेरा सुन्दारा संगम हो या न हो।

इसमें प्रकृत-रस शङ्कार है। 'जब तक मैं मुँह देखती हूँ।' वाक्य की छकछटास उसी की परिपुष्टि भी की गई है। उसका विरोधी शास्त्र-भाव यहाँ बंग है। पर संसार की अनित्यता के कारण से जो वराह्य प्रतीत होता है उससे रतिमाय तिरस्कृत हो जाता है और उससे बड़ा अनौचित्य आ जाता है। संसार की असारता एवं अचरिता के भयान से कठोर चित्त जागो का भी छसाह भंग और उदासीनता हो जाते हैं। पुण्य के समान कौमल्य चित्त वाले विद्वानों का तो फिर कहना ही क्या। अन्त में शान्त-रस का परिपोष दिलाकर यहाँ और भी वैरस्य उत्पन्न हो गया है। आचार्य आनन्दबोधेन ने यही कहा है —

‘कोई माय विरोधी हो या अविरोधी, अन्य रस के बंगी होने पर उसकी पुष्टि नहीं करनी चाहिए। इसी से अविरोष होता है।’

इसका उलटा उपर्युक्त पदार्थ में हो गया है। इसके विपरीत अंगी रस का विरोधी भाव भी यदि परिपुष्टि न हो तो प्रधान का उपरोम नहीं होता। उदाहरण के लिए राजशेखर का निम्नलिखित पद्य लीजिए।

‘मान छोड़ो। अपने प्रिय पर कटाक्ष पूर्ण दृष्टि डालो। वीन स्तना का स्तम्भकारी शीघ्र पञ्च वा छ दिन ही है।’ कोयल के इस मज्जुल स्वर के बहाने से अत्र महारसव ने कामदेव की प्रवक्तृ आज्ञा माना दे बाकी है।

इस काव्य में मुख्य रस शङ्कार है। यही भारष्म से अन्त तक व्याप्त है। पर ‘शीघ्र पञ्च वा छ दिन ही है।’ इस वाक्य से अनित्यता रूप शास्त्र रस की धृष्ट उसके मध्य में गिर गई है। फिर भी वह नीरस नहीं बना क्योंकि विरुद्ध रस का परिपोष नहीं हुआ है। विरुद्ध भाव के धर्पण के अनौचित्य से तो गह्वे में गिरे हाथी की मौंठि प्रधान भाव फिर उठ नहीं सकता। इस प्रकार से रस के संकर स्वतः में औचित्य का विचार विद्वानों को करना चाहिए।

रसौचित्य के विचार के अन्तर उद्देशानुसारी क्रम से क्रिया पद के औचित्य को अब दिलाया जाता है —

क्रियापद औचित्य

(१३) का०—सत्पुरुष की मौखिक काम्य के गुण दृष्ट (जन्म बर्बाद व्यवहार) और साधुता सभी अच्छे लगते हैं जबकि उसकी क्रिया उचित हो।

वृ०—क्रियापद यदि औचित्यपूर्ण होता है तो काम्य के साधुर्ग आदि गुण, वसन्त विकास आदि जन्म और साधुता वसी प्रकार अच्छे लगते हैं जिस प्रकार भोग कर्म करने से सत्पुरुष के विनय आदि गुण, व्यवहार और साधुता (मङ्गलमनसाहृत) आदि अच्छे लगते हैं। क्रियापद के औचित्य का उदाहरण मन्त्रकार की अपनी नौतिकता पुस्तक का यह पद्यांश है —

‘जो सात समुद्रों पर सम्मार्चन करने के कारण अपने बैग के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें अपने बाहुद्वय से बुन्दुभि राक्षस का शरीर कंकाल बना दिया था, मायावी दानव को पीसकर जिसने पाताल को खिच से मर दिया था, वह सुमीव की अच्छी से अच्छी संपत्ति को छट करने वाला बाली क्या तुम्हें याद है ?’

इसमें शुक और सारिका पक्षी को दुनव के मार्ग से हटाने के लिए उपदेश दे रहे हैं। वहाँ ‘क्या तुम्हें स्मरण है’ इस क्रियापद से ‘आप न, वक्त के एक क्षण में बाँझर बाग़ में रख लिये थे’ यह उचित रूप से व्यक्त हो जाता है।

मीश्वरसेन के इस पद्यांश में यह औचित्य मही मिलता —

‘समुद्र ५ धन से पहले विना पारिजात का स्वर्ग, कीरतूम तथा लक्ष्मी से शून्य विष्णु के वृक्षरथ और बाण चक्रमा से शून्य शिव के अटामार का मैं स्मरण करता हूँ।’

यह उचित काम्यवान की है और प्रकृत्य गुणों के कथन का यह प्रसंग है। पर क्रियापद से शरीर के केवल अटानर्जित होने की व्यंजना हुई है। पौरुष के धारक का उल्लेख जो उचित था, मरिचिद मही हुआ।

कारक का औचित्य

(१०) का०—यैसे दुःख का व्यापक ऐश्वर्य उदारचरितों से शोभा समान होता है वसी प्रकार उचित कारकों से साम्यय बना काम्य हो।—१३

शोभा पाता है। कर्मपद का औचित्य महाभाष्य के इस पदार्थ में देखिये—

‘राजन्, तुम्हारी रिपु स्त्रियों का स्नान युगल क्रम स्नान होकर, इन्द्र की शोकाम्नि के समीप में बैठकर और विमुञ्च-हार (आहार जोड़कर तथा मोतियों के हार संशुभ्य बनकर) बनकर अवसा करता है।’

यू०—यहाँ कहा जा रहा है कि शत्रु स्त्रियों अवसर करती हैं पर उसके स्वाम पर ‘स्नानयुग ही बाष्पसंश्लिष्ट में स्नान कर शोकाम्नि का समीपवर्ती बनकर और आहार या हार स्थापन कर अवसर करता है’ यह कहा गया है। इसमें कर्मपद का विलक्षण प्रयोग है और उससे औचित्य की दृष्टि होती है।

परिमल कवि के इस पदार्थ में उक्त औचित्य नहीं है—

‘हे मातृवर्तिह, गुर्जरपति न भोजन करता है न वस्त्र पीता है। स्त्रियों का सेवन उसमें जोड़ दिया है। अन्य विपत्तियों का भी त्यागकर वह बाह्य पर सोता है और प्रचरक धूप का सेवन करता है। मानो यह सब तुम्हारे परम कमलों के मूलि-कणों का प्रसाद पाने के लिये करता है।’

यहाँ प्रतिपाद्य यह है कि गुर्जरपति मागकर मरुस्थल में जाता गया है। उसने आहारपति सब छोड़ दिये हैं और प्रचरक धूप का सेवन करते हुए वह उपरजर्मा करता है। इसमें तथ्य निवेदन का लक्षण है। इस प्रकार यहाँ कर्ता का प्रयोग नहीं हुआ कि कुछ विशेष अभिप्राय के लिये प्रतीत होता। शत्रु के मय से डरकर मरुस्थलों में घूमते हुए, विषम माग परिभ्रष्ट वह और क्या करता? स्नानयुग को कर्ता बनाकर औचित्य का जैसा प्रथम पक्षे पदार्थ में विद्यमान है वैसा इसमें नहीं है।

कर्मपद का औचित्य

मह्यकार की ‘लावयववती’ पुस्तक के अधोवृत्त पदार्थ से दिखाई देता है—
‘हे राजन्, तुम्हारी सबवार में स्वयं वार’ का शेष।

१—यह भी इसी के द्वारा उसवार के पुरुषों के लिए ऐसे पदार्थ का प्रयोग किया है जिससे उसमें अपने पुरुषों के अतिरिक्त ठप्पेपन की भी प्रतीति है। यह चिह्नित पदार्थ विषयक है—वार = उसवार का काटने वाला पैना याव और जब का बहाव।

२—दीप्त पैना वन और ठंडक।

वर्तमान है वह बादलों जैसा कमकठा है और 'समाप्तियों' के धरे-धरे कण्ठों को गिराता हुआ बहता है। शीर्ष के कानों के क्षिप नूतन कमल पत्रों जैसा वह है। फिर भी आश्चर्य है कि शत्रु के क्षिप अक्षती भाग का सा संताप देता है।^१

इस पद्यार्थ में श्लेष की सहायता से तलवार के गुणों का वर्णन ऐसे विधायक शब्दों से किया गया है जो एक ओर तो उसके पैनपन आदि गुणों का प्रस्तुत कर रहे हैं दूसरी ओर इसमें वह ठंडक बढ़ता आदि गुणों का संकेत देते जाते हैं। अतः 'आपातव' तलवार शीतल है यह प्रतीत है ता है फिर भी वह शत्रुओं को संताप देती है यह आश्चर्य जनक वैचित्र्य है। शीतल सामग्री से संताप जैसे गर्म पदार्थ का जन्म होता है यह रुचिर औचित्य इससे आया।

यही बात प्रत्यक्ष के अपने 'अवसर सार' पद्य के इस पद्यार्थ में नहीं है।

'हे सुवननाथ, अग्नि जैसा आपका प्रताप भरोड़े शत्रुओं की श्वासों से बढ़कर और काष्ठाभयण (विशाघों में फैलना और लकड़ी का सहारा लेना) से और भी विगुणित होकर मारे गये शत्रुओं की क्षियों को संताप देता है।'

यहाँ राजा का प्रताप मागने वाले शत्रुओं के श्वासानिल से प्रज्वलित होता है और विशाघों में फैलकर ईषन से प्रदीप्त अग्नि की मूर्ति प्रोढ़ बनता है। बही फिर शत्रु कान्ताओं को संताप देता है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है? यहाँ रुचिर औचित्य कुछ भी नहीं है।

करुणकारक का औचित्य

गीत कुम्भकार कवि के नीचे लिखे पद्यार्थ में दिखाई पड़ता है।

'इनुमान बानर ने समुद्र तटपन के समय अपनी पूँख से सूर्य का घेरा बाँध दिया सिर से चन्द्रमा को धूँ बाँधा, सदाओं से बादलों को कपा दिया और बादलों से धारों को बलाह लिया। देखते ही देखते वह समुद्र को काँप

१—'समाप्त' घटा और बर्त।

२—'दड़क'—देना और पिताये।

गया। उसके निर्मुक्त अट्टहास की गर्मियों से छेहरा का बड़ा बड़ा प्रतापानल शान्त हो गया ।

यहाँ बताया गया है कि इनुमान ने समुद्र लंघन के समय अपनी पूँछ से सूर्य का चेरा बाँध दिया, मौखि से चन्द्रमा का स्पर्श किया सटाओं से बाढ़ों को कपाया बाढ़ों से तारों को सलाह दिया और अट्टहास की तरंगों से राक्षस की प्रतापानि को शान्त कर दिया । इसमें करण कारक अनेक हैं । इससे इनुमान के अट्टहास की शोचता होती है । विमयानुभूति के शिखर पर चढ़ने के वे सोपान में बन जाते हैं । फल यक्ष श्रीराम के विषय की ध्वजा के समान इनुमान का औचित्यातिशय इससे मकट होता है ।

बाण भट्ट के इस पद्यार्थ में इस प्रकार का औचित्य नहीं मिलता ।

‘मृसिह भगवान् की मय हो बिम्बोंने मेदम करने की इच्छा से शत्रु के वक्षस्वज पर जो कोपाकृष्ट दृष्टि चय भर के लिए छाड़ी तो उसे ऐसा बना दिया कि मानो वह मय से ही फट गया हो ।’

इसमें बताया गया है कि मृसिह भगवान की कय भर की कोपाकृष्ट दृष्टि से हिरण्यकशिपु का वक्षस्वज स्वयं मानों मय से फट गया । यहाँ प्रधान नायक मृसिह भगवान् हैं । प्रति नायक है हिरण्यकशिपु । उसे उत्साही पराक्रमी और धैर्यशील दिखाने से ही प्रधान नायक के प्रतापोदीपन के लिए व्यकरण का काम हो सकता है । ‘मय मात्र से ही वह फट गया’ ऐसा कहने से हिरण्यकशिपु की पुर्नकता द्वारा मृसिह भगवान् की दृष्टि का महत्व कम हो जाता है । यह औचित्य करण कारक से संलग्नित है ।

सम्प्रदान गत औचित्य

भट्टप्रमाकर के इस श्लोकार्थ में विद्यमान है ।

‘दिग्गजों तक पैसी पूष्पी की साथ समी करते हैं । यह कहते हम रोमांचित हो जाते हैं कि परशुराम ने उसी पूष्पी को सिद्ध कर लेने के बाद एक माछण को दान में द बासा । उन्हें प्रणाम है । यह अद्भुत कहा जहाँ से प्रादुर्भूत हुई उसी में अस्त हो गई ।’

विस्तृत पृथ्वी को प्राप्त करने की सब साध करते हैं। परशुराम ने इसे सिद्ध कर आज भुवि की भौति त्रीहासी में एक ब्राह्मण को दान कर दिया। इस निरतिशय भौचार्य के आचरण के समस्तकार से ऊँच भौचार्य का जन्म होता है जिसका अनुभव करते हुए हम भी रोमांचित हो जाते हैं। और क्या इन महात्मागी भार्गव को प्रशाम है। इस वाक्यार्थ में ब्राह्मण को यह एक वचन के सम्प्रदान में समस्तकार के विरोध करण्य की प्रतीति है।

राजशेखर के इस पचार्य में वैसी बात नहीं।

‘भौतस्त्व मेम के साथ वाचना करते हैं। यह सुनकर मन प्रसन्न होता है। परन्तु शिष से प्रमाद में प्राप्त हुआ यह परशु देने की वस्तु नहीं, इससे बहुत खेद होता है। इसलिए हमारी ओर से इरानन को कहना कि हमने ब्राह्मणों को तो पृथ्वी दे बाकी। अब आकारा और पाठाक्ष में से बीतकर उन्हें क्या प्रदान किया जाय ‘कई’।’

रावण का दूत उसके शिष भार्गव से परशु माँगता है। इस पर वे उत्तर देते हैं कि शिवजी से प्रमाद में प्राप्त हुआ यह परशु देने योग्य नहीं है। इसलिए हमारी ओर से इरानन को कहना कि पृथ्वी तो हमने करण्य को दान करदी। तुम्हें आकारा पाठाक्ष में से क्या बीत बीतकर प्रदान की जाय। इसमें लोकहित में प्रवृत्त मुनि का त्रिहोकी के शिष कंक भूत रावण को इतना बड़ा दान देना अनुचित है।

अपादन गत भौचार्य

प्रासव छत्र के निम्नलिखित पचार्य में देखिए —

‘बादल इस समुद्र से हो जल की कुछ परिमित कणिकायें लेकर आकारा को घेर लेते हैं और पृथ्वी को असाध्यकृत कर देते हैं। विष्णु भी इसीमें घूमते हुए मन्दराचल के शिखरों के परस्पर संपर्क को देखकर भयभीत भेगों वाली एक जल मानुषी को प्राप्त कर भीमान बन गए।’

जैसा कि पचार्य में कहा गया है, इस समुद्र से कुछ परिमित कणिकाओं को प्राप्त कर बादल संसार भर को जल से भर देते हैं और इसी से समुद्र मंथन के समय घूमते हुए मन्दराचल के शिखरों के संपर्क से भयभीत पानी एक जल-मानुषी को लेकर विष्णु भीमान बन गए। इससे सागर के करण्य की व्यथना होती है। इस

अनीचित्य की मूल भूमि है, 'इस समुद्र से' इतना अपादान कारकत्व पड़।

महेन्द्रराज के निम्नलिखित पदार्थ में अपादान कारक में अनौचित्य प्रतीत होता है —

'इस महारथ ने चारों ओर की नदियों के मुँह से जल लेकर क्या किया ? उसे तारा बनाया, वज्रवाणि में जलाया और पाताल की गहरी गुफा में छिपा दिया।'

यहाँ महारथ के कहाने से अभ्याय से घन एकत्र कर घुरी भौंति व्यय करने वाले तथा सत्त्वों में घन व्यय न करने वाले किसी व्यक्ति का वर्णन है। नदियों के मुँह से जल एकत्र कर अपात्रों को उसे दे डालने के दोष का उल्लेख है। 'पर नदियों में' यही करना उचित या उसके स्थान पर नदियों के मुख को अपादान बनाने में मूल शब्द निरर्थक हो जाता है। अतः अपादान-कारक गत अनौचित्य यहाँ विद्यमान है।

अधिकरण्य कारक का औचित्य

कालिदास के कुन्तेरवर दौत्य प्रम्य के इस पदार्थ में निम्नता है।

'यहाँ पर्वतों का मूर्धन्य मेरु निवास करता है यही पर सारों समुद्र अपना अपना मार रके हुए हैं। यह वरदितक शोपनाग के फल के लों में पर विराजमान है। हमारे जैसी का यही स्थान उचित है।

किसी महाराज का दूत उसके सामन्त के यहाँ गया। वहाँ उसने अपने स्वामी के समुचित पूजाई स्थान पाया। फिर कमी कार्य-वश भूमि पर ही बैठना पड़ा तो अपने गौरव की रक्षा करता हुआ प्रगल्भता के साथ कहता है कि हमारे जैसी के लिए शोप नाग के फलों पर स्थित अतः अजिग पथ्यी पर ही उचित आसन हो सकता है। यही पर सारों समुद्र तथा मेरुपर्वत स्थित हैं। वही के मुख्य हम हैं। यह भाव का औचित्य अधिकरण्य कारकगत औचित्य से सम्बन्ध है।

परिमल के निम्नलिखित पदार्थ में यह औचित्य नहीं है।

'हे देव, आपका भूय में उचित चित होकर इतने दिन यहाँ ठहरा यहाँ आपका प्रताप सुन्दरियों के कंपायमान स्तन पटों पर हाँसे को जलायमान कर देता है।'

इसमें कहा गया है कि मैं आपका सेवक उस देश में ठहरा जाऊँ आपका प्रतापसुन्दरियों के कांपते हुए स्तनों पर हाथों को बलाममान बना देता हूँ, इस कथन से शौर्य और शृङ्गार का गुणोत्कर्ष व्यक्तनीय है पर अधिकतर कारक के प्रयोग से सर्वत्र विराजो में फैलने वाले प्रताप को सीमित कर दिया गया। इससे व्यंग्यार्थ यही आता है कि वह सेवक किसी एक सीमित प्रदेश में रहा जाहाँ पर उसके स्वामी का प्रताप विद्यमान था अन्यत्र नहीं। यदि राजा का प्रताप सर्वगत है तो 'सर्वत्र ही मैं ठहरा' यह कहना चाहिये था। इस पर किसी एक देश का बख्सेल करने से सीमितता आती है। किसी एक स्थान में तो जोर का भी प्रभाव बढ़ा बढ़ा हो सकता है। यह अनौचित्य अधिकतर गत है। कहना यह चाहिये था कि 'मैं वहाँ-वहाँ ठहरा जाँऊँ-जाँऊँ आपका प्रताप था'। स्तुति के उचित यही है।

सिगौचित्य

(२१) का०—जिस प्रकार साधारण सूचक शुभ लक्षणों से शरीर मध्य मन आता है वही प्रकार उचित द्विग के शब्दों का प्रयोग करने से काव्य में विशेष आकृति आ जाती है। उचित द्विग से चात्पर्य प्रसंगोचित द्विग के प्रयोग से है। वही से काव्य मध्य बनता है। वैचित्र्य प्रकार की 'ललितरत्न माला' का यह रसोक्तार्थ—

'वह निद्रा का स्पर्श भी नहीं करता। वृद्धि को त्याग चुका है। कहीं भी स्थिति नहीं कर पाता। लम्बी कथाओं का व्यवहार समझता है। निद्रा/च उसे किसी भी प्रकार से नहीं मिलती। रत्नावली की आराधना करता हुआ उसके गुणत्वप और जप ध्यान में इतना निरसंग हो गया है कि दूसरी अंगना का नाम भी उस सदा नहीं।'।

यहाँ रत्नावली के वियोग से दुखी चक्षुष की काम वशा की सूचना विदूषक सुसंगता को दे रहा है। अन्त में कहा गया है कि उस दूसरी की का नाम भी सदा नहीं है। इसके लिये निद्रा, वृद्धि, स्थिति, दीर्घ कथा निवृत्ति आदि जिन-जिन वस्तुओं का उसने त्याग किया है वे सभी स्त्रीलिंग में हैं। इनमें स्त्रीत्व का अभ्याराप किया जा सकता है। 'अन्त' हेतु वस्तुओं के द्विग स्त्रीलिंग का प्रयोग यहाँ आवश्यक समुचित है।

उन्हीं की 'जीतिलता' के नाचे लिखे पद्यार्थ में उक्त औचित्य विद्यमान नहीं है —

'वरुण से रण लेने में समर्थ, स्वर्ग का मंग कर देने से कृतार्थ, यमराज के नियंत्रण में सक्षम, वायु को चलाव फेंकने में संतान, कुबेर की सृष्टि बर कर देने का उद्यत तथा अग्नि के दहन के लिए प्रचण्ड मेरी मुन-मंढली किसी मानव से लड़ने में क्षमिग होती है।'

यहाँ रावण अंगद के विरुद्ध से कोषित होकर इसके उचित अपना बलशाय प्रकट कर रहा है। 'वरुणादि लोकपालों के बलवर्ष का विध्वंस करने वाली मेरी मुन-मंढली मानव से लड़ाई करने में क्षमिग होती है।' यह उसने कहा है। लज्जा का कारण मानव युद्ध की क्षमता है—यह अभिप्रेत है। पर 'मुन-मंढली' में औचित्य बावक शब्द रख देने से त्रिकाकी की बिम्ब के कारण उसका प्रभाव जो प्रचण्ड बना का उसकी कठोरता आवी रही। अब तो ऐसा लगता है कि मुन-मंढली मानों अपनी कोमलता के कारण क्षमिग होती है। यह खी बन गई। इस प्रकार यहाँ क्षिगगद औचित्य आया।

बचन गठ औचित्य

(२२) का०—काव्य में आरुता उचित बचनों के प्रयोग से आती है जैत अहीन और उदार अंग-करण वाले विद्वानों के मुख उचितबचनों के प्रयोग से सामान्यमान होते हैं। दृ०—जिस प्रकार विद्वान का मुख वाचना रहित, उचित सुन्दर एवं प्रिय शब्दों का प्रयोग करने से अच्छा लगता है उसी प्रकार काव्य भी एकवचन, द्विवचन, बहुवचन आदि भाषा बचन के समुचित प्रयोग से समशील बन जाता है। उदाहरण में प्र बकार की जीतिलता का यह पद्यार्थ है।

'गौडस्य ने त्रिकोणी पर अनेक आक्रमण किए हैं, योद्धाओं की अनेक विषय की है; असंख्य रत्नों की मासियों की हैं, युद्ध रूपी समुद्र में लक्ष्मों के अनेक स्वयंवर होते हैं और बली पुरुषों के बहुत से आश्रय अनेक नैनन किए हैं। इनके लिए यह प्राक्यात है। फलतः एक बार ही के अम से निद्रा में डूबने वाला पिप्पल पर वह जित्त हैसता है।

पृ०—यहाँ दृष्ट और सारिचार्य खुपति के आगे रावण के पराक्रम का वर्णन कर रहे हैं। शेषशायी पिप्पल एक बार के उद्योग के मम

से ही निद्रा के व्यावस्थ में आकर समुद्र में जा छोटे हैं पर पौलस्त्य त्रिलोकी के अनेक आक्रमणों, विजयी योद्धाओं पर बहुत से विभव, अनेक राज्यों की प्राप्ति, समरूपी समुद्र से बहुत मार विजयानों के स्वयंवरों तथा शोकपाश आदि बलवानों के अनेक मार बन्धन कर लेने के बाद भी सदा आनृत एवं सोमसाह बना रहता है। इसीलिए वह बिष्णु पर हैसता है। यहाँ रावण के कर्मों का बहुवचन तथा बिष्णु के कर्मों को एकवचन में कहकर दोनों के मित्र का औचित्य व्यक्त किया है।

यही गुण मातगुण के निम्नलिखित पदार्थ में नहीं मिलता।

‘स्वामिन, रात्रि के मुख सरोज का राजहंस और कारमरी तटस्थी के कपोतसम के तुल्य शरीर वाला वह चम्पूसा नहीं है। यह तो आकार में चमकने वाला दुर्ग सिन्धु के केमपिरक की मूर्ति रहैत आपका यश है।’

इसमें कहा गया है कि वह चम्पूसा नहीं है बल्कि दुर्गपिर के केम पिरक की मूर्ति रहैत राजा का यश है। यश का प्रचार अनेकत्र होता है, अतः उसका बहुवचन से वर्णन करना चाहिए। एकवचन के प्रयोग से तो यश का स्वरूप चम्पूपिरक के आकार का सीमित हो जाता है।

विशेषऔचित्य

(२३) का०—समुचित विशेषणों से विशेषित होकर काव्यात्म वेदा रमणीय हो जाता है जैसा गुणी मित्रों से सम्बन्ध।

दृ०—काव्य के मुख्य अर्थ की शोभा विशेषणों द्वारा ही होती है जैसे गुलशानर ससुरूप की शोभा गुलशानी मित्रों से होती है। अष्टादश प्रत्यकार की सुनिपत मीमांसा का यह अर्थ है।

‘यैत्र मास के महीन यौवन मरे वचन, आमोद-पूर्ण कमलितनी, चौदनी की चादर ओढ़ राजों की अटारियों के महल रमणीय सुप्रतियों यह सब सुन्दर हैं। वे किसे प्रिय नहीं हैं। पर जिसमें इनका भोग होता है वह भीषण तो मिट्टी के कच्चे घड़े जैसा निम्नवर्गी है।’

महाराज सुप्रतिष्ठ को महान् विभूतियों प्राप्त हुई हैं। मय दानय क बलाय इन अखिलय समा-भवन पर उन्हें अभिमान भी है।

इस पृष्ठ भूमि में उनके विमल का वर्णन करते हुए समस्त पदार्थों के अभाववाचक का उपदेश देने वाले महामुनि व्यास के आश्रम को इस पदार्थ में विचार किया गया है। वसन्त में अपने पूर्व धीमन के साथ सिद्धे हुए उपवन, मकरन्द की सुगन्ध से परिपूर्ण कमलिनीयों, चाँदनी में चमकने वाले अद्भुतिकाओं वाले मङ्गल तथा रमणीय सुमतिर्यों पे सज्ज सुन्दर हैं तथा सभी को प्रिय हैं। पर जिस जीवन में इनका भोग किया जाता है वह तो मिट्टी के कच्चे घड़े की भाँति निस्तार होकर नश्वर है। यहाँ विरोधियों द्वारा विरोधियों के उत्कर्ष को बढ़ाया गया है। वसन्त अन्त में निस्तारता और निर्धन की व्यंगना करने वाला औचित्य सिद्ध होता है। यही विरोधता मनुष्यद्वन्द्व के निम्नलिखित पदार्थ में नहीं है।

‘बड़े-बड़े ताक्षक संकट में पड़ कर दीप्प अशु से द्रोप एवं वर्षा अशु की याचना करें। पर समुद्र को इन दोनों का विचार भी नहीं आता। उसकी कोख में मन्नाचल छोटी-छोटी मङ्गलियों की भाँति धूमता है और इससे उसका पेट का पानी भी नहीं दिक्ता।’

यहाँ बताया गया है कि संकट में पड़ कर बड़े-बड़े ताक्षक वर्षा से द्रोप करते हैं और अन्नदाता की याचना करते हैं। पर समुद्र इतना महान है कि उसे इन दोनों की कोई चिन्ता नहीं। उसकी तो कुक्षियों का अन्न अक्षयमान अन्नाचल से भी नहीं दिक्ता था। इसमें ताक्षक के दो ‘विरोध संकट में पड़ कर’ तथा ‘बड़े-बड़े’ परपर विपरीत है अतः अनुचित हैं। जो संकट मत्त्व है वह विस्तीर्ण नहीं हो सकता। यदि कहा जाय कि कोई ताक्षक स्वभाव में संकटापन्न तथा आकार में विस्तृत है तो यह बात भी युक्ति संगत नहीं क्योंकि ताक्षक कीसी मिश्रवेदन वस्तु का स्वभाव नहीं हो सकता।

उपसर्गौचित्य

(२४) का०—योग्य उपसर्ग के योग से काव्य का अर्थ इसी प्रकार और अधिक बढ़ जाता है जैसे सम्मार्ग के आश्रय से संपत्ति।

का०—काव्यगत सुक्ति ‘उप’ आदि उपसर्गों से और अधिक सुचारु बन जाती है। जैसे सम्मार्ग के गमन से विमूर्ति। उदाहरण के लिए मन्वकार की ‘सुनिमल भीमांसा’ का निम्नलिखित पदार्थ देखना चाहिए।

‘आय्य विपय्य हो जाने से जब व्यक्ति सुख के चक्कर शिखर से गिर जाता है तो वह अग्नि में गले हुए कोड़े की भाँति कर्मय्य बन जाता है। वह आचार का पावन करता है। अभिमान छोड़कर वैराग्य ले लेता है। साधियों का भोग हो जाने ॥ उसका उत्तुङ्ग अभिमान गल जाता है तथा वह तप करना चाहता है।’

घोष यात्रा के अवसर पर गन्धर्व बन्ध के कारण दुर्योधन का अभिमान घट्न हो गया था। वह अपने बड़े-बड़े राज्य को छोड़कर तप करने को उद्यत हुआ। उस समय के उसके आग्रह का इसमें मर्जन है। वैभव के भण्ड हो जाने पर सुलभष्ट व्यक्ति सदाचार का पावन, मद्र का त्याग, वैराग्य का समाभयस्य तथा उत्तुङ्ग अभिमान को गला देने वाला तप आदि सब कुछ करता है। ऐसी दशा में अधिकतर वह गले हुये कोड़े के समान कर्मय्य बन जाता है। यहाँ अभिमान को उत्तुङ्ग करने में जो उत्पत्तिसर्ग का प्रयोग हुआ है उससे दुःख शब्द का स्वाभाविक अर्थ ऊँचा विगुणित हो गया और उसके पञ्चस्वरूप मद्र और अभिमान की अभिव्यक्ति में एक प्रकार का औचित्य आ गया।

हुमार दास के इस पद्यार्थ में उक्त औचित्य नहीं मिलता।

‘हे नय संगम भीरु सुन्दरि, गाढ़ आश्रितन का त्याग करो।
प्रियतम को छोड़ो। अरुण की फिरसों का चरम हो चुका
है और मुझे बोल रहे हैं।’

यहाँ पति के नवीन संगम में व्यस्त किसी नायिका को संबोधन दिया जा रहा है। प्रमाद संख्या में अरुण चरित हो गया है और मुझे बोल रहे हैं। इसमें ‘बोल रहे हैं’ के लिए ‘सम्प्रवर्त्ये’ क्रिया का प्रयोग है जिसमें ‘वम्’ और ‘प्र’ दोनों उपसर्ग निरर्थक हैं।

निपातौचित्य

(२५) अ०—वर्णित श्यामों पर नियुक्त किए गए सधियों से जैसे राज्य व्यपस्या टोक हो जाती है वही प्रकार निपातों का वर्णित श्यान पर प्रयोग करने से काव्य की अर्थ संगति शोभनतर बन जाती है।

का०—संस्कृत के 'व' आदि मिथ्याओं से ललित स्वाम पर रख देने से काव्य की अर्थ संगति असंदिग्ध हो जाती है जैसे मगधकार की 'मुनिमत मीमांसा' के इस पद्यार्थ में ।

'अथ मुनि के लोग स्वर्ग सुख की कामना से सैकड़ों बड़े-बड़े पक्ष करते हैं । उनका स्वर्ग में बहुत-सा समय बीतता भी है । पर वह आधे दुःख के समान होता है । पुण्य वन के सीमा हो जाने पर वहाँ से नहीं ठहर सकते जैसे कमी लोग इष्ट की समाप्ति पर बेरपा के घर नहीं रुक पाते । इसलिये मोक्षसुख का सहारा लेना चाहिये । अरे बही सत्य है, बही नित्य है ।

इसमें स्वर्ग-सुख को बेरपा भोग की भाँति अवसान में निरस एवं बेबल तथा मोक्ष-सुख को निःसंदेह एवं निश्चित बताया गया है । इसमें 'अरे' मिथ्या का प्रयोग ललित स्वाम पर होने से वाक्याप में भीलित्य आगया है ।

भी बाल कवि के इस पद्यार्थ में वैसी बात नहीं है ।

'आप यद्यपि सब कुछ जानते हैं फिर भी मैं नीति की बात कहता हूँ । आकाश के राजा से, जो आपका बान्धव है, संबंध स्थापित कर निश्चित हो जाइये । फिर श्लेष्मों का विनाश, अपने अपरा का निवारण, बिस्व भर में धरा का विस्तार तथा समुद्र पथल कैसी हुई पृथ्वी पर से कर प्राप्त कीजिये ।

यहाँ राजा की स्तुति का प्रसंग है । आप सब कुछ जानते हैं फिर भी इस अर्थ के लिए कवि ने 'देवो जामाति सर्व यदपि व तदपि' वाक्यांश प्रयुक्त किया है । इसमें 'यदपि व तदपि' के मध्य में आया हुआ और अर्थ वाक्ता 'व' निरर्थक है । एक से अधिक वाक्यों के संयोग में 'व' सार्वक होता है । यहाँ ऐसा कुछ नहीं है । यहाँ तो 'व' की स्थिति ऐसी है जैसे किसी छत्तब की ओनार में अपरिचित अनिमज्जित व्यक्ति का पक्ष में बैठ जाना । यही अनुचित है ।

कासीलित्य

(२६) का०—वाक्य में जब अज्ञोचित अव का संनिवेश होता है तो वह ऐसा सुन्दर लगता है जैसा अयसरोपित घेप स सत्पुरुषों का शरीर ।

प्रत्यक्षर को 'मुनिमत मीमांसा' का यह पचाव इसका उदाहरण है ।]

'जो श्राद्धों का शिशु, दूध दही का चोर और कर्तव्यों
 बुझने वाला या, उसी का जब भोग आज जगत्सर्व,
 शीर' मुरारि, हरि, श्री वात्संक आदि आदि नामों से स्तुति
 कर कामों को मरे जात रहे हैं ।' परिवर्तन करने में निपुण-
 काल की पाकक्रिया कितनी आवश्यक बनक है ?

अमर्ष को प्रकट कर मरने वाला शिशुपाल यह कह रहा
 है । वहाँ 'या' मृतकाल की क्रिया से आश्चर्य का परिपोष होवा है
 और अभिषेक रूप को वापस है उनका औचित्य सिद्ध होवा है ।

कवि मातङ्ग कुम्भध्व के नीचे लिखे पद्यार्थ में भी वैसा
 औचित्य है ।

'कुम्भी के पुष्प गिर रहे हैं । वृष पुष्पोद्गम के मारे अक्स
 हो रहे हैं । कोयलें स्वर को मन में रखती ही हैं, बाहर नहीं
 पैदाती । सूर्य की किरणें शीत के बहावे का छेदन तो
 करती हैं पर बकान देने वाली प्रीतिवा अमी उनमें नहीं
 जा रही ।'

बसंत आरम्भ हो हुआ है । उसमें लयीन रसों के अन्धास से
 कामजाय छकंडा की अनुमति होती है । इसके लिए ऋतु संधि के
 इस प्रकृति घटने में परंप्रान काल की क्रियाओं के प्रयोग द्वारा इन्द्र
 संवाद सुन्दर औचित्य का पुच्छ होता है ।

भारद्वाजिहिर ये इस पद्यार्थ में एक औचित्य नहीं रहा ।

'घास भास में अन्धमा लीख होकर सूर्यमंडल में प्रविष्ट
 होता है । किसी एक कला को लेकर फिर बुर बुर हो जाता
 है । जब किसी प्रकार संपूर्ण होता जाता है तो सूर्य की स्पर्श
 करता हुआ लुप्त होता है । म यह कभी कुटिलता बंद
 करता है और म कभी दीनता को बसने छोड़ा ।'

यहाँ प्रतिपाद्य यह है कि अन्धमा लीख होकर प्रत्येक भास में
 सूर्य बहबल की शरण होता है और प्रासदात्री किसी एक कला को
 लेकर बुर हो जाता है । जब किसी म किसी तरह पूरा हो जाता है तो
 सूर्य म ही स्पष्ट करता हुआ सामन निष्कलता है । इसमें कुटिलता और
 दीनता अन्धमा के दो धर्म सनावन हैं । उनके लिए परस्पर विरुद्ध

का०—संस्कृत के 'अ' आदि मिषातों से उचित स्थान पर रख देने काव्य की अर्थ संगति असादृश्य हो जाती है जैसे प्राक्कार 'मुनिमत मीमांसा' के इस पदार्थ में।

'अर्धं मुनि' के लोग स्वर्ग सुख की कामना से सैकड़ों पदे-पद करते हैं। हमका स्वर्ग में बहुत-सा समय बीतता है। पर वह आगे चण्ड के समान होता है। पुण्य धन खींच हो जाने पर वहाँ वे नहीं ठहर सकते जैसे काव्य लोग द्रव्य की समाप्ति पर घेरना के घर नहीं रुक पाते इसलिये मोक्षसुख का सहाय लेना चाहिये। अरे पाठ्य है, वही नित्य है।

इसमें स्वर्ग-सुख को घेरना भोग की मूर्ति अमरान में निरर्थक बर्बर तथा मोक्ष-सुख को निःसंदेह एवं निश्चित बताया गया है इसमें 'अरे' मिषात का प्रयोग उचित स्थान पर होने से वाक्यांश में औचित्य आगया है।

श्री बळ कवि के इस पदार्थ में वैसी बात नहीं है।

'आप यद्यपि सब कुछ जानते हैं फिर भी मैं नीति की बात करता हूँ। आकाश्वर के राजा से, जो आपका बान्धव है संधि स्थापित कर निश्चिन्त हो जाइये। फिर ग्लेश्यों का विनाश, अपने अघरा का निवारण, विश्व भर में बरा ब वित्त्वार तथा समुद्र पर्यन्त फैली हुई पृथ्वी पर से कर प्राप्त कीजिये।

यहाँ राजा की श्रुति का प्रसंग है। आप सब कुछ जानते हैं फिर भी इस अर्थ के लिए कवि ने 'वेद्योन्माति सर्वं यदपि यदपि' वाक्योश प्रयुक्त किया है। इसमें 'यद्यपि यदपि' के मध्य में आधा हुआ और अब वाला 'अ' निरर्थक है। एक से अधिक वस्तुओं के संयोग में 'अ' सार्थक होता है। यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ तो 'अ' की स्थिति ऐसी है जैसे किसी अस्त्र की ओतार में अपरिचित अनिमग्नित व्यक्ति का पक्ष में बैठ जाना। यही अनुचित है।

कासौचित्य

(२६) का०—वाक्य में जब कालोचित अर्थ का संनिवेश होता है तो वह ऐसा सुन्दर लगता है वैसे अकसरोचित रूप से सत्पुरुषों का शरीर।

प्रत्येक की 'मुनिमत मीमांसा' का यह पद्याव इसका उदाहरण है।]

'जो ग्राहों का शिष्ट, दूध दही का चोर और करसियों
चुगने वाला था, उसी को बड़ भोग भोज भगवति,
शीरि' मुष्टि, हरि, श्री यत्नांक आदि आदि नामों से स्तुति
कर व्यर्थों को मरे बाल रहे हैं।' परिवर्तन करने में निपुण-
काय की पाकक्रिया कितनी आश्चर्यजनक है ?

अमर्य को प्रकट कर मरने वाला शिष्टपात्र यह कह रहा
है। यहाँ 'या' भूतकाय की क्रिया से आश्चर्य का परिचाय होता है
और शक्ति के रूप को याच्य है उनका औचित्य सिद्ध होता है।

कवि माधव कुपकव के नीचे लिखे पद्यार्थ में भी वैसा
औचित्य है।

'कुन्नी के पुष्प गिर रहे हैं। वृक्ष पुष्पोद्गम के मारे बहस
हो रहे हैं। कोयलें स्वर को मन में रखती ही हैं, बाहर वहीं
पैलाती। सूर्य की किरणें शीत के व्याप के खेतन तो
करती हैं पर थकाव देने वाली प्रीतिवा अमी उनमें नहीं
आ रही।'।

बसन्त शरद्वर्ग ही हुआ है। उसमें नवीन रसों के उत्थास से
कमजोर अकंठा की अनुमति होती है। इसके लिए श्रुति संधि के
इस प्रकृति घटने में पर्यमान कात की क्रियाओं के प्रबोना द्वारा हृदय
संवाद सुन्दर औचित्य का पुराण होता है।

प्राणमिष्टिर ये इस पद्यार्थ में उक्त औचित्य नहीं रहा।

'मास मास में चन्द्रमा क्षीण होकर सूर्यमंडल में प्रविष्ट
होता है। किसी एक कला को लेकर फिर दूर दूर हो जाता
है। जब किसी प्रकार संपूर्ण होता जाता है तो सूर्य की स्पर्श
करता हुआ बढ़ित होता है। म यह कमी कृटिकता बढ़
करता है और न कमी दीनता को बसने छोड़ा।

यहाँ प्रतिपाद्य यह है कि चन्द्रमा क्षीण होकर प्रत्येक मास में
सूर्य मंडल की शरण होता है और प्राणवाही किसी एक कला को
लेकर दूर हो जाता है। जब किसी न किसी तरह पूरा हो जाता है तो
सुप्त ही रथा करता हुआ सामन निकलता है। इसमें कृटिकता और
दीनता चन्द्रमा के दो धर्म सनावन हैं। इनके लिए परस्पर विरुद्ध

वर्तमान काल की 'बंद करता है' तथा भूतकाल की 'खोड़ा' क्रियाओं का प्रयोग विरुद्धार्थ होने से अनुचित है।

देशीचित्त

(१७) का०—देशीचित्त भी बड़ा हृदय संघावी होता है। इससे काट्यार्थ इस प्रकार सोचा जाता है जैसे परिचय^१ कहाने पात्रा सज्जनों का व्यवहार। भद्र मणभूति का यह पद्यार्थ इसका उदाहरण है —

‘जहाँ पहाड़े नदियों की धार बहा करती थी अब वहाँ
पुष्पिन बन गया है। वृक्ष जहाँ घने थे वहाँ कम हैं। जहाँ
कम थे वहाँ घने हो गये हैं। बहुत समय के बाद देखने
पर वन और और सा लगता है। हाँ पर्वतों का पचा
स्थान सुनिवेश यह निरूपण कराता है कि यह सब सही है।’

बहुत वर्ष बीत जाने पर राम शंभू के वन के प्रसंग से हृदयक वन में आये हैं। चारों ओर वन की देखकर वे कह रहे हैं कि वहाँ पहाड़े नदियों का प्रवाह या अब वहाँ तट बन गया है, वृक्षों की घनता एवं विरक्तता परिवर्तित हो गयी हैं। इससे बहुत दिन के बाद देखा गया वन कुछ दूसरा सा लगता है। पर्वत ही इस भुक्ति को स्थिर करते हैं कि यह सब सही है। वहाँ निरन्तर की व्यस्तता के कारण परिवर्तित हुए कानन का वर्णन है। इससे हृदय संघावी देश स्वभाव के कारण नये औचित्य का शोधन होता है। रामशेखर के नीचे किये पद्यार्थ में उक्त गुण नहीं पाया जाता —

‘जो राजशेखर कवि कर्णाटी के दरानों से अंकित हुआ है;
महाराष्ट्री के तीक्ष्ण कटाक्षों से आहत बना है, प्रौढ़ आग्री के
स्पर्शों से जिसने पोष प्राप्त की है; प्रणयिनी के मूर्ध्नि से
भी विभासित रहा है। जो सौण्डर्य की तरुणियों के
बाहुपाश में आबद्ध रहा है तथा मलयकमल की मुन्दरियों
से जिसे तर्जनी से मित्रता है वही अब बनारस की
अमना करता है।’

निरर्गल भोगों के अनन्तर आने वाले रासस्वभाव का कवि ने अपने पर घटाकर वहाँ वर्णन किया है। कर्नाटक आदि देशों के

१—यौ बसे भिन्न घावस में मिलते हैं तो अपने पूर्व परिचित प्रसंगों की चर्चा करते हुए प्रेम को हृद बनाया करते हैं। अभिजाती भिन्न अपनी अपनी पकीन चरित्राचारों की प्रशंसा करते हुए एक दूसरे से मुग्ध बन जाते हैं।

इन्द्रिय-सुख का भोग कर लेने के बाद जब कवि रामशेखर का राग-मोह शक्ति हो गया तो वह बनारस जाना चाहता है। इसमें शृंगर रस में मूँदने वाली भावनाओं के प्रसंग से मुख्यभोग प्रधान दृष्टिस्थापन का नामनिर्देश पूर्वक वर्णन करते हुए एक स्थान पर केवल 'प्रणयिनी के भ्रमों से विवशित' कहना और उसमें किसी देश विशेष का नामोस्तेज न करना विद्यमान देशोचित्य को अनुचित बना देता है।

हृत्सीधित्य

(२८) का०—सङ्ख्यो के लिए पुरुषों के समान काम्य का भी हृत्सीधित्य औचित्य विशेष उत्कर्ष का कारण बनता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति का वंशपरंपरा का सभ्य औचित्य सङ्ख्यो को प्रिय लगता है वसी प्रकार काम्य का भी। आशिदास के निम्नलिखित पद्यार्थ में इसका दृष्टांत विद्यमान है।

‘जब वह विधवा से व्यावृत्त हो गया। सब राजाओं में श्रेष्ठ अपने श्वेत राजद्वार का विधिपूर्वक अपने पुत्र को देकर उसने पत्नी सहित मुनिवनों के तरुणों की छाया का आश्रय किया। सुवापे में इन्द्राक्षों का यही कुतंत्र होता है।

यहाँ बताया गया है कि इसके बाद राजा विभीष ने वृद्ध होकर अपना राज्य पुत्र रघु को सौंप दिया और आप सपत्नीक तपोवन को चला गया। इन्द्राक्ष वंश के लोग अन्त में विरक्त होकर इसी कुतंत्र का पालन करते हैं। ऐसा करने से एक पंश के भूत, मायो और वर्तमान सभी राजाओं के आचार के औचित्य का पता चलता है।

कवि पर्योवर्मे देव के इस पद्यार्थ में यह बात नहीं है। —

‘मेरी मरुत कुत्र में उत्पत्ति हुई। जो पर अभीष्ट या वह भी मिल गया। फिर भी माग्य से एक बार भी भोग भोगने को नहीं मिले।

किसी राजा का समृद्धिकाल में पत्नी से वियोग हो गया। यह अनुशास में कहा है कि मरुत कुत्र में जन्म, अभीष्टित पद की प्राप्ति आदि तो सब मिल गए पर भोग फिर भी न भोगे जा सके। वियोग ! इस शक्ति में यह अनौचित्य है कि मरुतकुत्र काम्यादिकों में प्रसिद्ध नहीं है। यहाँ पर बिना किसी उत्कर्ष वाचक विशेषण के केवल मामलात्र से उसका उल्लेख किया गया है। पहले पद में

इष्ट्याहु कुल का भी पैसा ही चलेख है पर यह इस कारण प्रविष्ट है कि वह बड़ा त्रिभुवन प्रसिद्ध है।

प्रतीक्षित्य

(१६) का०—अच्छे अच्छे प्रतीक्षित्य का शीघ्र यदि काम्य में संविद्धित होगा तो यह प्रशंसनीय बन जायगा। इससे सहस्रों के मन में इस विच्छिन्न के कारण बड़े संतोष की सृष्टि होती है। जैसे प्रत्यकार के 'मुत्तपयणी' काम्य के इस पदार्थ में —

'यहाँ पर डाक के पुस्तक वस्तुओं का धारण करते हुए, पुस्तकों की रणनीति भाग से भूषित बनकर चंचल भौतों के वस्तुओं की अचानक से होते हैं या उपस्थिति जैसे लगते हैं।

इसमें उपोचनों के योग्य प्रतीक्षित्य करने वाली वस्तुओं का वस्तुत्व है जैसे वस्तुत्व, भरण तथा अचानक का धारण करना। यहाँ अचानकों में भी वैराग्य का एक ही विमल विच्छिन्न का वर्णन करना प्रतीक्षित्य की सृष्टि करता है।

दीपक कवि के इस पदार्थ में कुछ गुण नहीं है।

'स्वामिमान्नी प्राणवान् व्यक्ति जुपाते ही तो चर पूर्ति के लिए हाथ में रखे वस्तु से डाक भिन्न पात्र लेकर किसी गाँव या पवित्र जंगल में, जिसके पासपास भाव बेठा प्राणियों की वस्तुओं का पूजा फेंका हो; द्वार द्वार पर घूम ले। यह अच्छा। पर समान कुछ बातों में प्रतिदिन दिन बनकर घूमना अच्छा नहीं।'

इसमें वैराग्य के निर्मुक्त रूप का वर्णन अभिप्रेत है पर 'सुधार' हो तो चरपूर्ति के लिए भिन्न-पात्र लेकर द्वार-द्वार घूम ले। यह अच्छा। पर समान कुछ बातों में प्रतिदिन दिन बनकर घूमना अच्छा नहीं।' ऐसा कहने से सहस्र शान्ति से निर्मल बने बिन्दु के पित्रात् संतोष का त्याग कर मुख्य कुछ बातों के द्वेष को जीतने को अच्छा अधिक व्यक्त होती है। यह अभिप्रेत है।

सर्वोचित्य

(१७) का०—अपि यदि अपनी रचना में किसी मार्मिक सत्य का उद्घाटन कर उसका प्रति सहस्रों की धारणा यह बना देता है तो यह कवि हृदय संवादी एवं प्रसन्न हो जाती है। सर्वोचित्य बन

से कवि की वक्ति इसलिये प्राण बन जाती है कि उसमें सत्य के प्रति विश्वास स्थिर होता है। उदाहरण के लिए मगधकार की 'बौद्ध-प्रदानलक्षिका' का निम्नलिखित पद्यार्थ लीजिये।

'स्वर्ग हो, पृथ्वी हो या पाताल, शैशव हो या यौवन,
बुढ़ापा हो सृष्टि काल हो या गर्म शय्या का आभय
प्राणियों में सदा साथ रहने वाले प्राक्तन कर्म का विमारा
कमी नहीं होता।'

इस वक्ति में बताया गया है कि कर्म प्राणियों के सदा साथ रहता है चाहे शैशव हो, यौवन हो या वार्धक्य। उसका कमी विमारा नहीं होता। वाक्य में प्राणिमात्र के लिए इन्द्रिय सहायी सत्य का आश्रयान हुआ है और उससे औचित्य की स्थापना होती है।

माप के इस पद्यार्थ में यह औचित्य नहीं रहा।

'भूले व्याकरण नहीं ला लेते प्यासे भी काम्य रस नहीं पीते। विद्या के द्वारा किसी ने अपने बंश का बखार नहीं किया। सुकर्म कमाया। कलायें निष्पन्न हैं।'

वक्ति का तात्पर्य है कि जीवन यात्रा बन से चलती है। अतः बन ही कमाना चाहिये। कलायें निष्पन्न हैं। भूले व्याकरण शास्त्र को छाकर तथा प्यासे काम्य रस का पान कर वृष्ट नहीं हो जावे। विद्या से भी किसी के कुत्र का बखार नहीं होता। वक्ति से अनुमान होता है कि कवि दार्ड्रिय हेम्य आदि से घेरे अवतर है। यह उसकी भले ही व्यक्तिगत अनुभूति हो पर सत्य इसके विपरीत है। अतः वह अनुचित है। विद्या ही वा सब प्रभार की संपत्ति का हेतु है। वह भी यदि बंश के बखार में समर्थ नहीं तो फिर अन्य जीवन की वस्तु होगी।

सत्त्वौचित्य

7

(११) का०—कवि का सर्वोचित बचन समस्कार की सृष्टि करता है जैसे बुद्धिमान व्यक्ति का विचार के साथ किया गया उद्गार भरित। सत्य का अर्थ है वक्त, प्रताप, पेरबर्ध आदि। उसका औचित्य है पद्यार्थ रूप का चित्रण। कल्पना के सहारे पद्यार्थ स्थिति का अपठन म करना। मगधकार के 'चित्र भारत' नाटक का निम्नलिखित पद्यार्थ इसका उदाहरण है।

वे०—१४

‘समुद्र का शरीर अनेक नदियों के जल से आपूरित रहता है तथा बड़ी हुई आत्माओं की बड़बाग्नि से चत भी है। पर इससे उसके विशाल सत्य को न तो वर्ष का स्पर्श होता है न दैन्य का। महान पुरुषों में अवस्था भेद से विकार नहीं आता।

यहाँ समुद्र के व्यपदेश से शुचिष्ठिर के सत्वोत्कर्ष का वर्णन है कि नदियों का जलपूर समुद्र को उत्सेक देने में तथा बड़बाग्नि का शोषण संकोच देने में असमर्थ रहते हैं। अवस्थाओं के भेद से महाराजों में विकार नहीं आता। इससे शुचिष्ठिर की गंभीर पीर सत्य वृत्ति उचित रूप से चित्रित हुई है।

महन्वुराज का निम्नलिखित पद्यार्थ इस गुण से रहित है।

‘यह मगवान् बड़वानल आरच्य की वस्तु है और वैसी ही आरच्य की वस्तु समुद्र है। इनके कर्मातिशय का विम्वन करते मन में कंप हो उठता है। एक अपने आश्रय को ही का आता है फिर भी जल से इसकी वृत्ति नहीं होती। दूसरा भी इतना महारथ कि उसके शरीर में इससे थोका सा भी भ्रम नहीं आता।’

इसमें बड़वानल का सत्य तथा समुद्र का महत्व कमनीय है। हममें से एक झुठ होने के कारण जलपान से कमी वृत्त्य नहीं होता दूसरा उसे आश्रय लेकर भी कमी क्षिप्त नहीं बनता। यह दोनों आश्चर्य हैं, पर अग्नि जैसा संतोष-हीन सतत मचो है उससे दो सबको कम्बा ही होगी। समुद्र का भी क्या सत्य कि वह अपने एक आश्रित पाचक को पाचना भी न पूरी कर सका। इस प्रकार यहाँ दोनों के सत्य की स्तुति उचित रूप से नहीं हुई।

अभिप्रायीचित्य

(४१) का०—कवि का वाक्य जब बिना किसी क्लेश के अविश्रान्त समर्पण करता है तो वह श्रमपुरुषों के निर्मल आर्च्य के समान ज्ञान का आकर्षक बन जाता है। बाह्य क्लिष्ट न हो तो अन्तर्य अभिप्राय सफ़ावा से अलग हो जाता है। ऐसा वाक्य सबानों की निर्दोष अनुवाद के समान हृदय को आकृष्ट करता है। हीनक कवि का निम्नलिखित पद्यार्थ इसका ब्याहरण है।

हे माँ, ब्राह्मणों में यह कोई आम्रयहीन क्षत्रिय राजपुत्र है। इसके पंखे के ऊपरी भाग में बाब के पैर पकड़े रहने से छरीब आ गया है। यहुँचे पर भगुप की बोरी का बिह है। बायर, हाथ, पैर, और मयन-भान्त कास है। वसत्यस रघूक, है। पुत्रि, यदि ऐसा है तो यह कोठे में भीतर बाप। विशेष अतिथि पुरय से प्राप्त होता है।

इसमें कोई तैरिणी सार्यकास किसी युवा राजपुत्र पथिक को बेलकर माँ से अपना अमिप्राय सूचित करती है। माँ ने मो उसके अमिप्राय को पूरा करने के लिए अतिथि को घर में प्रविष्ट कर लेने की बात की। इससे अमिप्राय की स्पष्ट अवगति यहाँ होती है। यह भीचित्य है।

इसी कवि के नीचे दिए पदार्थ में कुछ भीचित्य नहीं है।

‘भरी विरह भान्ते, तू तो पति के लिए इतनी आर्त बन गई कि देवी के चरणों में एक हम गिर पड़ी। पूजा का धात स्वयं तुमने पास में रखा था। फिर भी उसके किनारों से फटते हुए अपने मस्तक को भी तूने नहीं देखा।’

किसी विनीत तरुणी का पति देर के बाद घर लौटा है। पत्नी के मस्तक पर स्वर्णद विहार के नल बिह बने हुए हैं। सखी उन्हें बिपाने का उपदेश देती हुई कहती है कि तू पति के विरह में इतनी लम्बच हो गई कि उनके आगमन की प्रार्थना करते समय चरबी के पैरों में एक हम गिर पड़ी और अपने आप पास में रखे हुए पूजा धात के किनारों से जब मस्तक फट गया तो उसे देख भी न सकी। इस वृत्ति में स्वर्णद विहार के बिपाने की शिक्षा मात्र प्रतीत होती है। सखी स्वभावौचिरय

(३३) अ०—स्वभाव का भीचित्य काम्योक्तियों का भूपय है, इसी प्रकार जैसे पुपतियों का अहत्रिम कावयय विशेष। मय्यभर की ‘मुनिमव मोमांसा’ का निम्नलिखित पदार्थ उदाहरण है।

‘सप’ स्नात युवती, जिसके स्तन कान से ऊपर पैताप केरापास स टपकते हुए जल पिण्डुओं द्वारा हार के समान डक जाते हैं, जो शीत से रोमांचित हो ‘सी-सी’ करती है, अजस पुत्रने से जिसकी आँखों के ओप ताव

पक्ष धाते हैं तथा जिसके केश पारा से जल टपकता है वह किसके मन को चार्ज न बना देगी ।'

व्यास पुत्र भी शुद्धदेव की वैराग्य निःसंग होकर गगन गंगा के किनारे घूम रहे थे । उस समय उन्होंने निःसंकोच भाव से बैठी नंगी अप्सराओं को देखा । जलमय मन वैराग्य से विमल या इसक्ति किसी प्रकार का अमरविशेष नहीं हुआ । यह प्रतिपाद्य है । इसके लिए कहा गया है कि—युवतियों के बाओं की छोरों में गिरे जल; बिम्बु उनके स्तनों पर झर बना रहे थे । शीत के कारण वे रोमाञ्च में 'सी-सी' करती थीं बाओं का कामल धुलने से प्राग् भाग छाक पड़ गये थे । और केश पारा से जल टपक रहा था । ऐसी रत्नामोचीभ्य युवतियों किसके मन को गीला न करेगी । वह स्वर्ष गीली हैं दूसरे को भी गीला बनाती हैं । स्वभाव का चित्रण उचित है ।

प्रत्यक्षर के ही दूसरे पदार्थ में यह तत्त्व नहीं ।

'गुणलक्ष्मणों की बाखी में समी गुण दोष हो जाते हैं । भक्ति कातरता बन जाती है जसा डर और भूष्य की प्रीति, वैय वास्तवता बढ़ाता है, मति कुटिलता तथा विद्या बल होम । वे ज्ञान को बचकता तप को ठगविद्या और शीत को नपुंसकता के रूप में देखते हैं ।'

यहाँ बर्ण्य है पित्रा का स्वभाव । उसमें भक्ति आदि गुण भी विपरीत हो जाते हैं । इससे उनकी बाखी समी दोषार्ज हो जाती है । पर जो स्वर्ष चार्ज नहीं है वह दूसरों के छाप मो चार्ज नहीं हो सकता । फलत यह उक्ति उचित नहीं ।

सार संग्रहोचित्य

(३४) का०—सार का संग्रह बताने वाले बाक्य से काम्यार्थ का फल निश्चित हो जाता है और यह शीघ्र समाप्त होने वाले कार्य की मूर्ति समी को प्रिय लगता है ।

हृ०—शीघ्रकारी व्यक्ति के कार्यों की मूर्ति सारसंग्रह की ध्वजना वाले काम्य से काम्यार्थ का फल निश्चित हो जाता है । यह सभी को प्रिय लगता है । जैसे प्रत्यक्षर की 'शुनिमठ मीमांसा' के निम्न सिद्धित पदार्थ में—

‘कठिन कठिन अनेक प्रथों के सार भार से लद कर मुनियों ने अभिनिवेश पूर्वक कहा है पर कुछ तथ्य नहीं कहा। मशर्पि व्यास का तो विचार का सुम्बर सार यही है कि अर्द्धमाय भव बंधन तथा उसका अर्द्धमाय मोक्ष है।’

यहाँ भगवद्गीता के सार अर्थ का विचार है। उसमें निष्कर्ष की बात यही है कि अनेक शास्त्रों के मेव धिमेदों में पड़कर लड़ बुद्धि वाले मुनियों ने अभिनिवेश से भी कोई सार की बात नहीं कही। भगवान व्यास ने तो निर्मोक्ष विचारणा के बाद यही निश्चय किया है कि अहंकार संसार बंधन की तथा समतापरित्याग मोक्ष की मूल भूमि है। अतः संसार में मयबन्धन संसृष्टि का जाने का मशर्पि का अपदेरा अर्थात् सूक्ष्मता के औचित्य से यहाँ प्रकट हुआ है। परिणामक के इस पद्य में वैसा सार संग्रह नहीं है।

‘हमने तप नहीं किया कष्टों तप्त हो गए। मोग नहीं मोगे कष्टों स्वयं मुक्त हो गए। बरा भीर्य न हुई हम ही भीर्य हो गए। वृष्णा न बीती हम बीत गए।’

इसमें ‘हम ही तप्त मुक्त, भीर्य बने तथा बीते’ ऐसा कहने से निःसारिता एवं अबाधता का प्रतिपादन होता है पर बाक्यार्थ का किसी विरोध निर्यय में पर्यवसान नहीं होता अतः पद्यांश में कोई सार संग्रह का औचित्य नहीं है।

प्रतिभौचित्य

(३५) का०—प्रतिभा का औचित्य कवि की कलाकृति का आभरण है जैसे अष्ट गुणवाले व्यक्ति के कृष्ण का मूषण वैभव होता है।

वृ०—प्रतिभा का उचित पुट काव्योत्थियों को अर्द्धकृत करता है। श्रीभी वाचस्पति का मूषण बनती है, जैसे मन्मथार की ‘सायययवती’ रचना का यह पद्यांश —

‘अरे निर्दय, तू बिब समझकर मेरे अक्षर को क्यों काटता, है। जा चपल तू पकी हुई जामुनों की आशा मत कर।’
हमप्रचार पत्र को द्वार पर आया जान प्रियतम के बातों से
एत दृष्ट आठ पासी चतुरा ने चाते को छेले स्वर से
कहा।’

किसी का पति द्वार तक आ चुका था। उसका अपर किसी अन्य कामी द्वारा ललित था। इसलिए उसे विपाने के क्षिप तोते को संशोभन कर इस प्रकार यह बोली मामों उसे पति के आने का कुछ भी पता नहीं। 'अरे निर्दयी तू बिचफल समझकर मेरे ओठों को काटता है। अब तू यही पकी भातुनों की मी आशा न कर। मैं तुम्हें जम्हें भी न दूंगी।' इसमें कवि ने विरवास दिखाने पक्ष होप को विपाने के क्षिप प्रकाशानुर्य का समतकार के साथ औरित्य महरित किया है।

मदृवीत की शक्ति है कि प्रतिभा नई नई सुझावों का साम है।

प्रत्यकार की उसी रचना के इस पद्या में वैसा औचित्य नहीं है।

'शिव बाहर निकल गया था, पर के सब जाग चुके थे, गृ गार शम्पा के पुष्पादि हटा दिये गए थे उस समय प्रत्यकार ही उत्कट राग माला वृत्त प्रेमी आगया, जिसे मोगावसर नहीं मिला था। बेरया ने उसे यह कहकर कि— 'मैं तुम्हारे प्रेम में द्वार पर मेघ लगाए रात भर अकेली सोई हूँ।' इस प्रकार भूमि पर बरखापात किया कि बसकी भीषी लसकने लगी और कामुक अशोक बन गया।'

इसका आशय है कि किसी बेरया ने अपने पुराने प्रेमी को संभोग सुख का अवसर न देकर नवे प्रेमी के साथ रात बितायी। प्रभाव होने पर वह बाहर निकल गया तो गृहकार शम्पा के संभोग बिह पुष्पादि हटा दिये गए। अवसर प्रष्ट पुराना रागी गहरे प्रेम में विक्षिप्त सा होकर आया तो बेरया ने विरवास दिखाने के क्षिप कृत्रिम कोप के आवेग में नीची सरकाते हुये कहा कि मैं द्वार पर बालें लगाये सारी रात तेरे शिव अकेली सोई हूँ। उसने कोप का ध्वजक पाद प्रसार किया तो अमी अशोक को मॉति पूत्र बठा। उसका शोक निर्मूल हो गया। इसमें गणित्य का सन्धे वियोग का सा प्रदर्शन तथा कामी का गाढ़ानुराग व्यक्त होता है। प्रतिभा से बद्धूत किसी औचित्य की सुधना नहीं मिलती।

१—कवि समय प्रक्षिप्त है कि उसी प्रवृत्ति के बरखापात से अशोक ब्रुत उठता है। वहाँ अशोक का पर्व शोक रहित तथा अशोक ब्रुत है।

अवस्थौचित्य

(३६) का०—अवस्था का उचित चित्रण करने वाला काव्य संसार में पृथक् होता है जैसे बुद्धिमानों का विचार से किया गया काम । अवस्था की रचना 'लायव्यवस्था' का यह पर्याय वैसा ही है ।

‘इसने गैब खोलना छोड़ दिया है । वास्तोचित्य बचकता भी त्याग दी है । भोलापन त्याग गया है । गजगति का आश्रय कर मोह नष्टाने का अभ्यास कर रही हैं । मर्म परिहासों में विदग्धता की बातें वह कहने लगी है । इससे प्रतीत होता है कि उसे सौभाग्य का अभिमान प्राप्त हो गया है ।’

इसमें किसी के शौर्य की समाप्ति और जीवन के नवोन्मेष का वर्णन है । उस मोड़ता प्राप्त किये बिना ही नवसंयोग के सौभाग्य का गौरव मिला हुआ है अतः किसी वस्तु का अभाव उसे सह्यता नहीं । इस वयः संधि की वस्थे में औचित्य फुरता सा प्रतीत होता है ।

राजरोशर के इस पद्या में वस्तु औचित्य नहीं रहा ।

‘वह मोह पम्बी, कत्रियों के बिनाश में पटु तथा कामपर्यव पुद्गले क सफेद बाल लेकर बुद्ध बना परशुराम उस रामचन्द्र से युद्ध करना चाहता है जिसकी इच्छा पम्बीन घनुर्महण से लाक ही पकी है, जो ताड़का का मारने वाला है तथा जिसके कंठ में अभी मा का वृष भी संलग्न है । उसे खट्वा क्यों नहीं आती ।’

इसमें अवस्था पूर्ण ढंग से रापय की अवस्था परशुराम की अवस्था से विपरीत वर्णित की गई है । परशुराम मोह पम्बी हैं, रामचन्द्र के साथ इतने कोपित हैं कि घनुर्महण से उनकी इच्छा प्राप्त हो जाती है । आत्मदम्य ने असह्य कत्रियों को मारा है । रामचन्द्र भी पंचम ताड़का का मार सके हैं । आत्मदम्य के कर्मों पर पुद्गले के पिह सफेद बाल का गप है पर राम अभी बालक हैं, इस विपत्ति में युद्ध सम्भाजनक है । यहाँ अवस्था मेव की वर्णना कल्प है । इसमें रामचन्द्र को ताड़का संशारी कहकर वीर बताना विरुद्ध अभिमान है । इस अनौचित्य से चित्र में संशेष सा होता है ।

विचारौचित्य

(३७) का०—जिस प्रकार मनीषियों की विद्या ब्रह्मीय वस्तु

के अवबोध से और अधिक शोमनीय बन जाती है वही प्रकार काव्योत्थियों में घचित विचार का अभिमान होने से अधिक चाला जाती है। उदाहरण के लिए मन्वकार की 'मुनिमत्त भीमांसा' का यह पद्यार्थ दिया जाता है।

'अश्वत्थामा के वध की बात कहते समय सत्य के व्रत का हस्ताह रखने वाले पुषिष्ठिर ने भी जो वक्ता से (हस्ती) यह कहा था वह प्रतीत होता है, कमलासना ब्रह्मों का सत्य के चमूना से अपना विरम पैर सूचित करने के लिए माहिन्य प्रवर्तन था जो उस कीचड़ में हत्यार कमल के चात्रय से प्राप्त हुआ है।

श्रीपाचार्य के वध के प्रसंग में सत्य के दृढ़व्रती धर्मराज ने भी वक्ता पर से 'अश्वत्थामा मारा गया' यह कहकर धीरे से 'कुंजर' कहा था। उस पर कवि की खपेक्षा है कि पंडवबामिनी ब्रह्मों का चमूना से पंडव के कारण सवा का होप रहा है। असत्य मापस में सत्य के चमूना से पैर की सूचना देने वाली ब्रह्मों का ही यह व्यापार था। अर्थात् ब्रह्मों के कारण वृषिष्ठ होकर पुषिष्ठ ऐसा कहने को उद्यत हो गये। इसमें ब्रह्मों के स्वभाव को प्रकट किया गया है। वक्ता का अवगम व्यक्त करते हुए एक फल पक्षेवसावी विचार उपस्थित है। अतः सहाय्य संवेद्य बोधित्य व्यक्त होता है।

मन्वकार की वही रचना के दूसरे पद्यार्थ में यह बोधित्य नहीं दी जाती —

'बहुत पहले जो पत्नी के केरा और पत्नी का आकपल हुआ था उसके कीका पड़ जाने पर भीम ने दुःशासन पर यदि राज्यों का सा नृशंस कर कर्म किया तो कुराओ एवं पत्यो के कठोर अरण्यों में समय की प्रतीक्षा करते हुए वे जो देर तक रहे तो वहाँ उन्होंने पूर में हाँपते हुए भैंसों के पसोने से मिठा हुआ पाना क्यों पिबा था।'

इसमें भीमसेन के चरित्र का विचार किया गया है। श्रीपरी के केशकर्पण के तेरह वर्ष पुराना होने पर भीम ने दुःशासन पर बाद में भयानक राक्षस कर्म किया। यदि ऐसा ही करना था तो उस समय आपराध को सहन कर बिरकाह तक पत्थर तथा दमसुइयों के कठिन-जनों में शर्मा के संताप से जल में डूबते हुये भैंसों के पसोने से मिठा

हुआ पोलरों का पानी क्यों पीया जा। अर्थात् यह कार्य पहले ही करना चाहिये था। इससे भीम का कार्य निम्न बताया गया है इसमें कारणों पर विचार न कर निर्मूलक अपास्य दिया गया है अतः अनुचित है।

नामोचित्य

(१८) का०—माम का प्रयोग यदि उचित होता है तो मुख्य के समान काम्य के मुख्य दोषों की अभिव्यक्ति प्रसंगानुक्त हो जाती है। जैसे कालिदास के निम्नलिखित पद्यार्थ में है —

‘यह पंचवाण, जिसे दुर्लभ वस्तुओं की प्रार्थना से भी नहीं रोका जा सकता, मेरे हृदय पर पहले से ही प्रहार करता था। योमी वायु से दिसते हुए पत्तों के आभट्टों पर जब आकर दिलाई पड़ने लगे तो फिर रुटना ही क्या ?’

यहाँ बताया गया है कि कामदेव मुख्य वस्तुओं की प्रार्थना से भी नहीं रुकता। यह पहले से ही मन को ललित कर रहा था। उपमन क दिसते हुये आमाँ पर महीन पत्ते आगए तो फिर क्या करना। इसमें प्रहार करने वाले कामदेव के लिये ‘पंचवाण’ शब्द का प्रयोग कर्मानुरूप अतएव उचित है।

कालिदास के ही इस पद्यार्थ में उक्त सौष्ठव नहीं है —

‘हे प्रभा, क्रोध को रोको, रोको’ ये देवताओं के बचन जब तक आकाश में फैले कि भगवान भव के नेत्र से ज्यम हुए अग्नि ने कामदेव को मरम कर डाला।

कामदेव के बाण मारने पर तीसरा नेत्र उपाड़ कर देलते हुए शिव के क्रोध का इसमें वर्णन है। उसे शांत करने के लिए जैसे ही देवता विन्ताय कि ‘प्रभु क्रोध को रोकिये’ उतने में ही भगवान शिवके तीसरे नेत्र की अग्नि ने कामदेव को राख बना दिया। यहाँ संसार के समय ‘रुद्र’ आदि न कहकर ‘भव’ कोमल नाम का प्रयोग कर्मानुरूप नहीं है इसलिए अनुचित है।

आशीर्षन का औचित्य

(१९) का०—यदि काव्य में मनीषियों को सर्वोप प्रधान करने

बाखी पूर्णता आ गई हो तो उसमें उचित आशीर्वादन का प्रयोग होना चाहिए। राजा के आशीर्वाद की भाँति इससे अभ्युदय होता है। जैसे प्रण्यकार के उपाध्याय गंगक के निम्नलिखित पद्यार्थ में —

‘प्रण्य के परिपाक से प्रकट हुआ सुगन्धोष्णियों का प्रेमार्द्र नेत्र विलास आप सबको मुक्त प्रदान करे। इसके बल को देखकर भुवन बिजली कमरेब के पाँचों बाण व्यापार विहीन होकर सूखीर में अपना हँस बिपा खेते हैं।’

इसमें असामान्य प्रेम की अभिव्यक्ति करते वाले प्रण्यपिनियों के कटाक्षों का वर्णन है। ये मुक्त प्रदान करें यह आशीर्वाद मुक्त ही है क्योंकि प्रियाओं के जयन विभ्रम मुक्त देने में समर्थ है।

प्रण्यकार के ‘वस्तुभावन सूत्र सार’ ग्रन्थ के इस पद्यार्थ में भी यही बात है —

‘संसार भर को सेवक बनावे वास्ता, कमल मुखियों के नेत्राश्रु का नियासी काम आप सबको मीति प्रदान करे। उसे शिव ने बसा डावा का फिर भी अंजन की भाँति उसकी रोमा अधिकाधिक बढ़ गई।’

यहाँ काम आप सब को मीति प्रदान करे। जिसके बल बाधे पर भी अंजन की भाँति अधिकाधिक रोमा बढ़ गई। इस में मीति प्रदान करे यह कहना उचित है क्योंकि काम मीतिरूप है।

यही बात अमरक कवि के निम्नलिखित पद्यार्थ में नहीं है—

‘जिसकी अंजन अलकप्रवती हिस रही हो, कु डल मी चब रहे हो, तथा पसीने की छोटी छोटी बूँदों से तिथक घोड़ा पुन गधा हो यह निपरीत रति के अवसान का लम्बी का मुक्त तुम्हारी रक्षा करे। हरि, हर, रुद्र आदि देवताओं से क्या लाभ ?’

इसमें कहा गया है कि निपरीत रति के अवसान में लम्बी का मुक्त जिसके बल मिले और कुटिल अलक हो तथा पसीने की बूँदों से तिथक पुन गधा हो—रक्षा करे हरि हर आदि देवताओं से क्या। यहाँ पर रक्षा करे ऐसा कहना अनुचित है। आनन्द प्रदान करें यह कहना चाहिए।

दूसरे काव्याङ्गों में भी इसी पद्धति से औचित्य का विचार करना चाहिये। उदाहरणों की बहुलता के कारण सब अंगों को दिखाया नहीं गया है। इतना ही पर्याप्त है।

स्वयं परिचय

काश्मीर में अपने देश के प्रकारों की प्रकारों में मिलनी संपत्ति इस के मुख्य थी। उनके घर में निरंतर यह चलता रहता था। और उसमें प्राणियों को कम आसन मिलता था। उसने भी स्वयम्भू के भवन में जोकरा मातृकाओं के भित्ति-चित्र बनाये थे और गौ, वृष्य, मृगचर्म तथा भवनी का दान देते हुये इसी में शरीर छोड़ा था। सब मनीषियों का शिष्य हेमचन्द्र अपना नाम व्यास दास हमी का पुत्र है। उसने 'औचित्य विचार चर्चा' लिखी है।

जब भी विजयेरा राजा राजसिंह मित्र शिव लोक को चले गये तो उनके पुत्र उदयसिंह के लिए यह वासी विचार किया गया है।

यह ग्रन्थ राजा भी अनन्तराज के समय में प्रणीत हुआ है। उनके शीघ्र और शास्त्र ज्ञान संसार भर में प्रख्यात थे। उनकी वल्लभ परिवार की सृष्टि करती थी। उन्होंने सबके सामने, भवनव होकर विरोध उत्पत्ति प्राप्ति की थी तथा उसका प्रतापानन्द दिखाओं को शीघ्र बनावा था।

२—कवि कण्ठाभरण

२—कवि कण्ठाभरणा

अकवि को कवित्व शक्ति का उपदेश

सर्वप्रथम अकथि को पवित्र शक्ति का उपदेश दिया जाता है।
पहले दिव्य प्रसरण तदनन्तर पौरुष प्रसरण का प्रत्येक होगा।

दिष्य प्रयत्न

सब के लिये 'ॐ' मंत्र का स्वरूप परिचय

६—'ॐ' इस मंगल चिह्न की हम स्तुति करते हैं। यह सिद्ध, अमर, आद्य है। अतः ईप्सित है। सरस्वती के सहीयमान भोज का प्रदाता है और अ, इ, ए, ऊ अक्षर इसमें अवर्णिगुह हैं।

७—यह एक पेश्वर्य समुच्च, आध्वर्यक औषध है। इसके मध्य में अस्तर्भुत कक्षास्थों^१ स गिरनेपाही मृषा के शिद्ध विद्यमान हैं।

८—चन्द्रमा से निम्नतम जल इसमें है। यह अज्ञान विनाशक ट, ठ तथा ठ, न अक्षरों से संयुक्त है। इसकी प्रकाश क्षिरार्धे प्रौढ़ पर्यं प्रबल है।

६—इस मंत्र का स्वरूप श्रेष्ठ, फलदायक, रम्य, बहुत उच्च कल्याणकारी है। यह शीघ्र मंत्र से सम्मुख एवं सबके उद्धारार्थ योग्य पावरी जाती है।

१०—‘सरस्वत्ये नमः’ इस क्रियामातृका मन्त्र का जो जाप करता है उसे अमिनव पाणी के काम से इन्द्र का सा होम प्राप्त होता है।

चापप्रकार

११—मूय देश में सरस्वती का ध्यान इस रूप से करना चाहिये। वह स्वेतवर्णा है, चन्द्र मण्डल के मध्यगत है। अक्षर उसके आभरण हैं और वाक्मय का अमृत बरसा रही है।

१२—बापस में मिले हुए दो त्रिकोणों के मध्य में बसकर इस प्रकार ध्यान करो। यह तद्विषय तुल्य है। प्रमोद शायिनी है। स्वर्ग के मार्ग से अवगत है। सर्वोत्कृष्ट तथा अभूत पाद्विनी है।

1.—'य' के अक्षर बिन्दु की जगहमा पी कला का साम्य देखकर कदा गया है।

२—इस पक्ष में अमेरिका तथा अभिनव दुष्ट के नाम प्रमुख हुए हैं। अंतर्गत है कि अभिनव दुष्ट की शिक्षा से बीता कथित सामर्थ्य अमेरिका को प्राप्त हुआ है वही नग्न हाथ प्राप्त हो चुका है।

१३—निर्विकार, निराकार परात्पर शक्ति के रूप में वसन्त ध्यान कर। यह योग त्रयीरूप (ऐं वली सौं) त्रयी याक सरस्वती धारणी, काम तथा मुक्ति प्रदान करने वाली है।^१

१४—ब्रह्मव बीज की साधना काव्य रचना के इच्छांशुर की मूलभूमि है। इसमें मातृ तथा पितामहि प्राप्त होती है। कामतत्व बीज की साधना से काममातृ तथा मातृबीज के ध्यान करने पर संसार मुक्ति की सिद्धि होती है।

पौरुष प्रयत्न

इसके अनन्तर पौरुष प्रयत्नों का वर्णन है। तीन प्रकार के शिष्यों का काव्यक्रिया का उपदेश दिया जाता है, अल्प प्रयत्न साध्य, कष्ट साध्य तथा असंध्य शिष्यों का। उनमें से पहले को—

१२—काव्यशक्ति की उत्पत्ति के लिए किसी साहित्यपितृ के पास ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसे चाहिये कि वह तार्किक तथा कथक पैसाकर का गुरु न बनाए। ये सुक्ति विश्वास के बिघ्न हैं।

१६—वह व्याकरण से संज्ञा क्रिया आदि का ज्ञान प्राप्त करे। जम्बू विधान में परिचय करे और अखिल होकर मयूर काव्यों का मयण करे।

१७—गीतों, गाथाओं तथा सरस देश भाषा काव्यों को सुने। चमत्कार कारिणी वाकियों के मय मय अर्थों की चर्चा में रुचि ले।

१८—यदि शिष्यार्थी भिन्न भिन्न रसों में तन्मय होगा तथा भिन्न भिन्न गुणों से र्प का अनुभव करेगा तो उसके विवेक के सेक हरी रसकपाक^२ से अमृत करण बढ़भिल हा आवेगा और सबसे अक्षुर को मांति कवित्व फूल निकलगा।

दूसरा अर्थात् कष्ट साध्य शिष्यार्थी—

१९—शिष्यार्थी आभिजास के समस्त प्रबंधों को पढ़े और इतिहास देखे। काव्य के आभिजास का पद प्रथम बहूगम हो अर्थात् अम्या-सादि से बनना कर गुरुरूप हो तो इस तार्किक की तप गर्भ से बचाये।

१—पारिका ६ ११ में ऐं वली सौं का सरस्वती मय^३। इस मंत्र के हरकप मय महार तथा सरस्वती के ध्यान का वर्णन है।

२—रसकपाक—घरने प्राप्त वरणा।

वेमे०—१६

१०—इसे अभ्यास के लिए अथ शून्य पद रख रख कर खींच बनाने चाहिये तथा पुराने पदों के पदों को हटाकर उनके स्थान पर इसी अर्थ को पदों द्वारा पूरा करना चाहिये।

अर्थशून्य पदों का पद्य जैसे —

आनंद संतोष पदार विन्द,
कुम्भेन्दु कम्पादित विन्दु कुम्भम्।
इन्दुनिराशोक्षित मन्द मन्द,
निन्द्य कन्दमकरन्द चन्दम्।

परिवर्तित पदों का पद्य जैसे —

वागार्थाविष संयुक्तौ वागर्थ्य प्रतिपत्तये।
अगत पितरो बंधे पार्वती परमेस्वरी॥

(कालिदास)

इसके स्थान पर —

वागवर्थाविष संयुक्तौ वागवर्थ प्रतिपत्तये।
अगतो जननी बंधे शर्माशो शशि शोकरो।

इसके बाद तीसरे असाध्य शिष्टार्थों के विषय में—

२२-२६—जो स्वभाव से परस्पर के समान हैं अथवा जिसकी प्रतिभा विलम्ब व्याकरण से नष्ट हो गयी है, जो अग्नि का धुआँ फैलने वाले चर्क से जल बुझा है अथवा जिसके कानों में सत्कवियों के प्रबन्ध कभी पड़े नहीं, उसे में कवित्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती चाहे कितनी ही विरोध शिक्षाओं का प्रयोग किया जाय। सिलाने पर भी गधा गाथा मही है और बिलाने से भी अन्या सूर्य का नहीं देखता।

(२४) इस प्रकार पूर्ण पुण्यों के फलस्वरूप शुभ भवि पावे शिष्टार्थियों को मन्त्र सिद्ध कवित्व प्राप्त होता है। इसके बाद बुद्धिमानों को पौरुष प्रयत्नों से कवित्व का उदय होता है। साधना करने पर जब बुद्धि दासों को भी शारदा का स्फुरण हो जाता है।

भी देखे इ चपनाम व्यासदास के कवि कण्ठाभरण की 'कवित्व प्राप्ति' नामक प्रथम

द्वितीय सन्धि

शिष्यार्थी

१—कवि को छायोपजीवी पदोपजीवी, पादोपजीवी कथना सङ्कोपजीवी होना चाहिये । अपने ही रम्भे से यदि किसी को कविराज प्राप्त हो जाय तो यही संसार भर का उपजीव्य बन जाता है । छायोपजीवी जैसे मट्टमस्तक का यह पदार्थ—

हे कासकूट उत्तरोत्तर विशिष्ट स्थानों में आभय पा लेने का उपदेश तुम्हें किसने दिया है ? तुम परसे समुद्र के हृदय में थे । फिर शिवजी के कण्ठ में आय और अब फिर बुद्धों के बचन में रहते हो ।

इसकी तुलना भीमान हत्याराज देव के निम्नलिखित पदार्थ से कीजिये ।

लसों की दृष्टि मात्सर्य के तीव्र तिमिर से ढकी रहती है ।
वे किसके चित्त को ध्याना नहीं पहुँचाते ।
मनोव होता है बिप शिवजी के कोमल कंठ को छोड़ कर
लसों के बचनों में वृद्धि पता है ।

(इसमें पहले पदार्थ की जाया का सहारा लिया गया है ।)

पदोपजीवी का उदाहरण मुख्यकण का निम्नलिखित पदार्थ है—

‘क्योंकि बलावमान बाणों का पुर्ण आकार के रम्भों को भर रहा है; अथात स्फुरिगों का रूप धारण कर रहे हैं, और बिघात क कमकन से दिशाये पीछी पड़ गई हैं, इससे प्रतीत होता है अधिक रुपी तर समूह में काम की दावान्नि लग गई है ।

इस के एक पद के अर्थ का उपजीवन जगपाल के नीचे लिखे पदार्थ में है ।

‘इस नायिका रुपी सरसी में लहर का जल उदर बलियों की सररो से बचल होकर जपन क पुत्तियों को भी ध्या-यने लगा है ।

अथर्व वेद सभी चीजों का विवरण दिखाई पड़ता है।
इससे प्रतीत होता है कामदेव सभी गण इसमें कुछ कुछ है।
सबों के रूप में इसी का कुंभ दिखाई पड़ रहा है।

यहाँ पहले पदार्थ के कुछ पदों का उपजीवन हुआ है।

पादोपजीवी के उदाहरण में अमरुत का निम्नलिखित पदार्थ है।

‘यदि जाना ही निश्चित कर लिया है तो चल जाना। यह
शीघ्रता क्यों है ? और दो तीन दिन ठहरिय, जब तक मैं
आपका मुख देखवी रहूँ।’

संसार में जीवन पटिका जहाँ से निकलते हुए जल के तटस्थ
हैं। कौन जानता है कि मेरा तुम्हारे साथ फिर संगम हो
या न हो।

इसकी तुलना प्रणकार के इस पदार्थ से कीजिये।

‘हे प्रिय बिबेक, मैंने तुम्हें बड़े पुरवों से पाया है। तुम्हें
कुछ दिन मेरे पास से कहीं नहीं जाना चाहिये। तुम्हारी
संगति न मैं शीघ्र ही जल मरण का लब्धेद क्रिये देता हूँ।
कौन जानता है, तुम्हारे साथ मेरा संगम फिर हो या न हो।’

यहाँ अन्तिम पद का आश्रय है।

सकड़ोपजीवी के लिये आर्य भद्र का यह पदार्थ उदाहरण है।

‘मक्षिन स्वभाव के तुष्ट लोग बेकियों के समान निरर्ग
कटु शब्दों से कानों को व्यथा देते हैं।

और मरुपुर्य स्वष्ट अर्थ वाले मधुर शब्दों से सँखीरे की
मौँवि मोह उत्पन्न करते हैं।’

इस समस्त का उपजीवन भद्र पाश के इस पदार्थ में है।

‘मक्षिणता प्रदाम करनेवाले तुष्ट लोग बेकिया के समान
कटु शब्द करते हुए बहुत व्यथा देते हैं।

सत्पुरुष मणि नूपुरों के समान अच्छी अच्छी स्त्रियों से
पद पद पर मम करते हैं।’

संसार भर के उपजीव्य कवि, जैसे, मगवान व्यास हैं। इसलिय
कहा है कि—

‘यह आश्रयान (महाभारत) सब भेष्ट कवियों का उप
जीव्य है।’

जैसे अभ्युदय चाहनेवाले सेयकों का उपजीव्य अभिजात
कुल का राजा होता है ।

अब बाकी प्राप्त किये हुए कवि की शिक्षाओं का परीक्षण किया
जाता है ।

२—व्रत, सारस्वतयाग, सर्वप्रथम गणेश पूजन, विषेचन की
शक्ति, अभ्यास पक्षों का मिश्रित आरम्भ विश्वास, न वदना ।

३—इसको को पुरा करना, उद्योग, दूसरों की कृतियों का पाठ,
काम्य शास्त्र का ज्ञान, समर्था पूर्ति ।

४—बेध कवियों के साथ रहना, महाकाव्यों के अर्थों का
आस्वादन, विनय, सत्जन भ्रैक्षो चित्त की प्रसन्नता, सुषेप ।

५—नाटकों के अभिनय देखना, रसिकता, कवियों के समुदाय
पङ्क्त होने पर दान देना, गीतों से आत्म उत्ति ।

६—सौदाचार परिष्ठान, प्रसिद्ध कवियों में रुचि, इतिहास का
अनुसरण अच्छे चित्रों का देखना ।

७—शिल्पियों का दीशक देखना, वीरों का पुत्र देखना, शोक
प्रकाशों का सुनना, शमसान तथा अरण्य देखना ।

८—व्रतियों की मया, थोसले मे लेकर महलों तक समी निवास
स्थान देखना मोटा और शिथिल भावना करना, धातु साम्य अर्थात्
पात पिच कफ की समता, शोक न करना ।

९—प्रमाण में सघेरे ठठ जाना, प्रथमा, स्मृति, आदर, सुला-
सन, दिन में सोना, गर्मी और ठण्ड से बचाव ।

१०—यत्र रचना तथा मित्त चित्रों को देखना, गोष्ठियों एवं
प्रहसनों की पर्यटन, प्राणियों के विविध स्थानों से परिचय, समुद्र,
पर्वत आदि का निरीक्षण ।

११—सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणों का ज्ञान, सब श्रुतियों का
व्यापक अनुमय प्राप्त करना, मछे आदि जन समूहों में जाना,
देश भाषाओं का उपजीव्य ।

१२—ग्रीष्मकाल तथा अग्रीष्मकाल करने की बुद्धि, अपनी रचित
कृतियों का संशोधन वर्तमान रचना, यत्र, मया विद्या गृहों में ठहरना ।

१३—अपने उत्पन्न की नृणा न करना दूसरों के उत्कर्ष को
सहना, अपनी प्रशंसा गुनकर भावानुभव करना, दूसरों की प्रशंसा
बार बार करना ।

१४—अपने काव्य की सदा व्याख्या करना, किसी से बैर या ईर्ष्या न करना, दूसरों के लक्ष्य को सद्भाव से बीतने की इच्छा, व्युत्पत्ति के लिये सभ की शिष्टता स्वीकार करना ।

१५—कविता पाठ के अवसरों की पहचान, मोताओं के बिच का अनुवर्तन, इक्षित और आकार को पहचानना, उपादेय पदांश का निबन्धन ।

१६—रचना के बीच-बीच में उपदेशों की विरोपोक्तियाँ लिखना, किसी एक विशेष रस का बहुत खन्ना वर्णन न करना अपनी सूक्तियों को दूर दूर भेजना, दूसरों की सूक्तियों का संग्रह करना ।

१७—विदग्धता, पटुता, निःसंग होकर एकान्तवास, आराज ज्ञान का परित्याग, सन्तोष, सात्विकता ।

१८—शाचना न करना, बात-चीत में भी गँवारु पदों का प्रयोग न करना, काव्य रचना का आग्रह, बीच-बीच में विराम करना ।

१९—नवीन कृतियों के लिये प्रयत्न, सब देवताओं की समान भाव से स्तुति करना, दूसरे साग यदि कमी आये पढ़ें तो उसे सह लेना, गंभीरता, निर्विकारता ।

२०—आरम्भशील न होना, शीघ्र न होना, दूसरों की अपूर्ण रचनाओं को पूरा करना, दूसरों के अभिप्राय को खूना, आलोचनात्मक, दूसरों के अनुकूल खूना ।

२१—प्रसाद गुण वाले पदों की योजना संवाद के अनुसार अर्थ सङ्गत करना, विरोध रहित रसों की अभिव्यक्ति, अन्तर्गत स्व समस्त भाषा के प्रयोग का सामर्थ्य ।

२२—आरम्भ हुए काव्य को समाप्त करना, भाषा का चातुर्य पूर्ण प्रकाश ।

अभ्यास द्वारा भाषा पर अधिकार प्राप्त किये हुए शिक्षार्थी के लिये ऊपर के सौ उपाय शिक्षा के हैं ।

२३—इस प्रकार विविध शिक्षाओं से अतिरिक्ती रस के दोष भी हो जाते हैं । जब यह प्रतिभा के सुप्रभात में मित्रा त्याग कर सामर्थ्य खाम करता है तो अपनी सूक्तियों की व्यापक किरणों द्वारा पदार्थ ज्ञान के स्वभावों को नवीन बना लेता है ।

तृतीय संधि

शिक्षित कवि के लिये सूक्ति चमत्कार का विधान ।

१—अभ्यातिशय का इच्छुक भ्रष्ट कवि बाणी के सत्कार के लिए सुन्दर सुन्दर वस्तुओं, शब्दों तथा अर्थों का संचयन करता है जिस प्रकार नवीम गन्ध का व्याख्याद लेनेवाला और पुष्पों से पूर्य बदन में गन्ध संचयन करता है ।

चमत्कार के बिना न तो कवि को कवित्व प्राप्त होता है और न काव्य को काव्यत्व ।

२—अमूल्य मणि के समान एक भी चमत्कार पूर्ण पद यदि काव्य में न रहे तो वह भस्म ही सर्वथा निर्दोष हो, पर मणिकीन सुवर्ण के समान किसी के चित्त पर नहीं चढ़ता जैसे अगलाओं का सावयव हीन जीवन ।

नीचे वाला माकबुल का चमत्कार शून्य पद्याय वैसा ही है ।

हे रत्नाशोक बतावें तुमसे लिपटी हुई हैं, तुम्हारे पते हिल, पुण्य लिल, कुन्डल फूट, तथा गुच्छे बढ़ रहे हैं । तुम शून्धे हुए मीठे के कोड़ा बिनाह क आकर हो । तुमने जो यह आश्चर्य प्रारम्भ किया है इसे हटा लो । मित्र, दया करो । मेरे लो प्रायः कष्टगत हैं । प्रियतम दूर है और तुम ऐसे हो रहे हो ।'

चमत्कार काशिदास^१ के निम्नलिखित पद्याय में है ।

'अशोक तुम अपने पत्रों में रक्त हो । मैं भी प्रिया के गुणों में रक्त हूँ । शिखीमुख (अमर) तुम पर गिरते हैं और काम के प्रभु से दूटकर शिखीमुख (पाख) मुझ पर भी । अम्ता का चरखापात तुम्हें भी हर्ष प्रदान करता है वसी तरह मुझे भी । मेरा तुम्हारा सब कुछ समान है । अब तर केवल इतना दे कि विधाता ने मुझे सराफ बना दिया ।'

चमत्कार दश प्रकार का होता है । — अविचारित रमणीय, पित्रार्थमात्र रमणीय, समस्त सूक्त व्यापी, सुक्तेकदेश टरय, शब्दगत, अर्थगत, शब्दावयवगत अक्षरगत, रसगत और प्रत्यात चारुगत ।

१—काशिदास का नाम भूम से लिया गया है । प्रस्तुत पद्य यशोवर्मा का है ।

अविचारित रमणीय जैसे मन्त्रकर के 'शशि वंश' मन्त्र के इस पदार्थ में —

'शूर हजारों हैं। सुधारित पंक्तियों में भी जगत् पूर्ण है। कक्षावान इतने हैं कि संख्या नहीं। शास्त्र भी अनेकों बन में स्थित हैं। जो उत्तम मति का व्यक्ति प्राणों से भी अधिक प्रिय अपने धन को त्याग सकता है वह भूमि विमोक्षक शुभनिधि और मन्त्र है। संसार में ऐसा मुख्य दुर्लभ होता है।'

यहाँ अमरकार की प्रतीति पहली दृष्टि पर ही हो जाती है।

विचार्यमाण रमणीय जैसे मन्त्रकर की 'पद्म कादम्बरी' के इस पदार्थ में —

'उसके बाग में कामाग्नि नेत्रों में व्याप्त मुरा, कंठ में जीव, कर किसलय पर वीमशायी कपोल, कंधे पर पीया, वक्त्रवक्त्र पर चंदन, और बाखी में मीन सब स्थित हैं। कबल चित्त ही तुम्हारे बिना स्थित नहीं है।

यहाँ विचार करने पर अमरकार की प्रतीति होती है।

समस्त सूक्त में व्याप्त अमरकार जैसा कवि के 'शशि वंश' के इस पदार्थ में —

'तुम्हारे मुख में माधुर्य का अनुभव होता है फिर भी उसक (मुख के) नेत्र ठीके हैं। सारे पद्मस्य माग्सों हैं फिर भी राग में बंध जाते हैं। वे बिबेकी हैं पर कपन की अपवृत्ता नहीं छोड़ते। आश्रय है ये कान छूते हैं पर मार मा करते हैं। (काम उत्पन्न करते हैं तथा नाश करते हैं।)'

यहाँ विरोध का अमरकर छार पद्य में विद्यमान है।

सूक्ति के एक भाग में विद्यमान अमरकार मन्त्रकर की 'पद्म कादम्बरी' के इस पदार्थ में देखिये।

देव वह तुम्हें हृदय में बिठा कर पद्म पत्र तथा चंदन से नित्य अर्चना करती है। मन में तुम्हारी मति और तुम्हारी

१ - माधुर्य और तीक्ष्णता, शूर रहना और बांधना, बिबेक और अपवृत्ता तथा कान छूना और चोट करना का विरोध है। जो अपने काम छू सेता है वह बाध फिर अपवृत्त न करने की प्रवृत्ति करता है।

ही स्मृति है। तुम्हारे नाम मन्त्र का जप है। उस सुभ्रू की तुम्हारे प्रति भावना अत्यन्त गाढ़ है। इन दिनों तुम्हारी धारावना करने में उसे वो जीवन मुक्ति ही मिल गई है। अन्तिम यात्रा में शक्ति जमत्कार है।

शब्द गत जमत्कार जैसे प्रयत्न के 'वित्र मारत' के इस पदार्थ में।

'इपर चूँ से च्युत हुये मधुबय को लेकर चतुर समीर दिशा दिशा में भौंते को सम्मोष देते हुये बह रहे हैं। वे ही निशान्त में कान्ताओं के स्मर स्मर के केन्द्रिम को मुमते हुये भीर अवशिष्ट कमलों के आमोद को लेकर बह जाते हैं।'

यहाँ अनुभास का जमत्कार है।

अर्थगत जमत्कार जैसे इन्दी की 'आवयववती' के निम्न विहित पदार्थ में—

'तुम्हारी तलवार में निर्मल जलवार का रस्य रहता है। उसमें घनोक्तास है क्योंकि समाधुतों के बड़े-बड़े कदकों को गिरा देती है। यह शीर्ष भी के कामों का नीलोत्पल है फिर भी शत्रुओं को जमि का सा ताप जपन करती है। यहाँ विरोध का जमत्कार है।

शब्द और अर्थ दोनों का जमत्कार प्रयत्न की 'पद आरम्भ' के इस पदार्थ में है।

'जसकी भौंहों में कामदेव की टेढ़ी अनुसूता की समता है। निर्मोक्तियों हास्य की कामि से सिल चढ़ती हैं। बोलबाध में प्रगल्भता है। विघ्नमों में राग और सरसता है। इस प्रकार जस मृगनयनी ने कामदेव की आमु यहुत बढ़ा दी है।

१—तीव्र = दृढ़ तथा तीव्रता, भार = धनवार की भीर पानी की। समाधुत = पर्वत तथा राजा। रस्य के लड़के विरोध का जमत्कार है कि तलवार ठण्डी होकर भी जमि का ताप देती है।

‘मानीं तारा बधू के लोचनों के सुम्बन काल में लगा हुआ
कावच का बिन्दु था ।’

राज्य कालुष्य तथा कथ कालुष्य दोष के भट्ट मोक्षिण स्वामी
कृत दो पद्य नीचे दिये जाते हैं । ये इतने अस्पष्ट हैं कि अनुयाय नहीं
किया जा सकता । राज्य कालुष्य—

‘यस्ताव प्रचरा सुतासुत सती लज्जासिता कोकगा,
पैशुन्य लसीकृता लिखलता खेत्तेटकेः कपापिता ।
खेटावुरलमितु मिलर्य मनसा मोक्ष्य मुलात्तकलटम्
निःसंख्याम्बनि लर्यसर्प मखिमूरकवातु संकपानि व’ ।

अर्थ कालुष्य—

‘पित्रापित्रा मते या न ललु लल पुताङ्गान् मात्रापमात्रा,
स्यो न स्यो भरिपतेमूर मुमयविरमहाम पोशाऽप्य पाशा ।
वर्पा वर्पान्बु पाशाङ्गुटित वृष बसत्यभिषाता मिषाताम्,
सौरी सौरीष्टपात्रे सरदिह जनतां साम धानां मुधानाम् ।

भट्ट नारायण कृत ‘खेखी संहार’ नाटक के निम्नलिखित पद्याव
में रस कालुष्य दोष है ।

पुरुषोत्तम की पत्नी मामुमती ने स्वप्न में नकुल प्राची का दर्शन
किया है । इससे पावकन नकुल के साथ उसके खैर बिहार की कामना
की ध्वनना होती है यह एक चक्रवती की पटराही के सिध सामान्य
नीच स्त्री का सा व्यवहार समीप है ।

सगुण पद्य जैसे यह कालिदास का—

‘सुन्दारे शरीर को रात्रियों में दृष्टिपात को अन्धित हरिणियों
के प्रेरण में कपोल के सादृश्य को अमृता में केरापारा
को मयरी के पिच्छों में तथा विभ्रम को नदियों की बड़ी
बड़ी लहरों में बेलता हूँ । पर अरिह समूचा, सादृश्य किसी
एक स्थान में नहीं मिलता ।’

निर्गुण जैसे कवि अमर का यह पद्य—

तनो सुपीनो कठिनी ठिनी ठिनी—
कटि विराला रमसा भसा भसा ।
सुलं च अम्र प्रतिमतिमतिमम्,
आहो मुरुगा वरुणी रणीरुणी ॥

इसके स्तन मोटे और कठिन हैं। कटि विशाल है। मुख चन्द्रमा के तुल्य है। यह वरुणी सुम्बरी है।

सरोप जैसे भट्ट भी शिवः । मी का यह पद्य—

आपत्वाधि शिखरशिखरदृढता गूढानि गूढेतराम्,
मौहिं होक्य पिबिह पिबिह चरुजं कृदापरुदांतया ।
मूढ मूढम मूढयस्व हृष्यं श्रीहृषाय मूढयातमः,
सोम्युहामिति च प्रमापरिपूर्वाभ्युहाद्रुहिमेस्तुय ।

पद्य अनुवाद्य नहीं है।

निर्दोष जैसे संधिविग्रहिक भी श्रीमसाहिका यह पद्याय —

‘घण्टा सीरोद के केन के तुल्य, दिशाओं में फैलने वाले,
गंगाजल में स्नान करना स्वर्ग ही क्यों चाहते हो। कलि
कास के कस्मों की त्याही को जो बासने में अकेली ही
समर्थ, साथों मुपमों की मंदाकिनी आप की कौटि
पिचमान है।’

भट्ट मयूर के निम्नलिखित पद्यार्थ में गुण और दोष दोनों हैं।

‘त्रिमक्ष कार्यक्रम नियमित है, जो अपनी चमकती
किरणों से रात्रि को दिन में परिवर्तित कर देता है, तथा
जो दीपक के समान एक स्नान पर रहकर भी समस्त विश्व
के अंधकार को प्रकाशित कर देता है त्रिमुयन में घूमने
वाले उस सूर्य का उच्चर दिया गामी किशोर्दाम तुम्हारा
कल्याण करे।’

इसमें अर्थ तो सगुण है पर शब्द योजना किञ्चित् अतृप्त
सरोप है। सूर्य का दीपक से साम्य देना अथ दोष भी है।

२—यदि कोई कवि ऊपर बताये गुणों को अपनाता है, और
कवियों में अत्यन्त वनना चाहता है तो उस इन दोषों का त्यागकर
यहाँ में उत्तम, मध्यम, अधम का विवेक करना चाहिये तथा राजा
की भौति यहाँ में संकर न आने देना चाहिये।

पंचम संधि

परिचय चारुता

१—यदि कोई कृकषि केवल शाब्दिक शब्दों के बल पर छोरी कष्टदायक काव्य रचना ही में लगा रहता है और काव्य परिचय सहीन रहता है तो विद्वानों की समीक्षा में पूरे आगे पर यह इस प्रकार उत्तर देने में लज्जाता है जैसे नगर के गलीकूबों में दिख हुआ मवागम्यक प्रामीण ।

इनमें तर्क, व्याकरण, भरत, चाणक्य याज्ञवल्क्य, भारत, रामायण, माण्डोपाय, आत्म-ज्ञान, वासुदेव, रत्न-परीक्षा, वैद्यक, ज्योतिष, अनुर्वेद, गण, दुरग, तथा पुस्तकों के कच्छ, सूत्रा इत्यादि तथा अन्य आवश्यक यन्त्रों की जानकारी कवि के बह्व्यस की व्यवस्था करते हैं ।

तर्क परिचय जैसा म यन्त्र की 'पद्य काव्यम्वरी' के इस पद्यार्थ में -

'जो म मनोरथों का प्राप्य है म वचनों का, तथा जो स्वप्न में भी विस्तार नहीं होता उसे भी प्राप्त करने की पुन कामठने लोगों में हो जाती है । निःसंदेह पुस्तकों को आशा की खेती से ऐसे भ्रम का क्षाम होता है जैसे अज्ञान के कारण सीपों में बाँदी का भ्रम या दृष्टिदोष से व्याकरण में दो अत्रमाओं की प्रतीति ।

यहाँ तर्कमिथ बात कहो गयी है ।

व्याकरण का परिचय भट्ट मुक्ति केशर के इस पद्यार्थ में है -

'यह मैं हम पति पत्नी दो हैं तथा दो मेरी गाँवें हैं । व्यव करने के लिए हमारे पास कुछ नहीं । इसलिये, पुत्र, तुम यह कार्य सोचो जिससे मेरे पास आवक खूब हो जाय ।

हमो द्विगुरवि चाहम् भङ्गोहे नियम व्ययीमाय' ।

तत्पुत्र्य कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहि ॥^१

भरत परिचय यह भीशिव त्र्यामी के इस पद्यार्थ में है -

'भरत के जनदेशों के समान यमुना का जल तुम्हारे अंधकार

^१ यद्यपि इ-क, विष्णु, प्रणयिमाय, कर्मधारय, तथा बहुव्रीहि तथाओं का नाम धार्य है ।

का विनाश करे। पहले में नीरसों वाले नाटक स्वरूपों की रचना है और दूसरे का स्वरूप त्रय युक्त है। पहले में विन्दु अर्थात् प्रकृति का आनन्द मिश्रता है और दूसरे की युक्तों का उत्थान आनन्ददायक होता है। पहले में भावों का विश्लेषण तथा नाटक का तत्त्व प्रवेशक विद्यमान है तथा दूसरा प्रिय एवं स्नातार्थ प्रवेश करने के लिए गुणकारी है। भरत के नाटकों में गर्म संधि रहती है। यमुना का जल गहरा है। पहले में ऊँची वृत्तियाँ हैं तथा दूसरा ऊँची ऊँची तरंगों का युक्त है। पहले में नृत्य कला का विधान है। और दूसरे में कमलों (पुष्प) का विकास। पहले में विष्कम्भक तत्त्व है और दूसरे में संसार आवागमन का राह देने की शक्तता है।

वाणज्य के नीति से परिचय म प्रकार की 'पद्यकाद्वयी' के नीचे लिखे पद्यार्थ में है। —

'राजाओं के प्रमाद से स्वामी, पद से मंत्री, क्रोध से राष्ट्र व्यसन से क्रोध, बिह्व से दुर्ग, विपत्ति से दना और क्रोध से मित्र क्षीण हो जाते हैं।

पात्स्यायन के काम शास्त्र का परिचय महा रामोदर गुप्त के नीचे लिखे पद्यार्थ में है। —

हे सुन्दरि, तुम्हारे अघर पर दंतकूट, कंठ में नखकूटों की माला, रत्नों पर मलकूट आदि अमरात्मानु सारिणी रति के सूचक हैं।

पद्य में दन्तकूट के लिये विन्दु तथा नखकूट के लिये मणिमाला शराप्लुतक शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये पारिभाषिक शब्द पात्स्यायनकृत काम शास्त्र के नीचे तथा पांचवे अध्यायों में वर्णित हैं।

महा भारत का परिचय म प्रकार के 'दशोपदेश' के निम्नलिखित पद्यार्थ में प्राप्त होता है।

'शुद्धी कुरु राज को मेधा के समान है। यह भग के प्रभाव से प्राप्त है सना भगदत्त पांडा के प्रभाव से

१—एवि ने श्लेष के द्वारा यमुना का जल तथा भरत के नाटकों के तरंगों का जल जल वर्णन किया है।

समस्त है। उसका शब्द कानों में शब्द जैसा कार्य करता है, सेना में कार्य भी। शब्द के शब्द सुनाई पड़ते हैं। पर यह कृपा हीन है। सेना में भी कृपा कार्य नहीं है।'

रामायण का परिचय मधुषासपति के इस पद्यार्थ में देखिये —

'में लाकसा की मृग तृष्णा में अन्धा होकर अनेकत्र घूमा हूँ। पद पद पर रो रो कर 'देहि' यह वचन मोले हैं। कुरिस्तव स्वामियों के मुक्त को बँसकर अनेक बेपटारों की। इस प्रकार मैं राम तो बम गथा पर इतना भी धन न मिल सका कि कुराह से रह लेता। राम भी जन स्वाम अंगक में सुवर्ण मृग की तृष्णा में अंधे बनकर घूम थे। रो रो कर 'होवेदेही' यह वचन पद पद पर कहा था। रापण के पदा मुक्तों पर अपने बाणों को फलानाये की। पर वे राम ही रहे। सीता न प्राप्त कर सके।'

पद्य में श्लेष के बल से भिन्नक और राम के धर्मों का समान वर्णन हुआ है।

मोक्षोपाय का परिचयों म'बकार की 'मुक्तबली' के निम्नलिखित पद्यार्थ में है।—

'तिरासक भक्ति, धिपियों का बाध नहीं आन्तरिक संयम, पदायों के भरवर भाव का प्रतिदिन चिन्तन सात्विक लोगों के लिये परम पद भक्ति के उपाय हैं। उन्हें उप भादि की दीक्षा आवश्यक नहीं।

आत्मज्ञान का परिचय जैसे ग्रन्थकार के चित्र भारत मातृक में—

'बड़े बड़े शास्त्रों की कथा की जुगाली करने से क्या काम ? तन्त्रियों की प्रवृत्तिपूर्वक आन्तरिक व्योमि का अभ्येपण करना चाहिये।

पाठु परिचय राजशेखर के इस पद्यार्थ में है।

'मखून से फाड़ी हुई हथी की गोंठ के समान पीले शरीर पर बिरु से उत्पन्न हुआ सफेद रंग ऐसा अच्छा लगता है माना सोम के साथ पीड़ी रखा मिलाकर मृगाधी के अंग बनाये गए हैं।'

रत्न परीक्षा परिचय जैसे महामहान्त के इस पदार्थ में—

‘आप ऐसा उत्तम भण्ड जो आपत्तिकाष्ठ में धन खसकों में में मूयख, आत्म भय में शरण तथा रात्रि में दीपक बनकर अनक प्रकार के बड़े बड़े उपकार करने में समर्थ होता है, कोई कोई होता है ।’

मैद्यक परिचय जैसे ग्रन्थकार की ‘यद्य कादम्बरी’ के निम्न-लिखित पद्यांश में—

‘इसका शरीर चन्दन के लेप तथा कमल पत्रों में बिपा है । सदाप राप की भौंति शरीर को सुखा रहा है । कपन को देखकर सलियों भी काँप जाती हैं । रवालों में चन्द्रम हार डक जाता है और बीनाशुक हट जाते हैं । इस प्रकार महान हाह तथा पोड़ा देने वाला अगर उसे हा गया है ।’

व्योति शास्त्र का परिचय विद्यानन्द के इस पदार्थ में—

‘आकाश को देखते-देखते, चक्षुषों गिनते-गिनते, आवा परलते-परलते और बह्मक्षियों गिनते-गिनते व्योति, पद्यों को केवल नष्ट ही होता है । रात वही घम्य है, दिन वही अन्ध्रा है तथा कुछ वही पुण्य है जिसमें प्रिय अपनी प्रिया की नेत्र सीमा में अनजान में आता है ।’

घनुर्वेद का परिचय ग्रन्थकार की कनक जानकी के इस पदार्थ

में—

‘अरदूषण तथा त्रिशिर के संहार के समय मैंने निरचल हो कर आर्ष (राम) की विस्मयकारिणी स्थिति देखी है । इसमें बादलों का सा अस्त्रा का लापव था । बाण घनुष पर चढ़े थे । वह पिनाकी की वीर स्थिति के समान प्रिय थी और चित्र क्रिया का तो कर्त्तकार थी ।’

शान के कवलों का परिचय जैसे वसी के दूसरे पदार्थ में—

‘कुम्भर के समान राघव ने अपनी प्रियतमा को धन में आकंक्षी स्मरण कर भोग के कवलों को दीपे कल से स्वाग दिया और क्लेश की शय्या से सुलने लगे । कान के पास दुलने वाले चमर से उनके स्वास फैल जाते थे । शूल और चत्र से विभूषित होकर भी वे राग्यविमय से डूब करते थे । उनके मेत्र नष्ट रहते थे ।’

भरव के लक्षणों से परिचय लही के 'अमृत तरंग' काव्य में—
 'मग्रावक्ष पर्यंत के विमर्दजम्य खेद के कारण समुद्र ऐसा होगया
 मानो घोड़े का आधार बनाने को उद्यत है। उसमें भावार्त
 (मैंबर) थे। घोड़े के शरीर पर भी बाओं की मीरियाँ होती
 हैं। घोड़े के समान ही उसका बल महान था। फेन सा वह
 श्वेत था। लक्ष्मी जवा भी श्वेत होता है। समुद्र का वेग पवन
 के कारण बढ़ गया था। भरव का वेग पवन का सा महान
 था। दोनों के भोप गम्भीर थे। विश्व साम्राज्य का दाता लक्ष्मी
 यथा भरव इन्द्र के पास आया। अपनी हींस के शंख तुल्य
 शब्द से बसने आरोप शुभ की सूचना दी। इन्द्र ने उसे
 मर्हण कर लिया।'

पुरुष लक्ष्य परिचय काशिदास के इस पद्यार्थ में—

'दिलीप का वृक्ष विराज था। कंधे बैल के से थे। साक वृक्ष
 जैसा वह लम्बा था। सुजार्ज उसकी महान ब्री। ऐसा
 लगा था कि साकात् चात्र धर्म ने अपने कर्म के योग्य
 शरीर का आत्मपण कर लिया हो।'

पुरु परिचय चन्द्रक के नीचे लिखे पद्यार्थ में —

'जहाँ घर में अनेक थे वहाँ एक ही रह जाता है। जहाँ एक
 है वहाँ ग्राह में अनेक हो जाते हैं। कभी एक भी नहीं
 रहता। इस प्रकार पार्श्व के समान दिन रात को दोहरा
 हुआ काल प्राणियों की गोद बनाकर काशी के साथ लीला
 किया करता है।'

इन्द्रजात परिचय यथा भी हर्ष के विम्बलिखित पद्यार्थ में—

'मह कमल पर जला हैं; ये चन्द्रोत्तर शिव हैं। बार
 सुजाओं में शंख, चक्र गवा पद्म जिये हुए ये विष्णु हैं।
 घेरावत पर बैठे ये इन्द्र हैं। तथा हे देवि, जबस पार्श्व में
 मूर्धुर बौधकर व्योम में भावती हुई ये अप्सरायें हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकीर्ण परिचय में नीचे विप्र-परिचय यगवान
 व्यास के इस पद्यार्थ में—

'विषय्य लोग भूटे को सज्जा दिला देते हैं जैसे विप्रकार
 समारण पर भी जीवा बँबा दिखते हैं।'

वैरापरिचय II यकार के 'शशिवरा' काव्य में —

'अमिसम्पु के कंठस्थ रस को सुनकर भोग लोग पिठने के भय से भाग गये, भागव लोग छिप गए, मत्त लोग पश्चात्पन्न कर गये, मार्गध मार्ग से अनेक बार दूट गये, बंगों का समूह मैदान छोड़ गया, मोन लोग सरमा गए, और आग्न लोग आपस में मित्रपद एक ओर लहे हो गये ।

दृष्ट परिचय II ही के 'कनक बानकी' काव्य में —

'उसने देखा कि आसम जामुन, कंदूरी, कदम, नीम, मौलभी, पिस्तलन, अन्न बहेड़ा, शाल, डाक, कनेर, केजा, नीचू, गूबर, संतानक सेब, विषय तिलक, स्नेहमातक, आरगव, म्बम या अजुन, शासन, तथा असन के वृक्षों से झले पड़े हुए थे ।'

बनेवर परिचय इसी में —

'उसने सामने पुक्तिशों का देखा । इनके बायें कंधे पर धनुष थे जिनके टेढ़े टेढ़े कोनों में सींचे की मुँद किए रक्त टपकते खरगोश लटके थे । हाथों से चमर लसके जाते थे । मस्तका के सिरे पर जो कदूरों के बच्चे बिलोये हुए थे उनसे गिरने वाली रक्त बिम्बिदुओं में नुस्खोर रँग गया था । कमी हमी का सिर फटने पर वे जोर से बिम्बाव थे ।'

औदार्भ परिचय म'बकार के 'चतुर्वर्ग संन' में —

'कुभीन माय्य दे वर उयमे मी अधिक कलापान विद्वान है । विद्वान से मी अधिक मुशोल मुशोल मे अधिक धनी और धनी से मी अधिक दागा माय्य दे और अयाचक मे हो दाठा स भी कीर्ति जोत ली है ।'

अपेठम में जेवमा व्यारोप का परिचय जैले म'बकार के सिम्प भी महोदयसिंह के कलितगमिपान महाकाव्य में —

'यह क्षेत्र का महीना सम्राट कायरेव से मैत्री बढ़ा रहा है । लिजे दूर अयोध के बहुत पुर्णों से यह अविशय रक्त स्निग्ध है । तीनों सुवर्णों की जोड़ने के क्रिय बयत है ।'

भक्ति परिचय उन्हीं के 'भक्ति भय' नामक महाकाव्य में—

'भय भीति का भजन करने वाली वह सम्मति मद्र पुष्पों में ही उत्पन्न होती है जिससे भगवान शिव में निर्वाण प्रेम से युक्त तथा जन्म से किये गए अभ्यास द्वारा वासित अंतःकरण को शांति प्रदान करने वाली भक्ति उत्पन्न हो। इस सम्मति से प्राप्त होने के महामोह के अंकुर भी नष्ट हो जाते हैं।'

विवेक-परिचय प्रवचनार के शिष्य राजपुत्र लक्ष्मणादित्य के इस पद्यार्थ में—

'आशापास स विमुक्त शुद्ध सन्तोषी मनः। सेवा से न धकन वाला निरालस वचन हो। शिव का अर्चन और गंगा की भाँति आत्म शुद्धि करने वाली मरसंगवि हो। यह संसार सागर से पार जाने का श्रेष्ठ साधन है।'

प्रभस का परिचय प्रवचनार के 'चतुर्भंग समूह' के नीचे लिखे पद्यार्थ में—

'संसार का कबज तनिक भी न रहे सत्पुरुष यदि नित्य यह विचारें कि चित्त वायु में चलने वाले धूलि कणों के समान चरुचल है रूप संख्या की भूष है। भोग जीर्ण घरके बन्धों की भाँति चपल है यौवन पुष्पों का स्मित है बन्धु समागम स्वप्न है और शरीर सबक के बीरादे का प्याऊ है।

२—वातु रचना के साहचर्य से पवित्र, रुचिर और उचित परिचय प्राप्ति का विभागशः सुषम रूप में यह दिग्दर्शन कराया गया है। इस महीन उपदेश में थोड़ी भी उपादेयता हो तो सत्पुरुष इसे सुनने का अवसर निश्चय है।

३—चेमेन्द्र ने वाली काम के स्त्रिय वैश और पौरुष उपायों का अनुष्ठान कर जो अलित दिया है उससे काव्यार्थी सागों को पेशी प्रामाणिक वाणी प्राप्त हो जो स्वतन्त्र भक्ति और प्रतिभा के प्रभाव से सुभग हो और नाम्मन मंत्र के पवित्र मोत्रामृत को बरसाती है।

यह काव्य जीमान अनीतरुण सूरति के राज्य में प्रकीर्त हुआ है। वे काश्मीर के प्रताप सूर्य हैं, कीर्तिचर्यों के चंद्रमा हैं बड़े बड़े शत्रुओं के वन के लिये बाबाग्नि हैं। घमड़ हैं, भूमण्डल के इन्द्र हैं। कश्मिर में बिराद रूप भगवान विष्णु के मानो रसान्तर हैं।

सुवृत्ततिलक

पहला विन्यास

१ मंगल

मगवान् शिव की कटावों की वक्र चमस्कता, जो शीघ्र के पैर हुए कनों के रत्नों की ज़ाया कटा म लास हो जाती है तथा शर्वती रतिविज्ञास में शिवजी का जो कणमह करती है उसमें इर्ष्या के कारण किये गये इनके मलचयों से जो अधिक सुन्दर बन जाती है, वह आप सचकम मुक्त बिस्तार करे।

२—३—स्वच्छन्द रूप म लघु रूप चारण करने वाले, त्रिग गद्गुगु मायावक मगवान् विष्णु, जिनका वामन वृत्त स्पष्ट है, उन्हें प्रशाम है।' कर्मों के निधान, सद्गुण और आचार के प्रज्ञा, तब और सत्य के आश्रय तथा अपरिमित सेवा वाले मगवान् व्यास को प्रशाम है।

४—५—प्रस्तावना

सेनेत्र यह सरस्वती का शृंगार खरिब बर्णों का 'सुवृत्त तिलक' अपने शिष्यों के मस्तक पर करता है। उसने गुण शीघ्र का देखकर तथा सान्ध्य का विचार कर काव्य कम में प्रसिद्ध कर्मों का यह संमह किया है।

६—शीघ्र तथा संयुक्त अक्षरों से पूर्ण का श्वर गुरु कहलाता है। इसी प्रकार संयुक्त अक्षरों का योग जिसमें नही ऐसा द्वय अक्षर लघु कहा जाता है।

७—८—मगण त्रिगु, मगण कादि गुरु, जगण मध्य गुरु, सगण अ३ गुरु, मगण त्रिगु, यगण कादि लघु रगण मध्य लघु तथा तगण अ३ लघु इन हैं। यह शास्त्र में लघु के लिये 'ल' अथवा लकार मध्य गुरु के लिये 'ग' अथवा गकार का प्रयोग किया जाता है।

९—ये मगण कादि अक्षर कभी एक पद में आ जाते हैं कभी-कभी-कभी अलग-कभी पदों में और कभी सयाग में।

१—लोक में तब और वृत्त चर का इच्छा एवं आकर्षण के प्रतिरिक्त तब सर्व की सेनेत्र है रता है।

सचय-उदाहरण

१०—तनुमध्या

तनुमध्या में तगय और बगय के छ' अक्षर १-४ तथा इन्हीं के पहले दो अक्षरों पर पठि होती है। जैसे—

येन प्रणि मध्य कामं वयसा सा।

येन प्रवित्सार्य वत्ते तनु मध्या ॥

‘वह स्त्री वस योचनावत्सा में औरों से विद्वज्जन बन गई और वसी कारण वसमें विकास आगये। उसका मध्य भाग सूक्ष्म होगया।’

११—कुमारकथित

कुमार कथित में अगय, सगय तथा एक गुरु मिश्रकर साठ अक्षर होते हैं। इसमें बिराम कहीं नहीं होता। जैसा—अ वक्षर का अपना यह पद्य—

जनं सृष्टिं दशाप्तं गतामुगतिः किमु।

न शोभति जनोऽयं कुमार कथितं तत् ॥

‘मेरे पाक से बहने वाला मनुष्य वस व्यक्ति के विषय में नहीं सोचा करता जो सृष्टि मात्र रोप रह गया है। यह वसका वाक्यकथन है।’

१२—विद्युन्मासा

इसमें आठ अक्षर होते हैं। पहले दो अगय और बतक अन्त में गुरु। जैसे—

मौनं ध्यानं भूमौ शय्या शुभी तस्या कामावत्सा।

मेघोत्सर्गे मृत्तासक्त्य यस्मिन् व्यक्ते विद्युन्मासा ॥

‘जब बादलों की ग्रेड में बिजलियों नाचने लगती हैं तो वसकी काम दशा वह जाती है। वह मौन होकर ध्यान करने तथा मृन्मी पर सोने लगती है।’

१३—प्रमाथी

प्रमाथी छन्द में भी अक्षर आठ ही होते हैं पर वसमें कपु तथा गुरु अक्षर का आनन्तर्य रहता है। अर्थात् आठों अक्षर कपु गुरु क्रम से आते हैं। इसके कारण वसमें एक प्रकार का काम्य चमत्कार रहता है। जैसे—

सधुभूतं मयोद्धतं गुरुममाय केवलम् ।

न परपरोपकारं कुरु युयैव सत्यमाचरयि ॥

‘असि’ को मयोद्धत बनाने वाला अस्पृहान कवच गुरु के परिमम का ही कारण बनता है। वह प्रमाण शुद्ध ज्ञान भी व्यर्थ है जिससे किसी प्रकार का परोपकार न हो ।’

१४ १३—अनुष्टु

अनुष्टुप् के चारों पादों में पाँचवाँ अक्षर लघु, तथा छठा गुरु होता है। दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ अक्षर भी लघु रहता है। इसके अनेक भेद होते हैं पर कव्य के अनुसार इन सबका प्रधान गुण सम्प्रता है। जैसे भगवान् व्यास का यह पद्य—

तव कुमुद नाभेन कामिनी गण्ड पादभुजा ।

नेत्रानन्देन चम्पू माहेन्द्री विगलंछता ॥

‘इसके अनन्तर कामिनी के कपोल के समान पीछे तथा नेत्रों को छुल देने वाले चम्पू ने पूर्व दिशा को अलंछित किया ।’

१५—सुधाग शिशुसृता

मगल नगल तथा मगल जो अक्षरों के जम्ब को जम्बोविद् ‘सुधाग शिशुसृता’ कहते हैं। जैसे प्रगल्भकार का निम्नलिखित पद्य —

न नमति चरखी मकरवा किमिति बकमतिर्लोक ।

मम मय शमनी शोभोर्मुखा शिशुसृतावमे ॥

जब बुद्धि वाला यह संसार शिव के इन चरखों में क्यों प्रखाम मही करता जो संसार के मय को नाश करने वाले हैं और सर्पों द्वारा पारण किये गये हैं ।

१६—रुक्मवती

मगल, मगल, सगल और अमल में एक गुरु, इस प्रकार दश अक्षर वाले जम्ब को जम्ब शास्त्री रुक्मवती जम्ब कहते हैं। जैसे प्रगल्भकार का यह पद्य —

भग्नमस्त्यै काम सइसै मोहमयी गुर्बी मम याया ।

स्वप्नविज्ञासा पागपिषोण रुक्मवती हा कस्यहते मी ॥

‘सइसै’ असत्य शरीर भग्न हो जाते हैं। संसार की मोहमयी माया गुर्बी है। कइमी स्वप्न के विज्ञासों के समान आनी-आनी है। यह स्वर्ण मयी लहमी किसी की भी मही होती ।

१८—इन्द्रवज्रा

इन्द्रवज्रा में दो तगण्य, एक जगण्य और दो गुरु अक्षर होते हैं। इस प्रकार इसमें ग्यारह अक्षर आते हैं। जैसे प्रथकार का यह पद्य—
 'तौ जम्भगङ्गौ वार्योन यस्य कष्टौ निमिष्टौ द्वि क्रम कोपौ ।
 तं पुस्तहास्ता ब्रह्मदिन्द्र वज्र पातोपमा' ब्रह्मराक्षसा विरामि ॥
 'अम्म से ही छिपे हुए, कष्ट दावक काम और कोप जिसके हृदय में बरख रज्जकर प्रावण्ट हो जाते हैं। उस पर इन्द्र के वज्र के दुस्य कठोर तथा असह्य ब्रह्मरा दशाये गिरती हैं।

१९—उपेन्द्र वज्रा

जगण्य तगण्य, जगण्य तथा दो गुरु, इस प्रकार ११ अक्षरों का ब्रह्म उपेन्द्र वज्रा है। जैसे प्रथकार का यह पद्य—
 'जितो जगत्पेय भवभ्रमली,
 गुर्वित ने गिरिर्ग मरमि ।
 क्पास्यमान कमकासनाचै,
 रूपेन्द्र वजायुय वारि मावै ॥

'जन्होंने संसार के भ्रम को जीत लिया जो गुरु के रूपेय से शिव का स्मरण करते हैं, ब्रह्मा विष्णु, इन्द्र तथा वरुण ही उनकी (शिव की) उपासना करते हैं।'

२०—उपजाति

इन्द्र वज्रा तथा उपेन्द्र वज्रा के पदों के परस्पर योग से उपजाति ब्रह्म बनता है। ये योग अनेक हो सकते हैं अतः इस छंद के भेद भी अनेक होते हैं।

२१—दोषक

तीन जगण्य तथा दो गुरु, ग्यारह अक्षरों का छंद दोषक होता है। जैसे प्रथकार का यह पद्य—
 'यो भव विभ्रम मंगुर मोगा,
 गच्छत मास्वधुमा सम मोह',
 विस्तति चेतसि ब्रह्मकलायुत,
 यत्त जनामयदोऽय कपाळी ।

'अरे संसार के जहियक भोगों, जैसे आधो। जब तुम्हें मोह मही रहा। यत्त जनों को अमय बेनेपाते अत्रोत्तर शिव मेरे हृदय में बैठे हैं।'

२२—शास्त्रिणी

एक भगण दो भगण तथा दो गुरु, इस प्रकार ग्यारह अक्षरों का छन्द शास्त्रिणी है। इसमें पहले बार अक्षरों के बाद विराम होता है, जैसे प्रथकार का यह पद्य —

मत्ता गोष्ठोगम गूढ प्रक्षापा,
प्रोद्धा गाढाक्षिगिता धौबनेम।
मन्वाताम्रस्त्रेदमीक्षकपोक्षा,
खोक्षा क्षीक्षाराक्षिणी कस्य मेष्टा ॥

ऐसी क्षीक्षा शास्त्रिणी सुधती जो मधु पीकर मस्त बनी अस्त-व्यस्त आवाप करती है तथा जिसके कपोल धामे के से रंग के एवं रवेद संसिद्ध हो जाते हैं — वह किस प्रिय नहीं लगती ।

२३—रघोदृता

एक भगण, रगण कण तथा गुरु इस प्रकार के ग्यारह अक्षरों का छन्द रघोदृता कहलाता है। जैसे प्रथकार का यह पद्य —

रम्य नर्म कलयोग तर्जनी,
भ्रूलतेष हरक्षारघोषिताम्।
बैजयन्त्यमिमुली रघो रघो,
भाति तं नरघटे रघोदृता ॥

हे राजन् तुम्हारे रघ पर कारण वाली बबल पताका युद्ध में सामन आकर भ्रूलता के समान रात्रि की शिपों को गृहार भोग का तर्जन सा करती है।

२४—स्वागता

रमण भगण भगण तथा दो गुरु इस प्रकार के ग्यारह अक्षरों का छन्द स्वागता है। जैसे प्रथकार का यह पद्य —

रमभग भिमसे गुण तुनी,
रर्धितामभिमतार्पण सखे।
स्वागता भिमुख मघ रिररके,
कौम्पते जगति साधुमिरेय ॥

‘जो मधुरूप रमों के पुच्छों के समान निर्मल, अपने भुंभी कारण नम्र, पाचकों के अभिमत हातार तथा स्वागत के लिये शि मुकाय रहत हैं, संसार में वही जीवित हैं ।’

२५—घोटक

मध्य में बिना यति के चार सगय बाक्का बारह अक्षर का ब्रम्ह
घोटक कहलाता है । जैसे म बकार का यह पद्य—

सरस स्मरसार ठरो ययसः,
समय स्मृति शेष दशा पठितः ।
गङ्गिवाक्छिन्न राग कृषि विनये,
परितोऽष्ट कपाककरः सुमते ॥

‘आयु का यह सरस भाग जिसमें स्मर का सार अधिक रहता
है, स्मृति शेष रह गया है । अतः है सुमति समस्त राग और कृषियों
का त्यागकर हाथ में कपाक शिखे निर्जन स्थानों में भ्रमण करो ।’

२६—वंशस्थ

अराण, उराण, अराण, उराण,—इस क्रम से बारह अक्षरों का
ब्रम्ह वंशस्थ होता है । जैसे म बकार का यह पद्य—

अनस्य तीज्जातपजार्ति बारखा
अपमि सन्त सठठं समुज्जा ।
सिवात पत्र प्रतिमा विमानि य,
विशाल वंशस्थतया गुणोचिता ॥

‘मानव के तीज संठाप तथा कष्टों को निवारण करने वाले सदा
समुज्ज्वल सन्त जागों की अथ हो या गुणी एवम् विशाल वंशस्थ’ होने
के कारण येत ब्रम्ह जैसे लगते हैं ।

२७—द्रुत विवर्धित

‘जिसमें अराण, अराण, अराण, उराण, इस क्रम से बारह अक्षर
होते हैं वह द्रुत विवर्धित ब्रम्ह है । जैसे म बकार का यह पद्य—

ममसि मर्ग गङ्गच्छविभिर्धनै
द्रुतविवर्धितगै परियारितः ।
सितकटः कर्णस इवामितः,
तरति संवर्धितो यमुनोर्मिमि ॥

‘शिवजी के कण्ठ की सी ज्वि वाले तथा शीघ्र एवं विवर्धित से
होकर हुए बादलों में घिरा हुआ अद्भुत आकाश य देखा श्रवता है
जैसे यमुना की तरंगों में घिरकर सरता हुआ हंस ।

१—विशाल वंशस्थ = बड़े बड़े वर स्थित धन तथा कण्य कुछ में प्रवर्धित
सन्त शेष ।

२८—प्रहर्षिणी

मगल, नगल, अगल, रगल तथा एक गुरु इन तेरह अक्षरों का क्रम प्रहर्षिणी होता है। प्रारम्भ के चौदहरे अक्षर पर पठि होती है। जैसे प्र वकार का यह पद्य—

गानीज सुतमिगुखैर्वशा.सितानाम्,
निर्घ्याज मित्र मुक्त विक्रम क्रमात्ता।

सर्वाशाप्रसन्नविमनोपजीव्यमाना,
मन्वानां मवति परप्रहर्षिणी श्री ॥

‘मान, मोक्ष आदि शुद्धों के कारण पराशरी वने व्यवस्थियों की अपने मुक्त विक्रम से कमाई हुई लक्ष्मी निर्घ्याज होती है। यह सब ओर क दृष्टीय जनों को आशीर्षिका एवं हर्ष प्रदान करती है।

२९—वसन्तविक्रका

तगल, मगल, अगल, अगल तथा दो गुरु इस प्रकार चौदह अक्षरों का क्रम वसन्तविक्रका होता है। जैसे—प्र वकार का यह पद्य—

तदुमानि जम्भसन्निभे मगवत्पद्मगे,
प्राप्ते लम्बतुमुम मरुतस पाण्डुरेण।

भृगावली कुटिल कुतल सन्निभेरा,
कान्ता वसन्तविक्रकेन विभूषिताम् ॥

‘जम्भ के मित्र मगवान कामदेव के आमाने पर दृष्टी रूपी कान्ता विभे पुष्पों के पीछे वसन्त विक्रक में तथा जमरों के कुटिल कुतल से विभूषित होगई।’

३०—मासिनी

दो मगल, मगल तथा दो मगल के पन्द्रह अक्षरों का आठवें अक्षर पर विराम युक्त यह मासिनी होता है। जैसे प्र वकार का निम्नलिखित पद्य—

‘मननमय भागी मेखना कुटि कसे,
प्रविचलद्विष शील मातृजम्बी दुःखम्।

पुण्यसन्निभेऽपि स्वेरिणी शम्भाना,
दिरा दिरि कुत दृष्टि मासिनी कस्य मष्टा ॥

‘स्वेर विहारिणी मायिका रतिबाल में मेख लिखते समय ‘न, म, म’ करके गिरते हुये शीघ्र क समान दुःख को न छोड़ती

२५—घोटक

मध्य में बिना पति के बार सगाय वाला बारह अक्षर का जन्म घोटक कहलाता है। जैसे म यक्षर का यह पद्य—

सरस^१ स्मरसार तरो ययसः,
समय स्मृति शेष दशा पठित ।
गक्षितालिख राग रुचि विगने,
परितोऽष्ट कपाक्षरः सुमते ॥

‘आयु का यह सरस भाग जिसमें स्मर का सार अभिक रहता है, स्मृति शेष रह गया है। अतः हे सुमति समस्त राग और रुचियों का त्यागकर हाथ में कपाल जिये निर्जन्म स्थानों में प्रमथ्य करो।’

२६—वशस्य

अगाय, सगाय, जगाय, रगाय—इस क्रम से बारह अक्षरों का जन्म वशस्य होता है। जैसे म यक्षर का यह पद्य—

जनस्य तीव्रातपनार्ति बारया
जयन्ति सन्त सवर्त समुभवा ।
सिन्धुत पत्र प्रसिमा विमानि ये,
विशाख वशस्यतया शुखोषिता ॥

‘मानव के तीव्र संताप तथा कष्टों को निवारण करने वाले सदा समुन्नत सन्त जागों की जय हो या शुखी पद्म विशाख वशस्य’ होने के कारण श्रेष्ठ जन्म जैसे कहते हैं।

२७—द्रुत विलंबित

‘जिसमें मगाय, मगाय, मगाय, रगाय, इस क्रम से बारह अक्षर होते हैं वह द्रुत विलंबित जन्म है। जैसे म यक्षर का यह पद्य—

ममसि मर्ग गलपद्मविभिर्पने
द्रुतविलंबितगी परिवारित ।
सितकरः कलाईस इवामितः,
वरति संवर्धितो यमुनोर्मिमि ॥

‘शिवजी के कण्ठ की सी लुबि वाली तथा शीघ्र पर्यं विजय से पीड़ित हुए बादलों में घिरा हुआ अम्बुभा आकाश म ऐसा सगाया है जैसे यमुना की तरंगों में घिरकर सैरता हुआ हंस।’

१ -विद्याल वशस्य = बड़े बाँस पर स्थित छत्र तथा जन्म द्रुत में अवस्थित सन्त जाय ।

२८—महर्षिणी

मगण, नगण, जगण, रगण तथा दश गुरु इन तेरह अक्षरों का जम्बू महर्षिणी होता है। प्रारम्भ के तीसरे अक्षर पर यति होती है। जैसे म'बकार का यह पद्य—

मानोज सुरभिगुणैर्बशःसितानाम्,

मिर्म्बाया मित्र भुज विक्रम क्रमाग्रा ।

सर्वोद्याप्रणयिनोपजीभ्यमाना,

मध्यानां मवति परमहर्षिणी श्री ॥

‘मान, भोज आदि गुणों के कारण परास्त्री बने व्यक्तियों की अपने भुज विक्रम से कमाई हुई कस्मी मिर्म्बाज होती है। यह सब ओर के प्रसीध जनों की आजीविका एवं हर्ष प्रदान करती हैं।

२९—वसन्तविरसका

तगण, मगण, जगण, रगण तथा दश गुरु इस प्रकार बीस अक्षरों का जम्बू वसन्तविरसका होता है। जैसे—म'बकार का यह पद्य—

तद्मानि जम्भसचिबे मगवत्पनगे,

प्राप्ते लभस्तुमुम मयस्क पाण्डुरेण ।

सू'गावली कुटिल कु'वल् संनिवेशा,

कान्ता वसन्तविरसकेन विभूषिताम् ॥

‘जम्भ के मित्र मगवान कामदेव के आगने पर पुष्पी रूपी कान्ता जिसे मुष्णों के पीले वसन्त विकरु म तथा अमरों के कुटिल कु'वल् से विभूषित होगई।’

३०—मासिनी

दा नगण, मगण तथा दश गण के पन्द्रह अक्षरों का आठवें अक्षर पर प्रारम्भ कुछ क द मासिनी होता है। जैसे म'बकार का निम्नलिखित पद्य—

‘ममननमय वायी मेखशा कटि कट्टे,

प्रविचरदिव शीली मात्सुवन्तो दुहन्द् ।

गुणतवचमेऽपि स्वेरिजी कध्वन,

विश विधि कड दृष्टि मानिनी कस्य दण्ड ॥

‘स्वेर विहरिणी मासिका रतिहन्त ने मेख खिचने स्वर ‘म, म, म’ करके गिरते हुये शीतल क कन्ध दुहने को र होइते

हुई, दिलके के दिलने पर भी शक्ति होकर चारों ओर दृष्टि बाँटने वाली किस को प्रिय न होगी ?

३१—नकुट

मगण, जगण, मगण, दो जगण तथा सधु और गुरु के सग्रह भक्तों के विराम रहित छन्द नकुट होता है, जैसे म अकार का यह पद्य —

निजमुक्त कैविराज गुण कीर्ति मरै
प्रविष्टता सुखाद्युपवर्त्त मयता मुचनम् ।
कथय कथ कथय मति राग वही जनता,
वरितमपूर्व मेव सब कथ न नकुटकम् ॥

‘अपनी सुखाओं के विराज गुण तथा कीर्ति कर्मों से सुख भर को बन्ना कैसा घबरा तुमने बनाया है । फिर भी इस जनता को, कबो, अतिराग वही कैसे बना दिया ? तुम्हारा अपूर्व वरित सब को आश्चर्य में बाँधता है ।’

३२—पृथ्वी

जगण, सगण, जगण, सगण यगण, सधु तथा गुरु के सग्रह भक्तों के आठ, नौ पर विराम याता छ २ पृथ्वी होता है । जैसे म अकार का यह पद्य—

अवाप्त रत्नसा पुतः भव यिसंयुतांग पदा,
जगन्मस्तुत सगण पिशुनयाम बेरम प्रभा ।
करा, बद्धकाकनैः पक्षयिर्मितैर्मगण,
जगः कर समर्पितामिब महेन पृथ्वी मिमाम् ॥

‘सदा का सबक बेग के कारण धूलसने पैरों से भव शिखर को छोड़कर जब युगलस्रोतों से मरे स्वामी के घर में प्रवेश करता है तो उस पर यदि स्वामी की कल शून्य दृष्टि पड़ जाय तो वह जब यह समझता है कि सारी पृथ्वी उसका हाथ में आ गई ।’

३३—हरियौ

मगण, सगण, मगण, रगण, मगण तथा सधु और गुरु सग्रह भक्तों याता छ २ हरियौ होता है । हमस ह, चार, साठ पर विराम रहता है । म अकार का यह पद्य कदाहरण है :—

समरसनाः काले भोगारब्धत धम यौवनम्,
 कुरुत मुकुटं मायभेषं तनु प्रविशीर्यते ।
 किमपि वसना फलसाययं प्रधावति सत्परा,
 तस्य हरिणी संश्लेषे पश्यप्रविसारिणी ॥

‘भोग का रस हर समय एक सा नहीं होता। धन और यौवन बर्बादमान होत हैं। जब तक यह शरीर बिलर नहीं जाता तब तक अच्छे कर्म करो। काल का यह स्वभाव है कि यह भ्रम में लुप्तग्न मारकर भागती हुई तस्य हरिणी की भाँति बेग से भागता है।’

३४—शिशुरिणी

यगण मगण, नगण सगण भगण, लघु तथा गुरु के सत्रः अच्छों का दम्प शिखरिणी होता है। इसमें छ’ ग्यारह पर यति होती है। जैत मंथफार का यह पद्य -

यथा मम्युर्लान सखविमयमन स्मरपह,
 स्तथा ज्ञाने जाता शम समय रम्या परिणति ।
 इदानी संसार व्यतिकर हरा तीव्र तप से,
 विविच्य कुच्छ में गिरिवरमही सा शिखरिणी ॥

‘प्रतीत होता है कि यह वैराग्य सेला का रमणीय परिणाम है ‘क निम्न प्रकार क्रोध बिलीन हो गया वसी प्रकार स्मर का यौ वैमय मय्य हो गया है अब तो संसार की मय उराभियों में परे पड़्यत तथा शिखरमयी पश्यत भूमि हो तीव्र तपसा क तिय उरयुक्त है।

३५—मद्राफान्ता

मगण, भगण नगण, वा तगण तथा दो गुरु, सत्रः अच्छों का चार, छ’ सात पर विराम मुक्त दम्प मंगार्थता जाता है।

मय्य भंगी वक्षसपित्ततायां संसंग मात्र
 मय्यगतं यदि भूतिमुपः पश्यसाक्षी कयादा ।
 तकिं मिथ्या मियमनिमृतेः कनने घोसतं घी,
 मंदार्थता विराति निशिता पमगी पाणिमत्त ॥

‘मय्य में तारे के प्रभाव में जैसे द्रव्य अपांगों का स्पर्श करने वाले, धैर्य के चोर मुन्दार पक्ष्मल कण्ठों का यदि स्मरण जाता रहे ता निगमों में कम दूर कालि धन में जाने का विपार व्यर्थ हो करत है। साथ में लगी सर्विही घोर उ सरक कर बात लती है।

३६—शाहूजीकीद्विती

मराठ, रगठ, मराठ, मराठ, वो रगठ और एक गुरु
 वसीस अक्षरों का बारह, सत्रह पर विराम बाबा जेद शिखरिणी
 होता है। जेठ प्रबकार का यह पद्य। —

माधवस्वयं समाप्तोम सुमटोभिर्भक्तमस्वयं,
 रिक्तप्यमौलिक दम्पुर् सरयसोद्वेस्वयं केसर ।
 नृशार्दभ भयंकर व्यति कर जले समुद्धीकृतः,
 शत्रुण स्वयसि करोति समरे शाहूजीकीद्वितीय ॥

'पुछ के लिये तैयार हुए सब मस्त सैनिकों के हाथों के
 से कुंभस्थल फाड़कर उनके मोठियों से दूर बनी, वेग से फैलते
 हुए परा के केसरी से पुछ तथा जेभाई के समान अपने प्रचेरों से
 सैनिकों को डराने वाली तुम्हारी तलवार शत्रुओं के बीच सिंह की
 कौता करती है।

३७—झगधरा

मराठ, रगठ, मराठ, मराठ, तथा तीन पराखों से इक्कीस
 अक्षर का प्रत्येक सप्तम अक्षर पर विराम बाबा जेद खगधरा है। जेठे
 म मकार का यह पद्य —

साराईमानुमानप्रियपरिवचन स्वर्गरत्नगनामाम्
 कीला कलवितसमिबमतगु गुण श्लेषया संभवस्या ।
 आवाति क्वत्त मुखविष केन जवली हुन्द कुन्नेनुकास्ता,
 ललकीरुमूरितेयं मुबल परिकुह खगधरेव त्रिसोकी ॥

'हे दुष्णी वति तुम्हारी कीर्ति त्रिसोकी घर को माता की मूर्ति
 मूर्तित करती है। यह सार श्रुतों से पुछ है परम प्रभु श्रुतों से
 अप्सराओं के बसुंभरख की रोभा प्राप्त कर लेती है। उसकी कीर्ति
 बमकते मोती, जिसे हुए लौंग तथा कुन्द के पुष्प एवं चंद्रमा के
 समान है।

इस प्रकार जो ऊपर कथित ज्यों को व्यक्त किया गया है
 वे सभी के हितके लिये हैं क्योंकि वे सत्य हैं; सब प्रकार के काम्यों
 के उचित हैं। अच्छे कवियों ने इनका व्यवहार किया है तथा कानों
 को प्रिय लगते हैं। इनमें कठोर विषय मात्राओं या दुर्बिराम आदि दोष
 कुछ नहीं हैं।

दूसरा विन्यास

गुण दोष विवेचन

१—प्रसिद्ध जन्मों के सर्वत्र लक्षणों का संग्रह कर दिया गया है। अब उनके गुण दोषों का प्रदर्शन किया जाता है।

२—यह सात अक्षरों के जन्म पर सरस्वती उसी प्रकार विभाम नहीं करती जैसे माखली की पाक कसिकाओं के अग्र भाग पर अमरी नहीं बैठती।

३—छोटे जन्मों की शोभा समासों से तथा बड़े बड़े जन्मों की शोभा असमासों से होती है अथवा उपयोग वश वे भव्य बनते हैं।

४५—अनुष्टुप जन्म के विषय में जो वह सामान्य लक्षण कुछ लोगोंने किया है कि वसमें पाँचवाँ अक्षर लघु तथा छठा गुरु होता है यह सार्वत्रिक नहीं है बड़े बड़े प्रबंधों में इसका व्यवहार भी देखा जाता है। इसलिये सार्वत्रिक नियम सम्भवता ही कहा जा सकता है। जैसे काव्यशास्त्र का यह पद्य—

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतं शुद्धिमत्तरं ।

द्वितीय इति शब्देन्दु रित्पुं श्रीरमिषादिषु ॥

इस शुद्ध पद्य में और जो अक्षर शुद्ध शब्दमेष्ठ दिखाए अत्यन्त दुर्भा, जैसे श्री सागर में अमृता अत्यन्त हाता है।

इस स्तम्भ में पहले पाद में 'शु' गुरु है, होना चाहिये लघु। 'पि' लघु है, होना चाहिये गुरु। पर सम्भवता पद्य में है।

६—व्यमाति के विकल्प रूपों में अद्यपि संकर सिद्ध है। फिर भी पूर्व पाद का अक्षर लघु करना चाहिये। जैसे अत्यन्त धन का यह पद्य—

इतांजन श्याम लक्ष्मणवैते,

रमृता कियित्यभुक्ता पतन्ति ।

शु गा इव व्यावत पक्षयो वे,

तनीयमी रोमकता अयन्ति ॥

'भुक्ते काजल से कासे बने तुम्हारे ये भाटे मोटे अमुकिन्दु क्यों गिर रहे हैं। सदा पक्षि वात्र भोरी क समान ये छाटी रामकता का सहारा लेते हैं।'।

इस पद्य का पहला अक्षर 'ह' लघु है।

७—लघु अक्षर स पद्य का मूल भाग के समान ही रहना ही चाहता है। यह अन्त में निर्विघ्न प्रवेश करता है तथा उसकी सरसता

भी बनी रहती है। पर गुरु अक्षर से उसका मुल गाठ बाँधे पागे के समान फट हो जाता है। वह धूल होकर कान को कण्ट देता है। जैसे अक्षिपास का यह पथ—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमाक्षयो नाम जगाद्विराज ।
पूर्वापगौ सोपनिषो यगाद्य,
स्थित पृथिव्या इव मानववद ॥

उत्तर दिशा में दयता हृदय हिमाक्षय पर्वत है। यह पूर्व और पश्चिम अक्षरों का अवगाहन कर स्थित है अतः पृथ्वी का मानववद जैसा जगता है।

यहाँ पड़ता अक्षर 'अ' तथा 'य' गुरु है।

८—वाचक अक्षर हीम छान अक्षरों के योग से बना है। इसमें हीसरे अक्षर पर ही यति हाता अक्षर लगता है। इसमें अधिक या बाँधे अक्षरों पर यह हाता उसका वाक्य भा दूटता है। जैसे म वकार का यह पथ—

सञ्जन पूजन शोशन शोभाम्,
मर्जय वज्रय पुर्जन संगम् ।
बुस्तर संसृति सागर बेगे,
मञ्जन काटण परण मंतम् ॥

'सत्युत्त्यों के सत्कार का शाल शोभा का अजन करो। पुजनों की संगति छाड़ दो। मंमार रूप का ठन सागर में यह डूबने में बचाता है।'

इससे अधिक या कम पर विराम जैसे तु और के इस पथ में—

त्वम्मुल चन्द्र निरीक्षण वार्षा,
य सुतरामिह निर्मल नेत्र ।
मयजनस्य पुर स्थित मेघत्,
सोपकवर्त्म न पश्यति बिभ्रम् ॥

तुम्हारे मुखचन्द्र का देखने में जिसके नेत्र मल्लीमासि निर्मल हो जाते हैं वह फिर सब मनुष्यों के सामने के धृष्टमार्ग का नहीं देखा करता। कैसा आश्चर्य है।'

इस पथ में तीमर अक्षर पर शब्द समाप्त नहीं होते अतः यहाँ विराम भाँही है जैसे वृन्दे पाथ में सुतराम् के 'त' पर शब्द समाप्त होता चाहिये था।

१०—शास्त्रिणी जन्म का बंध स्वभाव से शिथिल होता है। अतः मन्त्री दीप शिखा के समान इसे धूल से उत्तेजित करना चाहिये। शिथिल बंध जैसे मयङ्कार के इस पद्य में—

प्लोष क्लेशी प्रोपितानां हिरास्वी,
मान म्लानि मानिनीनाम् दधाना।
गाढं स्रष्टा सद्गुण म्लानि दाने,
चन्द्रस्य श्री दुर्जेनस्येव जाता ॥

‘चन्द्रमा की आमा दुष्ट की संपत्ति क समान प्रवासियों को बाह्य का क्लेश दे रही है; मानियों के मान को खींच बना रही है और भेद्य गुणों का कम करने में लगी है।’

यहाँ छोटे छोटे शब्दों में शिथिल बंध है, अतः असुन्दर लगता है।

११—यदि शत्रु प्रत्ययान्त शब्दों के योगस तथा विसर्गों के द्वारा शब्द योजना कक्षा हा जाय ता वह ब्रह्म हीन हो जाता है अतः भेद्य है। जैसे मयङ्कार का यह पद्य—

कञ्जा मन्त्र म्लान्य दारयन् क्वता,
स्तिर्यक् मिथक्तकी पत्र तीक्ष्ण।
मगना रिचते कस्य निर्याति भूष,
मेमाग्मोत्ता क्षम लाघवी कटाक्ष ॥

‘पद्मलाघवी युवतिवती क प्रेम कटाक्ष करवा से झूठे और ‘चल तारों के अतः मागस सुन्दर हो जाते हैं। तिष्ठते मिथक्ते हुए वे कोइकी के पत्र जैसे तीक्ष्ण यदि किसी के चित्त में शक्ति हो जाये ता फिर निकलते मारी हैं।’

१२—शिथिलता के कारण शास्त्रिणी का माधुर्य रुक जाता है जैसे किसी मंदगति वाले व्यक्ति की रुचि दृष्ट से और अधिक मंद हो जाती है।

१३—रघोदत्ता ब्रह्म के पाशान्त यदि विसर्ग युक्त हो तो वाक्साविद्य सुन्दरी की भाँति और अधिक आकर्षक हो जाता है। जैसे मयङ्कार का यह पद्य—

अत्र दीप्त समय निरन्तर,
प्रोपिता हृदय कीर्त पावका।

वाम्नि कामुक मनो विमोहना,
भ्याल लोल मलयान्तरिका ॥

‘यहाँ क्षेत्र मास में मलयान्तर की हवायें निरन्तर बहती हैं। वे साँपों की भाँत खँबल बनी कामुकों के मन को मोह लेती हैं और प्रोपिताओं के हृदयों में पाषाण बसेर देती हैं।

इसमें प्रत्येक पाद के अन्त में विसर्ग है।

१४—यदि इसमें पाद के अन्त में विसर्ग न हों तो वह इसी प्रकार फीकी हो जाती है जैसे बिना प्रार्थना के प्रेम करने वाली मानिनी नायिका। कविराज कवि का यह पद्य उदाहरण है—

अजस्रौ अलमधीर लोचना,
लोचन प्रति शरीर शारितम् ।
आप्त प्राप्तमपि काम्य मुञ्चिषुम्,
कातरा शफर राक्षिनी नहौ ॥

अधीर लोचना नायिका ने काम्य पर झिड़कने के लिये बल हाथ में लिया। पर नेत्रों के प्रतिबिम्ब से उसमें मल्लखियों की आशंका से कातर होकर फिर झोम दिया।

यहाँ पादान्त में विसर्ग नहीं है।

१५—स्वागता छन्द के पादान्त में यदि ‘आ’ के अनन्तर विसर्ग हो तो उसकी चारुता बढ़ जाती है और वह काम्य लोभार्थ के लिये अधिक उपयोगी होती है। जैसे म बकार का यह पद्य—

भ्याललम्बित तरला जलपाय,
पान्थ संगमभूते परिहार ।
प्राप्त रत्ननिभ विद्युद्द्वाराः,
प्राप्त्य पुष्पयोधर द्वार ॥

‘पथिकों के संगम के धीरे को दूर करने वाली खँबल जल-भार गिरती है और नावक वर्षा के द्वार जैसे तथा तनक प्राप्त भाग की विवर्तिता रत्न जैसी मतीव होती है।’

यही बात म बकार के इस पद्य में नहीं है—

अम्बरेन्दु मरल्लवि पयोदे,
मत्त बहिं रुचिरेद्विमितमे ।
पुष्पयामनि कर्बव कर्बवे,
का रति पथिक काक विसर्गे ॥

आकाश में जल के मार से बादल छटकने लगे हैं, पर्वतों पर मस्त होकर मयूर नाचने लगे हैं और एक एक कदंब पुष्पों का घर बन चुका है ।

‘यमिह, ऐसे समय में विजय करने से तुम्हारी क्या गति होगी ?’

१६—‘लोटक छड़ वह प्रिय संगता है जिसके पदों में हल्के अक्षर हों तथा शीघ्र शीघ्र ताक और लय हों । जो चित्त को मचा लावे । जैसे मधुकर का यह पद्य—

मह प्रीणित लोचन पट चरणम्,
घन राग मर्तगकरा मरणम् ।
कमल धुति मुग्ध वधू वदनम्,
सुकुली पिक्तीह सुधा सदनम् ॥

‘मुग्धवधू के ऐसे मुल का जिसके नेत्र मद से प्रीणित होकर मोरे की मूर्ति घूमते हैं; जिसका राग घना हो जाता है, जो कमल के हाथों में आमृष्य बनता है; कमल की सी जिसकी छवि होती है और जो सुधा का सदन होता है—मुग्धपारमा लोग ही पाम करते हैं ।’

१७—‘वशात्तु त्वं तव अमूर्त्य बन जाता है जब इसके पादों में असमस्त पदों के प्रयोग से संधि मिच्छेद का मौन्दर्य हो या पादों के अंत में विसर्ग आते हों । जैसे बाणभट्ट का यह पद्य—

अयमिह बाणभट्ट मोक्षिकाकिता,
वशात्तु वृद्धामणि अक शु वन ।
सुरासुराधीश शिलाभक्त शायिन ॥
तमस्मिन् अयं वक्ता पाद पामय ॥

‘बाणभट्ट का मस्तक जिनका आसन करता था; जो रायग की वृद्धामणियों के समूह को घूमते थे तथा जो सुर और अमृत के शिर पर सोते हैं इन अयंकार को दूर करन वाले शिवजी के चरण रेणुओं की जय हो ।’

यहाँ वादाम्ब में विसर्ग है ।

इसके विपरीत भी कभी का पद्य यह है —

ममामि भवोरवरणां दुःखद्वयं सरोवरैर्मोक्षरिणि कृतार्चनम् ।
समस्त सामग्यं किरितबेदका विटंक पाठास्तुठिना कृतां गुणि ॥

‘भक्तु’ के चरख कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ । नका मुकुटयारी मौलरी लोग अर्चन करते हैं तथा चिनकी छात्र अंगुलिपों समस्त सामंतों के किरीटों की घेविका पर लोटती हैं ।’

१८—दूत विस्मयित तब अच्छा लगता है जब उसका प्रारंभ पदों के दूत विस्वास से तथा कवसान विलंबित विस्वास से होता है और पार्श्व में संक्षिप्त मही होती । जैसे प्रजापति का यह पद्य—

कमल पद्मव पारि कथोपमम्
किमपि पाति सदा निधनं वनम् ।
वक्त्रं कर्णं चक्षुःश्रोत्रं चक्षुः
स्विर उद्यमि यथासि न जीवितम् ॥

‘कमल पद्म की कल विष्णुओं के समान अस्विर वन की दू कया रचा करता है । यह तो हाथी के कर्णों के कान की मांति चंचल है । स्विर तो यश होते हैं जीवन मी मही ।’

इसमें समास होने पर भी पद संक्षिप्त रहित है । प्रजापति के इस पद्य में पदों का विस्मयित विस्वास है दूत नहीं ।

निपटतां भ्रमतां विनिमज्जतां प्रविशतां परगार शतैरपः ।

तनुच्छतां भव एव भवाम्भवे भवमये भगवान् पल्लवनम् ॥

‘भव से मरे संसार कभी समुद्र में गिरसे हुए, चक्कर खादते हुए, डूबते हुए तथा अपने सैकड़ों परिवारों के साथ भीचे घँसते हुए प्राणियों के किए भगवान् शिव ही सहारा हैं ।’

१९—महर्षिजी ब्रम्ह से तब हर्ष होता है जब उसके प्रत्येक पाद में मन्द कव पादों तीन तीन अक्षरों के पद हों और शेष पदों का अक्ष दूत गामी हो । जैसे भी हर्ष का यह पद्य—

दुर्धारां कुमुद शरत्पतां वदन्त्या,
कामिण्या वदमिहितं पुरः सखीनाम् ।
वदन्त्या शिशु शुक सारिकाभिरुत्त,
वदन्त्यां वदन्त्या पयाविचित्पमेति ॥

‘कामदेव की अक्षय कथा को बारण करने वाली कामिनी ने सखियों के समक्ष जो कहा हो उसे तोता मैना के मुख से भी सुनते हैं वे वदन्त्या हैं ।’

इसके विपरीत प्रजापति का यह पद्य है—

संकोच इयति कर वरु मीति कोलै
 निर्बाह्य भ्रमर मर सररुहेभ्यः ।
 आरभ्य बणमिव संव्यया जगत्याम्
 हरपथे धन तिमिरस्य योजवापः ।

‘संकोच’ के मय से चंचल अनन्य कमलों से बाहर निकलते हुए अनेक भौरी से मगवाने वरु मर के लिये पृथ्वी पर घने आंधकार की लहर लहर लिये बाग बा दिया ।’

२०—वसन्त विलका का यह प्रथम शब्द ‘आकार’ युक्त हो तो इसकी कान्ति और भोज और अधिक विकसित हो जाता है । जैसे रत्नाकार विद्याविपति का यह पद्य —

कंठ मिषं कुमलय स्तवकामिराम,
 वामानु अरि विकटच्छवि काष्ठ कूडाम् ।
 विमूस्तुलानि दिशता युवहार पोत—
 पूषण्य पूम मलिना मिष पूर्वटिर्बला ।

‘कुमलय’ के गुच्छों की सुभर माला का अनुकरण करने वाले अलङ्कार से युक्त कंठ भी को धारण करते हुए मगवान् शिख तुम्हें सुल प्रदान करें, उनका कंठ—मानों मेंट की गई अक्षियों के पीने पर इनके धुँव से मालन हो गया था ।

२१—वहले ‘आ’ के आ जाने पर भी पद यदि छोटे छोटे हों तो इसकी समक्षीयता घट जाती है । जैसे परमेश्वर कवि का यह पद्य—

अष्टासु हंस इय पात सृष्टासिकासु
 सृगो नवास्त्रिय मधुप्रम मंगरापु ।
 को वन्तिमर्तुरपरो रस निर्मरासु,
 पृथ्वी पति सुकविस्त्रिपु वरुमय ॥

‘जिस प्रकार अष्टादी बाल सृष्टासिकाओं में हंस तथा मधु वृक्षों की महीन मंगरियों में और मन लगाता है इस प्रकार रस से पूर्ण सुकविों में अयम्बि भाव के बिना कौन राधा अनुराग करता है ?

२२—भाषिणी के पादप्यों में यदि रिसर्ग न हो तो यह पुष्पकी बमरी और पाङ्ग रेव की पोंति अच्छा नहीं लगता । जैसे भट्टकृत का यह पद्य—

परमिह रवि तापै किं न शीघ्रांसि गुल्मे,
किमु दधवहनेर्वा सर्वदाहं न दग्धा ।
यवद्वयजनीषैर्दुष्ट पथान् मिहो
रितर कसुम मध्ये माक्षति प्रोम्भितासि ॥

‘माक्षति यदि गुल्म में ही सूर्य की पूष से दुग्गुलस जाती
या वन की आग से विस्तुल्ल जाता जाती तो अच्छा होता । बंठक
और पत्तों को न जमाने वाले इष्टय हीम लोगों ने तुम्हें दूसरे फूलों
में गूँब दिया है।’

यहाँ ‘दहनै’ ‘तापै’ आदि में विसर्ग है । सम्पूर्ण पाद
विसर्ग हीन जैसे काकिवास के इस पद्य में ।

अथ स कश्चित् योपिह भूषता वात शृगम,
रति वक्ष्य पक्ष्मे वाप मासम्भ कण्ठे ।
छद्मर मधु हस्त श्वस्त वृताकुपत्त्र,
शतमल सुपतये प्राञ्जलि पुष्पकेतु ॥

‘इसके बाद कामदेव बंधक पुष्पियों की मीलों के समान
शृंग वाले घटुप को रति के वक्ष्य से अक्ष अपने कंठ पर रखकर
उठा अपने सला वसन्त के हाथ में आग मंजरी का अल वमाकर
हाथ जोड़े हुए इन्द्र के पास उपस्थित हुआ । इसके पहले दूसरे पद
में कहीं भी विसर्ग नहीं है ।

२३—मखिनी के दोनों पाद यदि द्वितीयार्ध में समस्त हों तो
बह जेष्ठ होती है । वे ही यदि प्रथमार्ध में समस्त हों तो बह मही
हो जाती है । गान्दिनक के इस पद्यार्ध के पाद का द्वितीयार्ध
समस्त है ।—

करतरकित बंध कंबुकं कुवतीनाम्
प्रति कश्चित् मिहानी दैप माताम भर्त्ति ।
स्तनत्र परिष्ठाहे मामिमोनां भविष्य,
अल पद लिपि लीला सूत्र पात करोति ॥

‘दीपक का आग प्रकाश कंबुकों के बंधों को डीला करने
वाली पुष्पियों के अमृतस्तनों पर प्रति कश्चित् होकर होने वाली मल
कृत की लिपि लीला का सूत्र पात कर रहा है ।’ राज शेपर के
इस पद्य में पाद के प्रथमार्ध में समास नहीं है ।

इहं नमयसम्यक् मन्वरी पुनः रेणु,
 अक्षरयुगलं देहा नय हेलं सराम् ।
 सरल माता धमूहा हारि ह्युकार कंठा,
 ननु परि मलातो मुग्धं सिन्दु वारम् ॥

यहां बसन्त के महागम में मीरे मन्वरियों की रेणु में प्रवर्तित होकर आकर्षक हुंकार को कंठ में लिये हुए अपने परिमल से मुग्ध बने नयन सिन्दुवार पुष्प पर देखा देकर गिरते हैं ।

१४—माहिनी ज्वर में बेसुरे पन को साधारण भावुक मते ही समझ न सके पर वह सुनकर बड़े ग का अनुभव करता है । जैसे भट्टेश्वर राज कहस पद्य में—

रासि ह्यव बुद्ध्या शीघ्रिता तैल दीपे,
 त्वदुप गत समृद्धे प्रेयसी भोजिपस्य ।
 शिफरति पठ पासे हेमि कर्मावर्तसै,
 शमयति मणिदीप पाणि फूत्कानिसेम ॥

‘तुमसे समृद्धि प्राप्त करने वाले भोजिप की प्रेयसी का तेल के दीपक का अभ्यास था । एकान्त में बसक बस लपाड़े गये तो वह मणि दीपधौ को भी बखों से बुझाने लगी, कर्मावर्तस बस पर फैलने लगी और हाथ की पा मुँह की बापु से बसे शान्त करने लगी ।

१५—इसमें गुठ भावि की व्यवस्था ठीक है पर फिर भी त्वदुप गत समृद्धे’ बाका पाद कानों का दुष्ट प्रतीत होता है ।

१६—नकुट ज्वर में तब बाक्या आती है जब वसमें पहले हो, फिर तीन, फिर बार और अन्त में पाँच अक्षरों पर विच्छेद हो । जैसे नीर देव के इस पद्य में—

तव शत पत्र-पत्र मूढ ताप तल शरयुरा
 नल नल हंस मूपुर नर प्यनिना सुखर ।
 मद्रिप महासुरस्य शिरसि प्रसन्न निदितः,
 सकल महीधरेण गुह्यं कथमय गत ॥

‘माता कमल पत्र नैसा कामल पत्र ज्ञान तथा कल हंसों की स्त्री मूपुर नरि नाले मूपुर से मुखर बना तुम्हारा चरण नाना मद्रिप-

सुर के सिर पर रख गया तो वह समस्त पर्वतों से भी अधिक भाव
कैस हो गया ? उसी का यह पथ इसक विपरीत है । —

सरित्ति शिखेष धूम निषिता जन शैल गुहा,
सकपिश पन्नगेय यमुनोमत नील शिला ।
महिष महा सुरोप हिष भासुर शुल करा,
बहुल निराश भासि सतब्धि गुण मेघ यता ॥

हम महापासुर पर रखे कमलतट रूप शुल को हाथ में लेकर अग्नि
शिला से युक्त धूमा भरी अजन पर्वत को गुप्त के समान,
पीछे साँप से युक्त यमुना में ठीकी नील शिला के तुल्य और बिजली
की रेखा में युक्त बाइसा वाला कृष्ण पक्ष की रात्रि के तुल्य प्रतीत
होती है ।'

२४—पृथ्वी का देव स्वभावतः बड़ा है । इसकी शान्ता असमस्त
पर्वों से होती है । समासा की प्रणियों से तो वह संकुचवत् और
छिपुसा हो जाता है । साहित्य के इस रत्नाक में असमस्त पद हैं ।

कचमह मनुमह परानखडन मंडनम्,
दृगचन मर्मचन मुखरसार्पण वपम्
मलाइन मतर्दनम् दृढ मगजन पीडनम् ।
कराति रति संगरे मकर केवन अमिताम् ॥

'कामियों के लिये कामदेव रीतकाल ॥ कचमह को मनुमह,
पतङ्ग को मंडन और मुखरस के प्रधान का प्रति बना देता है ।
इस समय तिरछा दृष्टि बंधना नहीं रहती । नख पीडन पीडन नहीं
रहता पर्व दृढ़ता में आलिंगन की पीडा का न हाथा ही मुखदायक
होता है । यहां बड़े-बड़े समास नहीं हैं । बड़े समास प्रयोग के
इस पथ में हैं —

कचमह समुल्लसत्कमल कोप पीडाजड
द्विरेक कत कृगितामुकृत सीतकृतार्लकृता ।
अयमिह सुरवात्सय व्यक्तिकरे सुरंगीटशाम्,
प्रमाद मय निमर प्रणययु बितो विधेमा ॥

'सुगनयनियों के सुलत काल के विभवों को जय हो जिनमें
कच महेन्द्र के समय कमल काप की पीडा ॥ पीडित हाकर कृम

करने वाली मूर्ति के स्वर के समान सीत्कार रहते हैं और प्रमोद के आश्रय में जिनमें प्रलय युक्तियों की अधिकता होती है ।

६८—इसमें यदि आकाश स गर्भीर एवं आजगुण प्रधान शब्दों का समास रहता है तो वह और अधिक दीर्घ सा लगता है । जैसे महानारायण का यह पद्य—

महा प्रलय मास्तु क्षुभित पुष्करवर्तक,
प्रबल धन गर्जित प्रतिलालुकारी मुहु ।
रघु मलय मौरव स्थगित रीदसी कम्हर,
क्षुतोऽप्य समराधवे रघुमूढ पूर्ण मुक्त ॥

‘महाप्रलय की बाध से क्षुब्ध हुए पुष्करवर्तक मेघों के गर्जन का अनुकरण करने वाला, आकाश और धृन्वी के अन्तराक्त को भरता हुआ, सुनने में भयंकर यह समर सागर का अभूतपूर्व शब्द आज किपर से सुनाई पड़ा ।’

६९—दीप्य शोभ्य जिनमें विच्छेद रहते हैं ऐसे पदों से हरिणी हृद शोभन हो जाता है । शोभ समासों को मंदर गति के शब्दों से घरी फिर निःस्पन्द सा बन जाता है । दीपक कवि के इस पद्य में तरल पदों का प्रयोग है ।

तनु घनहर कर स्तेनारुतां विच्छादनीम्,
तरति तरसा शीघ्रोत्सकात् स्वसार्यपराज्जन ।
पुरवर बभूलीला पक्षात्कटाक्ष बलाकुले,
मगर निकटे पन्था पाम्य स्फुटं दुरतिक्रम ॥

‘यदि, घने जंगलों का भयानक मार्ग क्षुब्धन के चोटों से भर हुआ करता है पर अपने साजियों की सहायता पथ प्रसन्न बन से पुरुष उसे पार कर जाता है । पर जंगलों के निकट तो यह नागरी वपुषों के लीला कटाक्षों से आकुल रहता है । वहाँ पार पाना कठिन है ।’

महेश्वराय के इस पद्य में यह मंदर है—

गुण परिचयस्तीर्थे वासस्थितो भय पक्षता
यपुरातद्वर्तं कृतं सम्यक् यत्ते तप वि पुन ।
सरति मुपते यत्त्वा पातु वरा षनिमेपया,
वजिरा विजयं तस्मात्तेप करोषि सहासुभि ॥

आत्म तुम्हारा गुणों से परिचय है; तीर्थ पर वास है। दोनों पक्ष तुम्हारे स्थिर हैं। शरीर दृढ़ है और वृत्त भी अच्छा है। फिर यह किटना विषय है कि ना निर्निमेष हाकर देखने के लिये तुम्हारी आर बढ़ता है तब तुम पाणों के साथ स्त्री के आलसे हो।^१

३ —यदि तीन पावों में विभाम वाले पक्ष हों और भीमे में गति तरल हो तो यह ब्रह्म और अधिक मनोहर बन जाता है। जैसे महेन्द्रराज का यह पक्ष —

उपपरिसरं गोदावर्यां परित्यजताम्बगा,
सरथिमपरो यागस्तावद्भवति रवेक्ष्यताम् ।
इह हि बिहितो रक्ष्यशाकः कयापि इताराया,
वरस्य मलिनन्यासोर्ध्वमन बाङ्गुर कङ्कुरः ॥

यदि गोदावरी की पक्षापे वाले इस मार्ग को छोड़ दो। आप दूसरा पक्ष देख लें। यहाँ तो किसी युवती ने इतारा होकर अपने वरस्य कमल के आभाव से रक्त चरोंक पर नय अङ्कुर का दिये हैं।

३१—शिलरिखी जूँ में समारोह होने से ओल जाता है। यदि लुप्त विसर्गान्त पक्षों का प्रयोग हो तो यह अत्यन्त उन्नत हो जाता है। जैसे मुख्य कव्य कवि का यह पक्ष—

यथा रत्नम्याम्बरचक्रं जलद धूमः स्वगमति,
स्तुतिं गानां रूपं वधति च यथा कीदृशं मलयः ।
यथा विद्युग्गवाक्षतलसन परि पिगाश्च कङ्कुरः,
तथा मय्ये क्वमः पथिकः सकलं स्मरद्वयः ॥

‘चलते’ (फिरते) बादलों का धुआँ आकाश रंग को ओमरता है; पटनीजम जो स्फुरिगों का रूप धारण करते हैं और बिजली की व्यासों से दिसाये जो पीली हा आती हैं तो प्रतीत होता है कि पथिक रूपों वह समूह में कामाग्नि लग गई है।^२

यहाँ भाव और भाषा दोनों में समारोह है। भट्ट श्यामल का पक्ष इसके विपरीत है।

१—यह में शैव की सहायता से ज्योतिष द्वारा वर्णों के चरित्र की व्यवस्था की है। अनेक धर्म व्यवर्णक हैं। पुल—रस्ता और लड़कन। उचपपक्ष—हाथ बाध और दीर्घों सिरे। कुल—धर्म और चरित्र।

धृतो गङ्गामोमे मधुप इव बहोष्मविभरे,
 बिखासिभ्या मुक्ता बहुता तरुमा पुष्पयति यः ।
 विखासो मेत्राणां तरुण सहकार प्रियसखः,
 सर्गकूपः सीधो कथमिह शिरः प्राप्नोतिमयोः ॥

‘जो बिखासिनी के गङ्गस्थल पर रहता है, मीरे के समान
 जो कमल में फैलता है बिखासिनी यदि जोड़े को मौसिमी को जो
 पुष्पत कर देता है, नेत्रों के विखास का हेतु एवं तरुण सहकार का
 प्रिय सखा उसके आसब का गङ्गप मधु के सिर तक किस प्रकार
 पहुँचेगा ?’

३१—शिलरिखी के पद यदि बिमल होते हैं तो उसका
 स्वरूप हीन बन जाता है । जिस प्रकार मुलाकता में सुत्र न रहने से
 बिलरे हुए मोतियों का रूप बिगड़ जाता है । जेसे भट्टभट्टभूति का
 यह पद्य—

आसारं मेसारं परे मुपित रत्न त्रिमुबभम्,
 निरु लोहं क्लृप्तं मरण शरणां बाम्भय जनम् ।
 अदर्पं कर्प जन मनन निर्माक मपक्षम्,
 जगत् जोगुरियं कथमसि विधातु स्यवसित ॥

‘ससार को असार, त्रिमुबभ को रत्नहीन, लोक को
 आलोक रहित, बाम्भयों को मरणाश्रित, काम का दण्ड शुभ, जन
 मननों की निष्पक्ष तथा जगत् को जीर्ण अरण्य बनाने पर तू क्यों
 तुला है ?’

यहाँ पद प्रायः विच्छिन्न हैं एतद्वय इसमें ध्यान का आभास है ।

३२—पदार्थ में अमरकण तथा रस दाजो हैं पर छंद का स्वरूप
 अपहृत-सा है ।

३३—मन्वाध्वेता कृद् के प्रथम चार अक्षर मंद गति क ही
 और मध्य के छ अक्षर दिग्भ्रम के अध्यात् न अधिक शीघ्रगामी और
 न अधिक मंद तो यह शोभायमान दाता है । वीर काजिदास का यह
 पद्य—

ब्रह्मावर्त जमपद मपरजायया गाडमान,
 क्षेत्र चतु प्रथम पिशुन कीर्य नद भजेया ।

राजम्यानां शितशरशतैर्यत्र गावधीबधन्वा
धारासारैभ्यभिध कमलाम्बुध्रपिबन्मुखानि ॥

‘जब तुम अपनी छाया स आकाशवर्त में प्रवेश करो तो चन्द्रियों के निघन के सुषक कोरक प्रवेश में जाना । वहाँ पर अर्जुन ने अपने सैकड़ों तीक्ष्ण बाणों से राजम्यों के मुखों को इसी प्रकार मंजित किया था जैसे तुम अपनी धाराओं से कमलों को सी बसे हो ।’

यहाँ प्रथम चार अक्षर ‘महावत’ संज्ञागति के हैं । बाद के आ ‘जनपदमघ’ में गति कुछ स्वरित है । आदि और मध्य में समान गति वाले अक्षर काविकास के ही इस पद्य में हैं —

करिष्यकान्ता विरह गुहणा स्वाधिकार प्रमथ,
शायेनास्तं गमित महिमा वर्षभोग्येषु मर्तुः ॥
यक्षरश्मि के जनक तनया स्नान पुण्यबोधकेषु
स्निग्धच्छाया तस्यु वसति रामगिर्याभ्रमेषु ॥

‘अपने कर्तव्य के प्रमादी किसी पक्ष ने कान्ताविरह से दारुण, और वर्ष भर के भोग से पूरा होने वाले शाप के कारण महिमा छोड़ चित्रकूट के आश्रमों में निवास बनाया । ये आश्रम जिनके वृक्षों की छाया सपन थी—और जब जानकी के स्नान से पवित्र बन गये थे ।’

१५—शार्ङ्गल विक्रीडित द्यम् के पादाम्बु अक्षर सविसर्ग पद्य ‘आ’ आदि अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले हों तो उसका प्रयाग यह जाता है, जैसे महरयामल का यह पद्य—

आत्मानं जय कुवरस्य दृपदां सेतुर्बिपद्धारिणे,
पूर्वाग्निं करवाल अत्रमहसो बीजोपधानं धियः ।
संप्रामासुत सागर प्रमथन क्रीडाबिधौ मन्दरो,
राजन् राजति चार वैरि वनिता पैषक्यदस्ते मुजः ॥

‘हे राजन् आपकी मुजा जय कुवर का आस्तान है; बिपदियों के समुद्र का परबरो का सेतु है, तत्रवार के सूर्य का पूर्वाग्नि है, भी का बीजा उपधान है । संप्राम रूपी असुत सागर के मध काहने में मन्त्राचल एवं वैरिशमिडाओं का पैषक्य प्रदान करने वाला है ।’

यहाँ पहला अक्षर ‘आत्मान’ आक्षरादि है । पादाम्बु में छव विसर्ग वाले पद्य हैं । लाट टिहार कवि का यह पद्य इसक विपरीत है ।

चित्रं ताव दिवं सुरेभ्य मयनाम्बोदाकिनी पापसा,
 कनाम्बुतम तेजसा नृपतिना कामाभरुषं महिषतम ।
 नातद्विषमतरं विशाकरं कळा लापयय बुधोदये,
 भूमेर्देहमवहा विराज नगरी कीर्तिपत्रै प्लाम्यते ॥

यह अद्भुत है कि किसी उत्तम तेज वाले राजा ने स्वर्ग से
 लाकर गंगाजल द्वारा पूज्यो मंत्र को अर्पित कर दिया । पर इससे
 अधिक कोई आश्चर्य नहीं कि धाप चन्द्रकाशों के आकाश दुग्ध के
 समुद्र बनकर स्वर्ग को पूज्यो से कीर्ति का बहाव से लाकर बहा
 देते हो ।

३६—विसर्गों को यदि 'ओ' होता हो तो इस जन्म के पर ईश्वर
 पीछे होकर पड़ने में परिमल पैदा कर देते हैं । जैसे मुख्याक्षर का यह
 पद—

कीला चामर बंदरो रतिपतेर्वाङ्मान्मुदमेयस्यो
 रागोदयक शिखरिणो मुख पिबूषमृतास्तमोविभवा ।
 सौगन्ध्योद्भूत वाक्पाकुल बलम्पता विमलकाकुलो,
 धम्मिको हरिणी दशा विजयते सातो रतिव्यस्यदे ॥

'विपरीत रति के समय युगमयमियों के केशपरा की लय हो ।
 यह उस समय कामदेव का कीलाचमर, मयूरों के प्रेम में उत्पन्न बनते
 बाता बात में ही का समूह, मुखचन्द्र से निकला अर्धचन्द्र एवं सुगन्धि
 से मस्त होकर दीकने वाले भ्रमरों के समूह से व्याकुल बन जाता है ।
 यहाँ 'बंदरो' भेषज-आदि में 'ओ' है ।

३७—इसके पूर्वार्ध में यदि यह वृत्तक हो और द्वितीयाध
 समास बन्ना हो तो यह अच्छा लगता है अथवा निकृष्ट । जैसे
 मट्टमयमूर्ति का यह पदा—

अथानाद् यदि बाधितस्य रमसा हरमत्परोक्षदशा,
 सोमवं प्रतिमुकवतां शठ मरुपुत्रस्य हस्तेऽधुना ।
 मोचेन्नरमस्य मुख मार्गस्य गणप्येदृशपद्मपद्माक्षिप्त,
 अत्रवज्जल दिग्गज मन्थकपुरं पुनर्नृणां यात्यसि ॥

हे शठ, यदि अज्ञान से अथवा राजा होने के गर्व से हमारे
 पाप में भीति का तुमने हथकिया है तो अब छोड़ें मुक्त कर दो ।
 यह शठ आन बापुत्र के हाथ में है । नहीं तो अज्ञान के हाथ जादे

गये बाधों से; छलछाये रक्त के ज्यों में। हके हुए तुम पुत्रों के
साव नरक को जाओगे। रिस्तु कवि का यह पद्य इसके सिपरीत है।

स्नातुं पाण्डसि किं मुपैव अवल जीरोद केनच्छटा
झाया हारिणि वारिणि पुसरितो विहोर विस्तारिणी ।
भास्ते ते कति काज कर्मण मपी प्रचाजनैककभा,
कीर्तिं सनिहितैव सप्तमुवन स्वच्छम् मंदाकिनी ॥

‘और सागर की अवल केन मठाधों के समान श्वेत, और विगत
व्याप। रंगान्न में तुम व्यर्थ ही क्यों स्नान करना चाहते हो।
कलिकाल के पापों की त्याही घोने में भयेही हो समर्थ स्वच्छ मंदाकिनी
तुम्हारी-कीर्ति की है तो सही।

३८—इसके आदि और अन्त के भाग सर्वांतराशी हैं तो
उनके अर्थ की कान्ति से हृद भी गीरण पर कान्ति का काम
करता है। जैसे कान्तिवास का यह पद्य —

गाह्मतां मद्रिपा निपाम सक्तिं भू मे मुहुस्तादितं
झाया वद कर्षक सुगकुलं रामम् मध्य स्पतु ।
विश्वध्वे क्रियतां वराहपति मिर्मुखादिति पस्वसे,
विभान्ति समतामिर्द्वय शिबिकन्या वद मध्यवचनु ॥

जैसे सींगों से बार-बार टक्कर देते हुए बछारियों में छोड़
बगाने, मृग जाया में मुँह बाधे सुगाही करें। सुखर विसर्ग के
पोछों में मोखा विग हैं और यह अनुप भी हीही प्रयत्न में
विभाम ले।

३९—आदि और अन्त में ‘आ’ न हो और अन्त में विसर्ग
भी न हो तो इस छंद का रक्तर तुल्य हो जाता है। जैसे
भी यशोदा बर्मा का यह पद्य —

धन्वभेत्र, समान कान्ति सक्तिसे मग्न लक्ष्मीधर
मेधे रज्ज्विध प्रिये-तब मुक्तश्यामा, नुकरती राशी ।।
य पि स्वतृगममानसारि गतयस्ते राज हंसा गदा,
न्यस्ता हृद्य विनोद मात्रमपि मे दैवेम न च्छ्रयते ॥

‘प्रिये’ तुम्हारे नेत्रों के समान कान्ति वाला इन्दीयर पानी
में डूब गया। तुम्हारे मुँह की जाया अब अनुकरण करने वाला चंद्रमा

बादलों में डूब गया। तुम्हारे गमन का अनुसरण करने वाली गति के राज हीन भी बल गये। देख यह भी सहन नहीं करता कि तुम्हारे साक्षर्य मात्र सभा में विनोद करछू'।

४०—इस पद्य में रस मुकुमार है। उसकी रक्षा के लिये बहुत प्रकृति का बंध प्रयुक्त हुआ है। कवि की परिपक्व वाणी हास भव क्षुब्ध बन गया है।

४१—यदि आदि में गुरु युक्त अक्षर हों तथा अन्त में विसर्गों वाले पद हों और मध्य-मध्य में विराम रहे तो अन्धरा बंध बहुत अच्छा लगता है। राजरोवर का यह पद्य उदाहरण है।

ठाकूनी नख मुग्धकमुक तरुजता प्रसरे खानुगामि,
पाय पाय कलायी कृत कदलिदल नारि केसी पछाम'।
सैम्यन्ता ध्यामयात्रा भ्रम बल जयिम' सैम्य सीमन्त भीमि,
वास्तुद्वयूह केसी कज्जित कुह कुहा राव कम्ता बनान्ता ॥

'सैनिकों के साथ चलने वाली बलिताये पान की बेलों में बँधे हुए सुपारी के तब कुलों में पत्थरों पर केलों के पत्तों के पात्रों में भारपल का जल पो पीकर यात्रा की यजन के पत्तों को हूर करने वाले ध्वं वाष्पूह पक्षियों के कुह कुहा शब्द से आक्रमण बनाओं का संघन करें। यह कवि का यह पद्य इसके विपरीत है।

सत्यं पाताल कुङ्कुमरि धिर बिल सहि करि प्रीखिताम,
मोगर्मश्वमभ्र बिह लहरि हरिबान मध्ये किंचित्।
कशराग्रे व्याप्त विश्वं परि श्रुति सरिभाष पायस्त्वदीयं
किस्वेता कु म पात्रे करकुहरदरी पूरमापाम तो भूत् ॥

'यह सत्य है कि, समुद्र, तुम्हारा जब पाताल की कालों को भर होता है। दिग्गज इसमें धिर काल तक विज्ञास करते हैं। यह बादलों को तप्त तथा अक्षमी को अपने चर में लिये रहता है। यह विष्णु का स्थान है। इसकी लहरें आकाश को बाढती हैं। मलय के समथ विश्वमर में यह दीप्त जाता है। पर आचमन करते समय अगस्त्य की वा अनुसूच में होयह समा गया।

४२—आदि और अन्त में आ अक्षर म रखने से सुग्धरा बंध का दोष खुट्ट हा जाता है कि मी आदि अन्त में विसर्गांश पद है वा कार्य बल जाता है। इस प्रबंध का यह पद्य —

शौर्यभीकेशपाश करि दक्षम मिहमौलिक व्यक्त पुष्प-
 बोधी रक्षा मुचंगल कुल शिखरि कुबल कीर्ति निर्मोक पट्ट ।
 शत्रु प्रात मताप मलय जलनर स्थर पारा कराल,
 प्रीत्यै कक्षी कटाक्ष कुलजय विजयी यस्य पाथी कृपाण ॥

‘जिसके हाथ में कुबल्यों कीर कक्षी के कटाक्षों के समान सुन्दर कृपाण हाथियों का मस्तक पड़ कर मोतियों के पुष्पों से युक्त हाथर शौर्य भी का केशपाश बमली है, पुष्पी की रक्षा करने वालों कीर है, पथों पर लेखती हुई कीर्ति की पताका है तथा शत्रुओं के मताप को कुम्भने के शिव अनेक बाइलों का समूह है’ ।

४३—इस प्रकार सूक्ष्मता ज्यों का कर्म दिखाया गया है । समझार लोग इसी दिशा से सब का विचार करें ।

४४-४५—शक्तिनी के मध्य में कुछ अक्षर बढ़ा देने से वह महाशक्ति हो जाता है । इसी प्रकार अन्ध में एक अक्षर बढ़ा देने से ब्रह्मत्व जन्म अपेक्षवत्ता बन जाता है । यह सब इसलिये यही दिखाया है कि यह तो स्वतः सिद्ध है । ज्ञानों को न जानने वाला इसे समझ नहीं पाता । जानकार के लिये इसका फिर उपयोग क्या ?

४६—जन्म जन्मों के इन अत्यंत सूक्ष्म विचारों में पाणी के नाना गुणों से परिचित एवं बोधों की विविध सूक्ष्मताओं को भी समझने वाले योगियों के समान सूक्ष्म प्रतिभा के लोगों के लिये ऐसी बातें कही गई हैं जो उनकी पहुँच के भीतर हैं ।

सीसरा विन्यास

१—मातृश्री के समान उचित ध्यान पर रखे गये मिर्चोप एवं गुण गुच्छ दम्बों से प्रबंध की शाला बढ़ जाती है।

२—वाणी का प्रसार चार प्रकार का होता है—शास्त्र, काव्य शास्त्रकाव्य तथा काव्य शास्त्र।

३—काव्यवेत्ता लोगों ने शास्त्र उस बताया है जिसमें काव्य के सब लक्षण विद्यमान हों। काव्य में विशिष्ट शब्द और अर्थ का साहित्य रहता है तथा अलंकार उसमें विद्यमान होते हैं।

४—शास्त्र काव्य में प्रायः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार वग का वर्णन और सबके लिये उपदेश रहता है। भक्ति तथा भीमक कवि का शास्त्रार्जुनीय काव्य काव्यशास्त्र है।

५—कुछ लोग केवल शास्त्र में भी काव्य तत्त्व का प्रयोग करते हैं, जिस प्रकार कुछ औपनिषद इस से उद्धृत गे हैं। जाने पर ऊपर से वाक्शा गुण या जोनी वृद्धि जाती है। जैसे वाग्मट न वैद्यक शास्त्र के इस पद में किया है।

मधु मुलमिष सारसं प्रियाप-
कस रचना परिवादिनी प्रियेव ।
कुसुम अय मनोहरा च शय्या,
किञ्चिपिनी कविकव पुष्पिवासा ॥

‘कमल पुष्प से कुछ मधु प्रिया के मुल जैसा एवं सुन्दर शब्द करने वाली वाग्मि प्रिया के समान होती है। पुष्प अय स मनोहर बनी शय्या भये पते और पुष्पों से लक्ष्मण के समान हो जाती हैं।’

६—शास्त्र शैली की रचना का अर्थ अत्यन्तपूर्वक अनुष्ठान दम्ब के प्रयोग द्वारा सरल बनाना चाहिए जिससे वह सबके उद्धार के लिये स्पष्ट रूप से सत्तु का कार्य करे।

७—काव्य में रस और वर्णन के अनुसार सब दम्बों का प्रयोग करना चाहिए और प्रतिपाद्य के विभाजन का भी कवि का ज्ञान होना चाहिये।

८—शास्त्रकाव्य में अधिक क्षीमे घृष्टों की आवश्यकता नहीं है। काव्यशास्त्र में भी काव्यज्ञ को रस के अधीन छन्दों का प्रयोग करना चाहिये।

९—पुराण के समान लिखे गये उपदेश प्रधान सरल शैली के काव्यों में भी सब में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग करना चाहिये।

१०—रस के समान सिद्धहस्त कवि क प्रयोग से अनेकों अत्यन्त अयोग्य छन्द भी योग्य बन जाते हैं।

११—महाभारत में गायों को छेने के लिये विद्वत् सम्मान हुआ था उसमें समय विरोध के अनुसार जो चड़े विराट पुत्र के बेटे थे ही फिर अश्वत्थाम के बन गये थे। (इसी प्रकार छन्द भी योग्य कवि के प्रयोग से अयोग्य भी योग्य हो जाते हैं।)

१२—फिर भी सृजन की भांति सुन्दर छन्द एवं पद्यों से कुछ प्रबन्ध काव्य सौन्दर्य द्वारा के अनुरूप छन्दों से ही रोमा पते हैं।

१३—अपने स्वेच्छाचार स रत्नों की भांति यदि घृष्टों का अनुचित प्रयोग हो तो वे गले में पहनी मेखला के समान मूर्खता की ही सूचना करेंगे।

१४—रमणीय पेत्रों वालों किरी मन्मथोदन संवत्स रमणी की लक्ष्मी विरकाश से स्मर व्यापारों का जाड़े हुए किसी ऐसे वृद्ध के प्रति नहीं होती है जिसके बाह्य बुद्धि से पक जाते हैं।

१५—इसलिये छन्दों का पचास्थान विनियोग हो इस प्रयोजन के लिये उदाहरणों से। इशानिर्देश करते हुये उनकी संगति इस अभ्यास में दिखाई जाती है।

१६—संगोपन के प्रारम्भ में; जहाँ विरल कथा का संक्षेप में निर्देश किया जाता है और जहाँ शास्त्र उपदेशों का प्रचाम्भ होता है वहाँ कवि लोग अनुष्टुप छन्द की प्रशंसा करते हैं। मरु मेघ कवि ने निम्न श्लोक में प्रारम्भ में यही किया है —

आसीदस्यो हयभीष सुहृद् बेरमसु पश्य ता ।

प्रथमस्तु बलं बहो सितम्भत्रस्मिता भिय ॥

‘हयभीष नाम का दैत्य ना जिसके मित्रों के घरों में श्वेत वस्त्र के रूप में सुसज्जित लक्ष्मी उसकी भुजाओं के बल को फैलाती

धी १० क्या के संक्षेपतः निर्देश के अनुसार पर जैसे—अभिनेता का यह पद्य—

तस्यां निज मुखाद्योग विधिताराविमद्वक्तः ।

आलस्यत इव श्रीमान् राजा शूद्रक इत्यमूर्त् ॥

‘इसमें (नगरी में) अपनी मुखाद्यों के उपयोग से शत्रु मंदक को जीतने वाला इन्द्र के समान श्रीमान् शूद्रक नाम का राजा हुआ ।’

शास्त्र उपदेश के समय जैसे ।

पृथुरास्त्र क्या क्या रोमभ्येन द्रुयैव किम् ।

अम्येष्टम्यं प्रथमम तत्त्वमैव स्योति एतदम् ।

‘बड़े शास्त्र और कथाओं के समूह की व्यर्थ की खुशाही करने से क्या लाभ ? शानियों को यत्न पूर्वक अपनी आंतरिक स्योति की खोज करनी चाहिये ।’

१७—मृगार रस के आलस्यन विभाष के रूप में यह किसी उदार नायिका का वर्णन हो या बसन्तार के साथ उसके अंग, स्वरूप वस्त्रादि श्रुतियों का वर्णन हो तो उपमाति छन्द का प्रयोग होना चाहिये । रूप वर्णन जैसे कारिदास का—

मभ्येन सा चेदि विभ्रान मभ्या

यस्त्रियं चारु वभार बासा ।

आरोहणाय नभयौषमेन,

कामस्य सौपान निव प्रयुक्तम् ॥

‘इस बासा पायती के मध्य भाग पर सुन्दर त्रिशूली पड़ गई । भय घौमन ने कामदेव के चक्रे के लिये माना श्रीद्विषों लगा दी ।

वसी का वसन्त वर्णन जैसे—

बाभ्रेभ्यु वक्षस्य पिपास भावादू

बभ्रु पञ्जारा ग्यति शोहितानि ।

सद्यो नसन्तेन समागतामाम्

मलकानां च वनस्थसो माम् ॥

‘हाक के पूत पूरे पिबसित नहीं हुए थे वरुण बाल वसन्त की मंति टढ़े थे अत्यधिक काल पक्ष के ऐसे प्रतीत हुए मामों वसन्त के भाष वपीन समागम करने वाली वनस्थलियों का इसरु नरकत होने हैं ।’

८—शास्त्रकाव्य में अधिक संवे वृत्तों की आवश्यकता नहीं है। काव्यशास्त्र में भी काव्यज्ञ को रस के अधोम ज्ञानों का प्रयोग करना चाहिये।

९—पुराण के समान लिखे गये उपदेश प्रधान सरल शैली के काव्यों में भी सब में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग करना चाहिये।

१०—प्रभु के समान सिद्धहस्त कवि के प्रयोग से अनेकों अत्यन्त असंगत छन्द भी योग्य बन जाते हैं।

११—महाभारत में गावों का लेने के लिये विष्णु संग्राम हुआ था उसमें समय विशेष के अनुसार जो पड़े विराट् पुत्र के से से ही फिर अर्जुन के बन गये थे। (इसी प्रकार जम्बू भी योम्य कवि के प्रयोग से असंगत भी बान्ध हो जाते हैं)

१२—फिर भी सबनगी की भाँति सुन्दर शब्द एवं पदों से युक्त प्रत्येक काव्य सौंदर्य द्वारा के अनुरूप जम्बू से ही रोमा पाते हैं।

१३—अपने श्लेषाचार से शब्दों की भाँति यदि वृत्तों का अनुचित प्रयोग हो तो वे गद्य में पढ़नी मेखला के समान मूर्खता की ही सूचना करेंगे।

१४—रमणीय नेत्रों वाला किसी नवयौवन संवत् रमणी की सख बिरकाज से श्वर व्यापाओं का ब्रह्मे हुए किसी देते वृद्ध के प्रति नहीं होता है जिसके बाल बुढ़ापे से पड़ जाते हैं।

१५—इसलिये जम्बू का पञ्चाख्यान विनियोग हो इस प्रयोजन के लिये व्याहरणों से। दशानिर्वेश करत द्रुमे उनकी संगति इस अध्याय में दिखाई जाती है।

१६—सगवध के मारम्भ में, जहाँ विरह कथा का संक्षेप में निर्वेश किया जाता है और जहाँ शान्त उपदेशों का वृत्तान्त होता है वहाँ कवि लोग अनुष्टुप छन्द की वशीला करते हैं। मद्र मेरठ कवि ने निम्न श्लोक में मारम्भ में यही किया है —

आसीदैत्यो हयमीन सुहृद् वरयसु वस्य ता ।

प्रथयन्ति वर्यं बहो सितध्वजस्मिता भिष ।।

‘हयमीन नाम का दैत्य था जिसके मित्रों के चरणों में श्वेत वस्त्र के रूप में सुसज्जित सफ़ेदी लसकी मुवालों के बल को पैदा की

थी ।' कथा के संक्षेपतः निर्देश के अवसर पर जैसे—अभिर्नन्द का यह पद्य—

तस्मां मित्र मुखाद्योग विविताशतिमद्वज्ज ।

आलम्बक इव भीमाम् रामा शूद्रक इत्यभूत् ॥

‘तस्यै (मगरी में) अपनी मुखाद्यों के वद्योग से शत्रु मंडल को जीत में लाता इन्द्र के समान भीमाम् शूद्रक नाम का राजा हुआ ।’
रामायण उपदेश के समय जैसे ।

पुपुरास्त्र कथा कन्या रोमन्थेन दृष्टैव किम् ।

अम्बेष्टुर्ध्वं प्रयत्नेन तत्त्वज्ञै ओति रान्तरम्

‘बड़े शास्त्र और कथाओं के समूह की व्यर्थ की जुगासी करने से क्या लाभ ? ज्ञानियों को यत्न पूर्वक अपनी आंतरिक ओति की खोज करनी चाहिये ।’

१७—शृंगार रस के आलम्बन विभाव के रूप में यह किसी उद्गार नायिका का वर्णन हो या अमरकार के साथ उसके अंग, स्वरूप वगैरह शत्रुओं का वर्णन हो तो उपजाति छन्द का प्रयोग होना चाहिये । अब वर्णन जैसे कविदास का—

मध्येन सा वेदि विज्ञान मय्या

यसिन्नयं चारु वभार बाजा ।

आरोह्यस्थ नयनोन्मेष,

कमल सोपान मिय प्रयुक्तम् ॥

‘इस बाजा पार्यती के मध्य भाग पर सुन्दर त्रिबली पद्म गह । नयनोन्मेष ने कामदेव के बढ़ने के लिये मानों ओढ़ियाँ लगा दी ।

इसी का वसन्त वर्णन जैसे—

मासेषु वक्ष्यय विज्ञान मावाद्

बभू पञ्चाशा म्यति लोहितानि ।

सद्यो नसम्येन समागन्तानाम्

नलपुतानीय वनम्यसो माम् ॥

‘हाक क फूल पूरे विवसित नहीं हुए य फल बाक बभूमा की भाँति टढ़े थे अत्यधिक साज यद्ये क पंख प्रतीत हुए मानों वसन्त क माघ नवीन समागम करने वाली वनस्पतियों का इसक नलपुत होने हैं ।’

१८—चन्द्रोदय आदि उद्घोषन विमार्यों के वर्णन में रबोदयता ब्रह्म तथा पांगुदय प्रधान नीति के वर्णन में वंशस्थ ब्रह्म शोभा पाता है। चन्द्रोदय के वर्णन में जैसे कालिदास का यह पद्य—

‘अगुलीभिरिष केशसंवयं
॥ निघम्य तिमिरं मरीचिमि ।
कुण्डलीकृत सरोज लोचनम्
सुवतीव रजनी मुलं शशी ॥

‘उ रात्रियों के समान किरणों से केश जैसे अग्न्यक्षर को सन्हातक्षर चंद्रमा सरोजरूपी नेत्रों को मूँदने वाला रजनी का मुख घूमता सा है।’

नीति जैसे मारविके पद्य में—

श्रियःकुण्डलामभिपश्य पालिनीम् ।
प्रभासु दृष्टं यमयुक्तं वेदितुम् ।
स वार्षिकिणी विधित समाययौ,
मुचिष्ठिरं दृष्टयने बनेचर ।

‘कुल प्रवेशों की भी के स्वामी वृषोत्तन की प्रभापावन की वृत्ति को जानने के लिय जिस नियुक्त किया था यह ब्रह्मचारी यम भारी बनचर सब कुछ जान कर दृष्टयने ॥ मुचिष्ठिर के पास आया।’

१९—बीर और रौद्ररस के संकर में उत्तम विलास छंद का प्रयोग होना चाहिये। सर्ग के अन्त में द्रुत ताल की मूर्ति मालिनी ब्रह्म ठीक रहता है। जैसे वीर रीति में रत्नाकर का यह पद्य—

जुंभा विभासित मुलं मल दूर्पणान्त
राविष्कृत प्रतिमुलं गुरुरोपगर्मम् ।
रूपं पुनातु कमितारिचसू विमर्ष
मुदृष्ट दैत्यवध निर्यदस्य हरेर्य ॥

‘मगवान नृसिंह का यह रूप आपकी रक्षा करे जिसमें जैमाई देने में मुँह चमकने लगता था और मल करी दूर्पण में वही मुख प्रतिबिम्बित होकर दूसरा मुख बन जाता था, जिसमें भयानक रोप छिपा हुआ था, शत्रुओं की मना का जिसने विनाश दिया था और दंडव दैत्य का जिससे यम हुआ था।’

सर्ग के अन्त में मासिनी कातिवास ने प्रयुक्त की है—

अवचित बलि पुष्पा वेदि संमार्गदशा,
नियम विधि जज्ञामां धर्हिषा चापनेत्राः ।
गिरिसा मुपबचार प्रत्यहं सा सुकेशी,
नियमित परिक्षेष्टा तच्छिररत्नमूपादे ॥

‘सुकेशी पार्यवती शिवजी की सेवा करने लगी। वे बलि के लिए पुष्प चुनकर लाती थीं। वेदी को सुधारने में नियुक्ता प्रदर्शित करती थीं; नियमित जब और कुशाघे लाती थीं। यह सब करने में शिवजी के शिर के चमूमा की फिरछों में उनकी शकल बम हो जाती थी।’

२०—बुद्धिपूर्वक दो तत्त्वों के परस्पर भेद दिक्कान में शिखरिणी और वदारता के दृष्टि औचित्य विचार में हरिणी छ द ठीक रहते हैं। बुद्धि संगत भेद के प्रदर्शन में शिखरिणी जैसे मर्दूदर की:—

मयन्तो वेदात्म्य प्रविहितविद्यामत्र गुरमो,
विचित्राज्ञापाना दयसावि कभीन मनुष्याः ।
तथाप्येषं ज्ञमो यदि परविठान् पुढ्यमपरं
मयाग्निन् संसारे कुबलपटरो रम्यपरम् ॥

‘आप वेदात्म्य का ध्यान करने वालों के गुरु हैं। हम भी विचित्र आज्ञाप करके आपके कर्मों के सेवक हैं। फिर भी हम यह करते हैं कि संसार में परोपकार से बढ़कर कोई दूसरा पुण्य नहीं है और कमलनयनियों से बढ़कर दूसरा बुद्ध सुन्दर नहीं है।

वदारता के भाव में हरिणी का प्रयाग भी इन्हीं का जैसे—

विपुल हृदये रम्यै कैरिबद् जगज्जनितं पुर,
विपुल मपरैर्लक्ष्यामी विजित्य लक्षं यया ।
इदं मुबनाम्यम् यरारत्नपुत्र्य मुञ्जत,
कतिपय पुरम्याम्ये पुंसां क यय मदम्यः ॥

‘बुद्ध वदारताओं ने पहले संसार बनाया। बुद्ध ने इसको धारण किया और बुद्ध ने इस जीतकर विमल की भौति दूसरी को दे सका। यहाँ बुद्ध और लोग बीहड़ों भुवनों का योग भी करते हैं। फिर बुद्ध थोड़े से लोगों के त्याग पर लोगों का यह मद गहर कैसे?’

२१—आपेन काय या विकार के भावों को दृष्टी छंद संभावता है। यहाँ प्रयास तथा अन्य प्रकार की विपत्ति के पथन में संशयिता अन्ध अज्ञा लागता है। जैसे आपेन में यथापत्ता का पथ—

स यस्य दशकंवरं कृत्तव्योपिकृत्तान्तरे,
गतं स्फुटमयम्यतामभि पयोधि साम्ब्यो विधिः ।
तदात्मन इवांगव प्रहितं यत् सौमित्रिष्ठा,
कसकस दशाननो ननु निवेद्यतां राक्षस ॥

दशकंवर को बगल में पकड़कर बिछे समुद्र पर सँभ्या करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित हुई उसी का पुत्र अंगद बभ्रुव का भैया हुआ यहाँ आया है। वह दशानन कहाँ है ? उस राक्षस को वह समाचार दे दो ।

वर्षा प्रवास में मंडापांता का प्रयोग जैसे अश्विनास का यह पद्य—
तस्मिन्नद्वौ कति चिद्वक्त्रा विप्रयुक्तं सकामी,
भीत्वा मासात् कनकं बलयं भ्रंशं रिक्तं प्रकोष्ठं ।
आपाहृत्य प्रथमं दिवसे मेघं मारिचिष्टं सानु,
वप्रकीर्णं परिखतं गगनं मेघयूथं दधरी ॥

‘प्रिया से विपुल बने कामी वह का पहुँचा सुवर्ण बलय के गिर जाने से रौंटा हो गया था। उसने यहाँ पर्वत पर कुछ मास बिताये। जब आपाह का पड़छा दिस आया तो उसने पर्वत शिखरों का आश्लेष करते हुये, दग्ध प्रकार की कीड़ा में छगे हाथी की मांति दिखाई पड़ने वाले वादल को देखा ।’

२२—राक्षाओं के शौर्य आदि की प्रशंसा में शार्ङ्गक विकीर्ण और वेगसहित पवन आदि के वर्णन में स्रग्धरा छन्द अर्पित छगता है। शौर्य स्तुति में श्री ऋक का यह पद्य—

नेतु नीमिरिमानं यान्ति हृदिमिस्तार्याः क्षिपन्तो ह्यायू,
तज्जालुवसेन देव पयसासैर्ग्यं समुत्तार्यताम् ।
नाकेर्संगमय इतारि वनिता नेत्रं प्रधात्री कृठपु,
वाष्पात्मन् प्लव पुरितो मघ तटी द्रुगूत्तयतीरावती ॥

‘हे देव, हाथी नाथों से मही ले जाये जा सकते। घोड़े भी मशक की नाथों से कितने चतर सँभे। इसलिये सना का शीघ्र तब तक पार कर दीजिए जब तक पानी मुठनों तक है। नहीं तो बिनारा के मघ से भागते हुये शत्रुओं की वनिताओं के नेत्र जल की माली के जल से इरावती नदी शीघ्र ही इतमी मर जायगी कि इसके दोनों तट जल में डूबने लगेंगे।

आवेग के साथ पथम के वर्णन में प्रथकार की पवन पंचा-
ङ्गिका का यह पद्य—

मैलधर्माभिघात स्पुट इलित अलक्ष्युक्ति निरुक्त मुक्ता,
मुक्त व्याघादहाता स्मर नृप सकल द्वीप संचार चारा ।
सर्पकपूर पुर प्रवणक रचिता दिग्बभू कर्णपूर,
भावम्या भ्यात विरवा रचविधुतवभू बाम्बका गंधवाहा ॥

'रति किम बहुभ्यो के उपकार करने वाले पवन बह रहे हैं ।
पक्षवे हुए शंखों के आघात से सीपियाँ झुग जाती हैं और मोठी
बाहर गिर पड़ते हैं । इनका व्यक्त आह्लास मुक्त है और कामदेव
के सब द्वीपों में इनका संचार है । ये सरकते हुए कपूर के डेर को
लिये हैं और दिग्बभूओं के कर्ण पूर जैसे बन जाते हैं । समस्तविरव
को इन्होंने मर दिया है ।'

२१—मुक्त स्वभाव के सुखों में दोषक, तोटक और नफूट
बंद का प्रयोग अच्छा लगता है । उनके विनियोग में विषय
अथवा अर्थ किसी प्रकार के नियम का प्रतिबन्ध नहीं है ।

२४—और दूसरे बंद जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है वे
भी समस्कार मात्र क साधन हैं । किसी विशेष विषय का प्रति बन्ध
उनका साथ नहीं है । इसी लिये वे यहाँ नहीं दिखाये गये हैं ।

२५—बाणी जिनके यहाँ में है और सब छन्दों पर जिनका
समान अधिकार है उनका लिये यहाँ छन्दों का विशेष प्रकार का
विनियोग और विभाग दिखाया गया है ।

२६—जिन कवियों ने एक या दो तीन छन्दों में ही परिमल
किया है उनके लिये ये विनियोग नहीं हैं । वे तो हरसक में दखिों की
भांति के लोग हैं ।

२७—कवि को अभ्यास से जिस छन्द में विशेष प्रगल्भता
प्राप्त हो जाय उसे चाहिये कि वह अपने प्रबन्ध में वही छन्द का
विशेष प्रयोग करे ।

२८—पहले कवियों का या किसी एक छन्द का प्रति विशेष
आदर दिखाई पड़ता है । उनका उस छन्द विशेष में तो बड़ा समस्कार
रहता है शेष में केवल प्रारंभ किये की बाणी अनुप्राणित छन्द में अधिक

२९—अभिर्नन्द कवि की बाणी अनुप्राणित छन्द में अधिक
अभ्यस्त है । वही छन्द विद्यापर के मुख में तो जादू की गोली का
सा प्रभाव देने वाला बन जाता है ।'

३०—पाणिनि कवि की प्रशंसा उपजाति छन्दों से अधिक हुई
है जैसे समकाले पुष्पों से उद्यान की प्रशंसा होती है ।

३१—यशस्थ सब जन्मों में भेष्ट है। इसका बमत्कार विचित्र है। इसने अपनी छाया से भारवि की प्रतिमा को बहुत बढ़ा दिया।

३२—रत्नाकर कवि के मुख रूपी काम में जो वाग्मन्ती व वह बसन्तविक्रमका जन्म रूपी बसन्त के तिलक धूप पर आरुख और बसन्त गाढ़ आलिंगन किये हुए है वही उस पर बमत्कार की कलियाँ लिख छठी हैं।

३३—मन्मथवि की वाणी की निर्बन्ध सरिता शिलरूपी जन्म के शिलर से प्रकट होती है। उनके घने संदर्भ में वह जन्म सुगहर मयूरी की मौखि नाचता सा खगता है।

३४—कालिदास के वरा में आकर मंशास्त्रता बड़े बड़े भाव व्यक्त करती है। जिस प्रकार अण्डे प्रकार के अरवशिशुक के हाव में आकर कंबोज (अफगानिस्तान) देश की घोड़ी रंगत दिखाती है।

३५—राजशेखर की स्वाति शार्ङ्ग बिकीरित जन्म से हुई है जैसे कोई पर्वत अपने टूटे मेढ़े शिखरों से ऊँचा हो जाता है।

३६—इस प्रकार पुराने कवियों की गति यद्यपि सभी जन्मों में समान थी फिर भी वे द्वार में जाके समान किसी विशेष जन्म में अधिक आदरवात् रहे हैं।

३७—सुषर्ष से बने द्वारों के समान अण्डे वयनों से कुछ प्रबन्धों में रत्नों की मौखि जन्मों का यदि यथास्थान उचित प्रयोग होता है तो उसकी शाना बहुत बढ़ जाती है।

३८—जिस प्रकार से जन्म स्थापना का यह विनियोग-मार्ग दिखाया है उसी प्रकार कवियों का प्रयोग करना चाहिये। लेकिन जिनका वाणी पर पूरा बरा नहीं है उनके लिए यह निबन्ध नहीं।

३९—इस प्रकार मैंने जो कहा है वह कुमुद कवियों के लिये प्रारम्भ में बड़ा उपयोगी है। वाणी में जिनकी प्रवृत्ति सुल गयी है उनको इससे बिचक मिलेगा। महाकवियों को भी यह सुख वस्त्र विचार हर्ष प्रदान करमे वाला होगा।

४०—इस प्रकार चेमेन्द्र ने मित्रों की विपत्तियों को हटाने वाले, आश्चर्यजनक कार्यों के कर्ता, मुबन विजयो—उजा अनन्तराज के राज्य में अपनी शक्ति के कारण वाणी के क्षेत्र में प्रसिद्ध कवियों का संमह कर इन जन्मों का प्रदर्शित किया है जो औचित्यपूर्ण रचनाओं में प्रसिद्ध हैं और कर्ण-मधुर हैं।

